जनवरी-मार्च, 2013 [संयुक्तांक]

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

प्रधान संपादक
अनूप कुमार वार्ष्णेय

संपादक
जुगल किशोर

महत्वपूर्ण निर्णय

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 और 34 – हत्या – अभियुक्त-अपीलार्थी के विरुद्ध मृत्युकालिक कथन होना – अभियुक्त के प्रकटन कथन के आधार पर हत्या में प्रयुक्त हथियारों की बरामदगी होना तथा अन्य साक्ष्य से भी उसकी दोषिता साबित होने पर निचले न्यायालयों द्वारा की गई उसकी दोषसिद्धि के निर्णय में हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है ।

बबले उर्फ **गुरदीप सिंह** बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य (पी. एस. ओ. पी. कुर्सीपुर के माध्यम से)** 153

संसद् के अधिनियम

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अत्याचार (निवारण) अधिनियम, 1989 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ (1) – (13)

पृष्ठ संख्या 1 – 179 **[2013] 1 उम. नि. प.**

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका – जनवरी-मार्च, 2013 [संयुक्तांक] [पृष्ठ संख्या 1 – 179]

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

जनवरी-मार्च, 2013

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
आनंद मोहन **बनाम** बिहार राज्य	113
न्यायमूर्ति पी. डी. दिनाकरन **बनाम** न्यायाधीश जांच समिति और अन्य	22
फैज़ा चौधरी **बनाम** जम्मू-कश्मीर राज्य और एक अन्य	168
बबले **उर्फ** गुरदीप सिंह **बनाम** छत्तीसगढ़ राज्य (पी. एस. ओ. पी. कुर्सीपुर के माध्यम से)	153
योमेशभाई प्राणशंकर भट्ट **बनाम** गुजरात राज्य	9
विष्णुपदा सरकार और एक अन्य **बनाम** पश्चिमी बंगाल राज्य	107
सुब्रामणि **उर्फ** जीवा **उर्फ** कुल्लाजीवा **बनाम** थाना भारसाधक अधिकारी ओडियनसलाई	1
संसद् के अधिनियम	
अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अत्याचार (निवारण) अधिनियम, 1989 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	(1) – (13)

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45)

– धारा 302 और 34 – हत्या – अभियुक्त-अपीलार्थी के विरुद्ध मृत्युकालिक कथन होना – अभियुक्त के प्रकटन कथन के आधार पर हत्या में प्रयुक्त हथियारों की बरामदगी होना तथा अन्य साक्ष्य से भी उसकी दोषिता साबित होने पर निचले न्यायालयों द्वारा की गई उसकी दोषसिद्धि के निर्णय में हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है ।

बबले उर्फ **गुरदीप सिंह** बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य (पी. एस. ओ. पी. कुर्सीपुर के माध्यम से)** 153

– धारा 302, 307, 427, 149 और 147 – हत्या – अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा अन्य उपद्रवियों के साथ मिलकर जिला मजिस्ट्रेट की हत्या किया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्त-अपीलार्थी को मृत्यु दंडादेश तथा अन्य कुछ अभियुक्तों को भी दंडादिष्ट किया गया – मृत्यु दंडादेश निर्देश उच्च न्यायालय द्वारा खारिज किया गया तथा आजीवन कठोर कारावास में परिवर्तित किया – राज्य द्वारा भी उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अपील की गई – अभियुक्त-अपीलार्थी की अपील तथा राज्य द्वारा फाइल की गई अपीलें भी खारिज की गईं ।

आनंद मोहन बनाम **बिहार राज्य** 113

– धारा 302, 324 और 149 – हत्या – परिवादी पक्ष और अभियुक्त-अपीलार्थी पक्ष के व्यक्तियों के बीच रेस्तरां में झगड़ा होना जिसमें एक व्यक्ति की मृत्यु हुई व अन्यों को क्षतियां पहुंचीं – दो साक्षियों का पक्षद्रोही होना – विचारण न्यायालय द्वारा छह अभियुक्तों की दोषमुक्ति करते हुए अभियुक्त-अपीलार्थी की भी दोषमुक्ति की – उच्च न्यायालय द्वारा छह दोषमुक्त अभियुक्तों की दोषमुक्ति की पुष्टि करते हुए अभियुक्त-अपीलार्थी की दोषमुक्ति निरस्त

पृष्ठ संख्या

की व उसे मामला 15 वर्ष पुराना होने तथा उस पर एक विकलांग भाई की देखरेख की जिम्मेदारी देखते हुए 3 वर्ष का कठोर करावास अधिनिर्णीत करना – दोषसिद्धि मान्य ठहराई गई ।

सुब्रामणि उर्फ **जीवा** उर्फ **कुल्लाजीवा** बनाम **थाना भारसाधक अधिकारी ओडियनसलाई** 1

– धारा 304 भाग 1 और 34 – हत्या – कहा-सुनी के परिणामस्वरूप हुए झगड़े में मृतक की मृत्यु होना – हत्या पूर्व नियोजित होना – एक अपीलार्थी की आयु 65 वर्ष होना – निचले न्यायालयों द्वारा की गई अभियुक्त-अपीलार्थी की दोषसिद्धि मान्य ठहराते हुए अधिनिर्णीत कारावास अवधि में कमी की गई ।

विष्णुपदा सरकार और एक अन्य बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य** 107

नैसर्गिक न्याय

– न्यायिक कार्यवाहियां – पक्षपातपूर्ण या हितबद्ध होने के विरुद्ध नियम – यदि कोई न्यायाधीश विवाद के किसी पक्षकार के पक्ष में या उसके विरुद्ध है या ऐसी स्थिति में है कि पूर्वाग्रह का अनुमान लगाया जा सकता है तो वह न्यायाधीश के रूप में कार्य करने के लिए निरर्हित हो जाता है और कार्यवाहियां दूषित हो जाती हैं और धनीय हित, चाहे वह कितना ही छोटा क्यों न हो, किसी व्यक्ति को न्यायाधीश के रूप में कार्य करने से निरर्हित कर देता है तथा गैर-धनीय हित में पक्षपातपूर्ण होने की वास्तविक संभाव्यता न केवल शिकायतकर्ता पक्षकार द्वारा अभिनिश्चित सामग्री से प्रकट होनी चाहिए बल्कि ऐसे अन्य तथ्यों से भी प्रकट होनी चाहिए जो वह आसानी से अभिनिश्चित कर सकता था और जिन्हें युक्तियुक्त जांच करके आसानी से सत्यापित किया जा सकता था ।

न्यायमूर्ति पी. डी. दिनाकरन बनाम **न्यायाधीश जांच समिति और अन्य** 22

पृष्ठ संख्या

– प्रकृति और परिधि – नैसर्गिक न्याय न केवल न्याय प्राप्त करना है बल्कि न्याय की हानि को रोकना भी है और नैसर्गिक न्याय के नियम नम्य हैं तथा उनका लागू किया जाना किसी मामले के तथ्यों, कानूनी उपबंधों, प्रभावित अधिकार की प्रकृति और उन परिणामों पर निर्भर करता है जो नैसर्गिक न्याय के नियमों का अतिक्रमण करने के कारण निकल सकते हैं ।

न्यायमूर्ति पी. डी. दिनाकरन बनाम **न्यायाधीश जांच समिति और अन्य** 22

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 15 [सपठित भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद् अधिनियम, 1956 की धारा 10क और 11(2) तथा जम्मू-कश्मीर आरक्षण अधिनियम, 2004 की धारा 9] – चिकित्सा शिक्षा – आरक्षण – पूर्व वर्ष के रिक्त आरक्षित स्थान को अग्रनीत करना – चिकित्सा शिक्षा में किसी स्थान का अस्तित्व केवल उस वर्ष के लिए, जिसमें वह उद्भूत होता है और वह भी इस न्यायालय द्वारा नियत कट-ऑफ तारीख तक, अर्थात् संबंधित वर्ष की तारीख 30 सितम्बर तक होता है और चिकित्सा, इंजीनियरिंग, दंत-चिकित्सा आदि वृत्तिक पाठ्यक्रमों में अग्रनीत करने का सिद्धांत अज्ञात है, इसलिए किसी कानूनी उपबंध के अभाव में अग्रनयन सिद्धांत को लागू करने से योग्यता के नियम का अतिक्रमण होगा ।

फैज़ा चौधरी बनाम **जम्मू-कश्मीर राज्य और एक अन्य** 168

– अनुच्छेद 32, 124(4) और 217 [सपठित न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968 की धारा 3(2)] – उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति को पद से हटाए जाने के लिए जांच समिति का गठन – जांच समिति में प्रत्यर्थी सं. 3 अधिवक्ता को शामिल किए जाने के संबंध में अभिकथित

पृष्ठ संख्या

पक्षपात के आधार पर आक्षेप – प्रत्यर्थी सं. 3 के पक्षपातपूर्ण होने का अभिवाक् समिति का गठन करने संबंधी अधिसूचना के प्रकाशन के तुरंत पश्चात् न करके समिति की ओर से सूचना प्राप्त होने पर किया जाना – प्रत्यर्थी सं. 3 को समिति में शामिल करने के विरुद्ध किए गए विलंबित आक्षेप से यह प्रतीत होता है कि याची की यह सोची-समझी चाल थी और वह सभी संभव तरीके अपनाकर जांच पूरी होने में विलंब कराना चाहता था और याची द्वारा समिति के गठन की जानकारी हो जाने के पश्चात् लगभग दस मास तक प्रत्यर्थी सं. 3 को समिति में शामिल करने के संबंध में आक्षेप न करने से यह अप्रतिरोध्य निष्कर्ष निकलता है कि उसने इस संबंध में आक्षेप करने संबंधी अपने अधिकार का अधित्यजन कर दिया था ।

न्यायमूर्ति पी. डी. दिनाकरन बनाम **न्यायाधीश जांच समिति और अन्य** 22

– अनुच्छेद 32, 124(4) और 217 [सपठित न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968 की धारा 3(2)] – उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति का हटाया जाना – जांच समिति में एक सदस्य को शामिल करने के संबंध में पक्षपात के अभिकथन के आधार पर आक्षेप – पक्षपातपूर्ण होने संबंधी प्रश्न का विनिश्चय न्यायालय या जांच समिति के दृष्टिकोण से नहीं बल्कि किसी युक्तिमान, वस्तुनिष्ठ और जानकार व्यक्ति के दृष्टिकोण से पक्षपातपूर्ण होने की वास्तविक संभाव्यता की कसौटी के आधार पर किया जाना चाहिए, अतः याची की प्रत्यर्थी सं. 3 के पक्षपातपूर्ण होने की संभाव्यता संबंधी आशंका तर्कसंगत है न कि काल्पनिक और समिति के अध्यक्ष से प्रत्यर्थी सं. 3 से स्थान पर एक अन्य प्रख्यात विधिवेत्ता नामनिर्दिष्ट करने का अनुरोध किया गया ।

न्यायमूर्ति पी. डी. दिनाकरन बनाम **न्यायाधीश जांच समिति और अन्य** 22

पृष्ठ संख्या

– अनुच्छेद 136, 142, 134 और 145 [सपठित उच्चतम न्यायालय नियम, 1966 का अध्याय 47 नियम 61] – विशेष इजाज़त याचिका से उत्पन्न अपील – न्यायालय का क्षेत्राधिकार – याचिका सुनवाई के लिए ग्रहण किए जाते समय न्यायालय द्वारा पारित आदेश विधि के किसी अभिव्यक्त उपबंध का दर्जा नहीं रखते – ऐसी मताभिव्यक्तियां या आदेश न्यायालय की अधिकारिता को सीमित नहीं कर सकते ।

योमेशभाई प्राणशंकर भट्ट बनाम **गुजरात राज्य** 9

———

संपादक-मंडल

श्री पी. के. मल्होत्रा,
सचिव, विधायी विभाग

श्री एन. एल. मीना,
अपर सचिव (प्रशा.), विधायी विभाग

श्री आर. डी. मीना, संयुक्त सचिव,
राजभाषा खंड

डा. बी. एन. मणि, अधिवक्ता,
(पूर्व संपादक) वि.सा.प्र.

डा. प्रीती सक्सेना, प्रोफेसर,
बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, लखनऊ

डा. वैभव गोयल, संकायाध्यक्ष
विधि संकाय, स्वामी विवेकानन्द सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ

श्री सुरेन्द्र शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, गुरु गोविद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय, दिल्ली

डा. आर. पी. सिंह,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव,
राजभाषा खंड

श्री लालजी प्रसाद,
सेवानिवृत्त प्रधान संपादक,
वि.सा.प्र.

श्री के. जी. अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनूप कुमार वार्ष्णेय,
प्रधान संपादक

श्री महमूद अली खां,
संपादक

श्री जुगल किशोर,
संपादक

डा. मिथिलेश चन्द्र पाण्डेय,
संपादक

सहायक संपादक : सर्वश्री विनोद कुमार आर्य, कमला कान्त, अविनाश शुक्ल और असलम खान

उप-संपादक : सर्वश्री दयाल चन्द ग्रोवर, एम. पी. सिंह, जसवन्त सिंह और बी. के. भटनागर

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 57

वार्षिक : ₹ 225

© 2013 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रकाशन और विक्रय प्रबंधक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग), भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा..... द्वारा मुद्रित ।

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 16288/68

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमश: चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ को पाठकों की सुविधा के लिए श्रृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । तीनों निर्णय पत्रिकाओं की वार्षिक कीमत केवल ₹ 495/- है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 225/- है, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रय के लिए उपलब्ध विधि पाठ्य पुस्तकों की सूची

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	कीमत (₹)
1.	भारत का विधिक इतिहास	श्री सुरेन्द्र मधुकर	410	30.00
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि	डा. एन. पी. परांजपे	371	40.00
3.	वाणिज्य विधि	डा. आर. एल. भट्ट	630	108.00
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धान्त (तृतीय संस्करण)	श्री शर्मन लाल अग्रवाल	357	40.00
5.	अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. सी. खरे	273	115.00
6.	मानव अधिकार	डा. शिवदत्त शर्मा	340	120.00
7.	दण्ड प्रक्रिया संहिता	न्या. महावीर सिंह	840	200.00

पुस्तकों की सूची जिन पर छूट देने की स्वीकृति प्राप्त की गई है ।

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	मूल दर (₹)	संशोधित दर (₹)
1.	संविदा विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रामगोपाल चतुर्वेदी	552	275.00	137.00
2.	श्रम विधि (तृतीय संस्करण)	श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा	658	452.00	226.00
3.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान (तृतीय संस्करण)	डा. सी. के. पारिख अनुवादक डा. एन. के. पटौरिया	969	293.00	146.00
4.	आधुनिक पारिवारिक विधि	श्री राम शरण माथुर	767	429.00	214.00
5.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय)	संकलन संपादन – ब्रह्मदेव चौबे	209	225.00	112.00
6.	हिन्दू विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रवीन्द्र नाथ	617	425.00	212.00
7.	भारतीय दंड संहिता	डा. रवीन्द्र नाथ	696	741.00	370.00
8.	भारतीय भागीदारी अधिनियम (द्वितीय संस्करण)	श्री माधव प्रसाद वाशिष्ठ	272	165.00	82.00
9.	प्रशासनिक विधि (तृतीय संस्करण)	डा. कैलाश चन्द्र जोशी	635	200.00	100.00
10.	विधिक उपचार (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. के. कपूर	414	311.00	155.00
11.	विधि शास्त्र	डा. शिवदत्त शर्मा	501	580.00	377.00

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

तुलनात्मक सारणी

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

[2013] 1 उम. नि. प.

जनवरी - मार्च, 2013

क्र. सं.	निर्णय का नाम व तारीख	उम. नि. प.		ए. आई. आर. (एस. सी.)		एस. सी. सी.	
1	2	3		4		5	
1.	सुब्रामणि **उर्फ** जीवा **उर्फ** कुल्लाजीवा बनाम थाना भार साधक अधिकारी ओडियनसलाई (30 मार्च, 2011)	[2013] 1	1	–	–	(2011) 14	454
2.	योमेशभाई प्राणशंकर भट्ट **बनाम** गुजरात राज्य (19 मई, 2011)		9	2011	2328	6	312
3.	न्यायमूर्ति पी. डी. दिनाकरन **बनाम** न्यायाधीश जांच समिति और अन्य (5 जुलाई, 2011)		22	–	–	8	380
4.	विष्णुपदा सरकार और एक अन्य **बनाम** पश्चिमी बंगाल राज्य (2 जुलाई, 2012)		107	2012	2248	11	597
5.	आनंद मोहन **बनाम** बिहार राज्य (10 जुलाई, 2012)		113	–	–	(2012) 7	225

1	2	3			4		5		
6.	बबले **उर्फ** गुरदीप सिंह **बनाम** छत्तीसगढ़ राज्य (पी. एस. ओ. पी. कुर्सीपुर के माध्यम से) (10 जुलाई, 2012)	[2013]	1	153	2012	2621	(2012)	11	181
7.	फैज़ा चौधरी **बनाम** जम्मू-कश्मीर राज्य और एक अन्य (6 सितम्बर, 2012)			168	–	–		10	149

[2013] 1 उम. नि. प. 1

सुब्रामणि उर्फ जीवा उर्फ कुल्लाजीवा

बनाम

थाना भारसाधक अधिकारी ओडियनसलाई

30 मार्च, 2011

न्यायमूर्ति हरजीत सिंह बेदी और न्यायमूर्ति चंद्रमौली कुमार प्रसाद

दंड संहिता, 1860 – धारा 302, 324 और 149 – हत्या – परिवादी पक्ष और अभियुक्त-अपीलार्थी पक्ष के व्यक्तियों के बीच रेस्तरां में झगड़ा होना जिसमें एक व्यक्ति की मृत्यु हुई व अन्यों को क्षतियां पहुंचीं – दो साक्षियों का पक्षद्रोही होना – विचारण न्यायालय द्वारा छह अभियुक्तों की दोषमुक्ति करते हुए अभियुक्त-अपीलार्थी की भी दोषमुक्ति की – उच्च न्यायालय द्वारा छह दोषमुक्त अभियुक्तों की दोषमुक्ति की पुष्टि करते हुए अभियुक्त-अपीलार्थी की दोषमुक्ति निरस्त की व उसे मामला 15 वर्ष पुराना होने तथा उस पर एक विकलांग भाई की देखरेख की जिम्मेदारी देखते हुए 3 वर्ष का कठोर करावास अधिनिर्णीत करना – दोषसिद्धि मान्य ठहराई गई ।

प्रस्तुत मामले में, विचारण न्यायालय ने सभी अभियुक्तों को दोषमुक्त किया था और उच्च न्यायालय ने इस मामले में के एक ही अपीलार्थी के संबंध में निर्णय को उलट दिया है जिससे व्यथित होकर यह अपील फाइल की गई है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – अपीलार्थी के विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री राजू रघुपति ने आरंभ में ही यह दलील दी है कि चूंकि अभि. सा. 2 और अभि. सा. 4 जो कि दो प्रत्यक्षदर्शी साक्षी हैं, को पक्षद्रोही घोषित किया गया है इसलिए उच्च न्यायालय द्वारा केवल अभि. सा. 1 के साक्ष्य का अवलंब लिया जाना स्वीकार्य नहीं है, विशेषकर दोषमुक्ति के विरुद्ध की गई अपील में । विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि यदि थोड़ी देर के लिए यह मान भी लिया कि अभि. सा. 1 घटनास्थल पर मौजूद था, तब भी अभियुक्त की शनाख्त का प्रश्न बना रहता है क्योंकि साक्ष्य में यह उल्लेख है कि रेस्तरां

में रोशनी बहुत कम थी और चूंकि दोनों दल पूरी तरह नशे की हालत में थे इसलिए अभि. सा. 1 के लिए प्रत्येक व्यक्ति को पहचानना असंभव था । काउंसेल ने शनाख्त परेड के मूल आधार पर भी संदेह व्यक्त किया है और यह दलील दी है कि चूंकि अभियुक्तों के फोटो चित्र अभि. सा. 1 को दिखा दिए गए थे इसलिए शनाख्त परेड की शुद्धता भी संदिग्ध हो जाती है । उन्होंने अंतिमतः यह दलील दी है कि यदि यह भी मान लिया जाए कि दोषसिद्धि अपास्त किए जाने का कोई भी कारण नहीं बनता है तब भी मामले के तथ्यों के अन्तर्गत यह अपेक्षित है कि अपीलार्थी को दिया गया दंडादेश कम किया जाए क्योंकि यह घटना बीस वर्ष पूर्व घटित हुई थी । राज्य की ओर से विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री कनगराज ने उच्च न्यायालय का समर्थन किया है और इस तथ्य के आधार पर यह दलील दी है कि उच्च न्यायालय ने यह राय व्यक्त की है कि विचारण न्यायालय का निर्णय अनुचित है और साक्ष्य का पूर्णतया गलत अर्थ लगाने पर आधारित है और दोषमुक्ति के विरुद्ध की गई अपील में हस्तक्षेप करना पूर्णतया न्यायोचित है । उन्होंने यह भी दलील दी है कि किसी भी प्रकार का ऐसा कोई कारण नहीं है जिससे अभि. सा. 1 के साक्ष्य को अविश्वसनीय ठहराया जा सके जो आहत साक्षी है और यह भी दलील दी है कि आहत और मृतक को 15-20 मिनट के भीतर अस्पताल भेज दिया गया था और प्रथम इत्तिला रिपोर्ट भी एक या दो घंटों के भीतर दर्ज करा दी गई थी जिससे अभियोजन वृत्तांत का समर्थन होता है । उन्होंने यह भी दलील दी है कि शनाख्त परेड पर संदेह किए जाने का कतई कोई कारण नहीं है विशेषकर ऐसा कोई भी साक्ष्य नहीं है जिससे यह दर्शित होता हो कि अभि. सा. 1 पूर्णतया नशे में था कि वह किसी भी व्यक्ति को पहचानने की स्थिति में नहीं था । (पैरा 2 और 3)

यह सत्य है कि उच्च न्यायालय के दोषमुक्ति के विरुद्ध की गई अपील पर विचार करते हुए विकल्प सीमित है । तथापि, उच्च न्यायालय द्वारा यह मत व्यक्त किया गया है कि जहां तक अपीलार्थी का संबंध है विचारण न्यायालय का निर्णय अभिलेख के पूर्णतया विरुद्ध और अनुचित है । हमारे समक्ष यह स्वीकार किया गया है कि अभि. सा. 1 उस समय मौजूद था जब घटना घटित हुई थी । अन्यथा भी साक्ष्य में यह उल्लेख है कि घटना तारीख 4 नवम्बर, 1991 को लगभग 10.30-10.45 बजे अपराह्न में घटित हुई थी और आहत 20 या 25 मिनट के भीतर अस्पताल पहुंच गया था और चिकित्सक ने पुलिस को सूचना भेज दी थी जिस पर सहायक उपनिरीक्षक आधे घंटे के भीतर अस्पताल पहुंचा और औपचारिक

प्रथम इत्तिला रिपोर्ट तारीख 5 नवम्बर, 1991 को 1.10 बजे पूर्वाह्न में अभिलिखित की गई, ये सभी तथ्य अभिलेख पर साबित हो चुके हैं । अभि. सा. 1 के शरीर पर पाई गई क्षतियों से इस तथ्य की पुष्टि हो जाती है कि वह (घटनास्थल पर) मौजूद था । तथापि, श्री रघुपति ने यह दलील दी है कि चूंकि अभि. सा. 1 किसी भी व्यक्ति को पहचानने की स्थिति में नहीं था कि उसे किसने विशिष्ट क्षति पहुंचाई है, इसलिए उसका परिसाक्ष्य किसी भी प्रकार से संगत नहीं है । न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि यह अभिवाक् स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है । यह घटना सार्वजनिक रेस्तरां में घटित हुई है और ऐसी जगह पर कम रोशनी होती है किन्तु यह असंभव है कि वहां पूर्णतया अंधकार था । अन्यथा भी, श्री रघुपति की इस दलील में कोई सार नहीं है कि कम रोशनी में अभियुक्त की शनाख्त नहीं की जा सकती थी । स्वीकृततः, प्रश्नगत रेस्तरां बहुत छोटा था जिसमें चार मेजें आती थीं । साक्ष्य में यह भी उल्लेख है कि रेस्तरां में ट्यूब लाइटें जल रही थीं । अतः, न्यायालय को यह उपधारित करना होगा कि रोशनी इतनी भी कम नहीं थी कि एक या दो फीट की दूरी पर खड़ा कोई व्यक्ति पहचाना न जा सके । एक अन्य सुसंगत परिस्थिति भी है । स्वीकृततः, अभि. सा. 1 अभियुक्तों को घटना के पूर्व से नहीं जानता था । तथापि, अपीलार्थी के हुलिये का वर्णन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में ही कर दिया गया है । उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय की इस कार्यवाही पर प्रतिकूल मत व्यक्त किया है उसने (विचारण न्यायालय) इस तथ्य को और अपीलार्थी की शनाख्त से संबंधित अत्यंत महत्वपूर्ण साक्ष्य को अनदेखा किया है । श्री रघुपति द्वारा अत्यधिक प्रयास इस तथ्य पर किया गया है कि घटना के समय अभि. सा. 1 पूर्णतया नशे में था, अतः अभियुक्त को पहचानने की स्थिति में नहीं था । न्यायालय ने अभि. सा. 1 के साक्ष्य का अत्यंत सावधानी से परिशीलन किया है । इस साक्षी से ऐसा कोई भी बात उसकी परीक्षा के दौरान नहीं कही गई है कि वह घटना के समय पूर्णतया नशे में था । न्यायालय का यह भी निष्कर्ष है कि अन्वेषक अधिकारी या चिकित्सक से अभि. सा. 1 की उस समय की हालत के बारे में कोई भी प्रश्न नहीं किया गया था जिस समय उसे अस्पताल लाया गया था या जिस समय प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत किए जाने के लिए उसका कथन अभिलिखित किया गया था । किसी भी साक्ष्य के अभाव में यह सुझाव कि अभि. सा. 1 नशे में था, पूर्णतया निराधार है । न्यायालय को 'पूर्णतया नशे में होने' और 'शराब पीये होने' में जो अन्तर है उस पर ध्यान देना होगा । अभि. सा. 1 और उसके मित्र तथा मृतक ने अपना रात्रि भोज

करने के पूर्व शराब पी थी किन्तु अभि. सा. 1 पूर्णतया नशे में था, यह तथ्य साक्ष्य से साबित नहीं हुआ है । अतः, मामले के तथ्यों के आधार पर हमारा यह निष्कर्ष है कि जहां तक वर्तमान अपीलार्थी का संबंध है, उच्च न्यायालय द्वारा किया गया हस्तक्षेप पूर्णतया न्यायोचित है । (पैरा 4, 5 और 6)

न्यायालय ने दंडादेश की मात्रा के संबंध में दी गई श्री रघुपति की दलील पर भी विचार किया है । उच्च न्यायालय ने इस संबंध में लगभग रियायत ही बरती है कि अपीलार्थी को तीन वर्ष का दंडादेश अधिनिर्णीत किया है किन्तु इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए कि घटना 15 वर्ष पूर्व घटित हुई है और मानसिक रोग से ग्रस्त अपीलार्थी का एक भाई भी है, इसलिए उच्च न्यायालय ने केवल तीन वर्ष के कारावास का आदेश किया है । (पैरा 7)

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2005 की दांडिक अपील सं. 1033.

1996 की दांडिक अपील सं. 769 में मद्रास उच्च न्यायालय के तारीख 2 फरवरी, 2005 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से — सर्वश्री राजू रघुपति (वरिष्ठ अधिवक्ता), सी. परमशिवम, पी. रमेश, एम. पी. पार्थिबन, राकेश के. शर्मा

प्रत्यर्थी की ओर से — सर्वश्री वी. कनगराज (वरिष्ठ अधिवक्ता), वी. जी. प्रगासम, एस. जे. अरिसटोटल, एस. प्रभु रामासुब्रहमण्यम् और विपिन जय

आदेश

हमने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को अत्यंत विस्तार से सुना है, विशेषकर इस कारण से कि हमारे समक्ष प्रस्तुत निर्णय एक प्रतिकूल निर्णय है जिसमें प्रस्तुत मामले में विचारण न्यायालय ने सभी अभियुक्तों को दोषमुक्त किया था और उच्च न्यायालय ने इस मामले में के एक ही अपीलार्थी के संबंध में निर्णय को उलट दिया है । मामले के तथ्य निम्न प्रकार हैं :–

1. तारीख 4 नवम्बर, 1991 को अभि. सा. 1 अपने भाई तमिलवेंधान

(मृतक) के साथ लेर्बोटिन स्ट्रीट, पांडिचेरी में स्थित एक रेस्तरां में गया था । रेस्तरां में उसके मित्र अभि. सा. 2, अभि. सा. 3, अभि. सा. 4 और एक अन्य व्यक्ति भी उसके साथ सम्मिलित हो गए । उन्होंने भोजन के लिए आर्डर किया और जब वे भोजन की प्रतीक्षा कर रहे थे उसी समय उन्होंने शराब के लिए कहा । थोड़ी ही देर बाद रेस्तरां के भीतर प्लेटों के तोड़े जाने की आवाज सुनाई दी । इसके पश्चात् सात अभियुक्त बाहर आए और जब वे अभि. सा. 1, अभि. सा. 2, अभि. सा. 4 और मृतक के पास से होकर गुजर रहे थे तब अपीलार्थी सुब्रामणि ने परिवादी पक्ष पर तानाकशी की । तथापि, मृतक उस पर हंसा जिस पर अपीलार्थी ने अपने दोस्तों को बुलाया और उन्होंने परिवादियों की मेज को घेर लिया । अपीलार्थी ने भी मेज पर पड़ी हुई बोतल उठाई और उसे मेज पर मारकर तोड़ी और तमिलवेंधान की गर्दन में घोंप दी । अभि. सा. 1 ने जब हस्तक्षेप किया तो इस प्रक्रिया में उसे भी क्षतियां कारित हुईं । यह देखकर अभि. सा. 2 उन्हें बचाने के लिए बाहर आया और उस पर भी अपीलार्थी द्वारा हमला किया गया । मृतक जमीन पर गिर गया जिसके पश्चात् सभी अभियुक्त उस स्थान से भाग गए । यह घटना लगभग 10.45 बजे अपराह्न में घटित हुई थी । इसके पश्चात् आहत अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 को मृतक के साथ सरकारी अस्पताल, पांडिचेरी ले जाया गया जहां पर 11.10 बजे अपराह्न में अभि. सा. 10 द्वारा उनकी चिकित्सा परीक्षा की गई । वहां पहुंचने पर तमिलवेंधान की मृत्यु हो गई । यह सूचना लगभग 11.20 बजे अपराह्न में पुलिस को भी भेजी गई जिस पर पुलिस उपनिरीक्षक (अभि. सा. 20) जो उस पुलिस थाने से संबद्ध था, अस्पताल पहुंचा और उसने अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 के कथन अभिलिखित किए और उस आधार पर तारीख 5 नवम्बर, 1991 को 1.10 बजे पूर्वाह्न में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की गई । सभी अभियुक्तों को तारीख 26 नवम्बर, 1991 को गिरफ्तार किया गया और तीन दिनों के पश्चात् जेल में उनकी शनाख्त परेड कराई गई । अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 ने शनाख्त परेड के दौरान सातों अभियुक्तों को पहचान लिया । अन्वेषण पूरा किए जाने पर अभियुक्तों को भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 149 के साथ पठित धारा 148, 302, 324 के अधीन दंडनीय अपराधों का विचारण किए जाने के लिए लाया गया । विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि अभि. सा. 1 के कथन पर विश्वास नहीं किया जा सकता है विशेषकर इस कारण कि अभि. सा. 2 और अभि. सा. 4 दोनों ही को पक्षद्रोही घोषित किया गया है । शनाख्त परेड पर भी इस कारण संदेह व्यक्त किया गया है कि अभियुक्तों के फोटोचित्र शनाख्त परेड के पूर्व अभियोजन साक्षियों को

दिखा दिए गए थे । न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि उस स्थान के संबंध में भी संदेह है जहां पर घटना घटित हुई थी । इसके पश्चात् राज्य द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की गई । उच्च न्यायालय ने छह अभियुक्तों की दोषमुक्ति की पुष्टि करते हुए विचारण न्यायालय के निर्णय को अपीलार्थी सुब्रामणि के संबंध में अपास्त कर दिया और यह अभिनिर्धारित किया कि उसकी दोषमुक्ति अनुचित है और अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य के प्रतिकूल है । तद्नुसार, उच्च न्यायालय ने अभि. सा. 1 के साक्ष्य, चिकित्सीय साक्ष्य और शनाख्त परेड का अवलंब लेते हुए यह अभिनिर्धारित किया है कि अपीलार्थी इस घटना में अंतर्वलित है किन्तु चूंकि यह घटना अचानक झगड़ा होने के कारण घटित हुई है, इसलिए यह मामला दंड संहिता की धारा 300 के अपवाद 4 के अन्तर्गत आता है और अपीलार्थी दंड संहिता, 1860 की धारा 304 भाग II के अधीन दोषसिद्ध किए जाने के लिए दायी है और तद्नुसार इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए कि मामला 15 वर्ष पुराना है और अपीलार्थी का एक भाई मानसिक रूप से विकलांग है जिसकी उसे देखरेख करनी पड़ती है, इसलिए इससे न्याय पूरा होगा कि उस पर तीन वर्ष का कठोर कारावास ही अधिरोपित किया जाए । न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया है कि मामले के तथ्यों को दृष्टिगत करते हुए अन्य अभियुक्तों अर्थात् उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत मामले में के प्रत्यर्थी सं. 2 से 7 का अन्तर्वलित होना दंड संहिता, 1860 की धारा 149 के अधीन साबित नहीं होता है । इसी कारण हमारे समक्ष वर्तमान अपील केवल अपीलार्थी की ओर से प्रस्तुत की गई है ।

2. अपीलार्थी के विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री राजू रघुपति ने आरंभ में ही यह दलील दी है कि चूंकि अभि. सा. 2 और अभि. सा. 4 जो कि दो प्रत्यक्षदर्शी साक्षी हैं, को पक्षद्रोही घोषित किया गया है इसलिए उच्च न्यायालय द्वारा केवल अभि. सा. 1 के साक्ष्य का अवलंब लिया जाना स्वीकार्य नहीं है, विशेषकर दोषमुक्ति के विरुद्ध की गई अपील में । विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि यदि थोड़ी देर के लिए यह मान भी लिया कि अभि. सा. 1 घटनास्थल पर मौजूद था, तब भी अभियुक्त की शनाख्त का प्रश्न बना रहता है क्योंकि साक्ष्य में यह उल्लेख है कि रेस्तरां में रोशनी बहुत कम थी और चूंकि दोनों दल पूरी तरह नशे की हालत में थे इसलिए अभि. सा. 1 के लिए प्रत्येक व्यक्ति को पहचानना असंभव था । काउंसेल ने शनाख्त परेड के मूल आधार पर भी संदेह व्यक्त किया है और यह दलील दी है कि चूंकि अभियुक्तों के फोटो चित्र अभि. सा. 1 को

दिखा दिए गए थे इसलिए शनाख्त परेड की शुद्धता भी संदिग्ध हो जाती है । उन्होंने अंतिमतः यह दलील दी है कि यदि यह भी मान लिया जाए कि दोषसिद्धि अपास्त किए जाने का कोई भी कारण नहीं बनता है तब भी मामले के तथ्यों के अन्तर्गत यह अपेक्षित है कि अपीलार्थी को दिया गया दंडादेश कम किया जाए क्योंकि यह घटना बीस वर्ष पूर्व घटित हुई थी ।

3. राज्य की ओर से विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री कनगराज ने उच्च न्यायालय का समर्थन किया है और इस तथ्य के आधार पर यह दलील दी है कि उच्च न्यायालय ने यह राय व्यक्त की है कि विचारण न्यायालय का निर्णय अनुचित है और साक्ष्य का पूर्णतया गलत अर्थ लगाने पर आधारित है और दोषमुक्ति के विरुद्ध की गई अपील में हस्तक्षेप करना पूर्णतया न्यायोचित है । उन्होंने यह भी दलील दी है कि किसी भी प्रकार का ऐसा कोई कारण नहीं है जिससे अभि. सा. 1 के साक्ष्य को अविश्वसनीय ठहराया जा सके जो आहत साक्षी है और यह भी दलील दी है कि आहत और मृतक को 15-20 मिनट के भीतर अस्पताल भेज दिया गया था और प्रथम इत्तिला रिपोर्ट भी एक या दो घंटों के भीतर दर्ज करा दी गई थी जिससे अभियोजन वृत्तांत का समर्थन होता है । उन्होंने यह भी दलील दी है कि शनाख्त परेड पर संदेह किए जाने का कतई कोई कारण नहीं है विशेषकर ऐसा कोई भी साक्ष्य नहीं है जिससे यह दर्शित होता हो कि अभि. सा. 1 पूर्णतया नशे में था कि वह किसी भी व्यक्ति को पहचानने की स्थिति में नहीं था ।

4. हमने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को विस्तार से सुना है । यह सत्य है कि उच्च न्यायालय के दोषमुक्ति के विरुद्ध की गई अपील पर विचार करते हुए विकल्प सीमित है । तथापि, उच्च न्यायालय द्वारा यह मत व्यक्त किया गया है कि जहां तक अपीलार्थी का संबंध है विचारण न्यायालय का निर्णय अभिलेख के पूर्णतया विरुद्ध और अनुचित है । हमारे समक्ष यह स्वीकार किया गया है कि अभि. सा. 1 उस समय मौजूद था जब घटना घटित हुई थी । अन्यथा भी साक्ष्य में यह उल्लेख है कि घटना तारीख 4 नवम्बर, 1991 को लगभग 10.30-10.45 बजे अपराह्न में घटित हुई थी और आहत 20 या 25 मिनट के भीतर अस्पताल पहुंच गया था और चिकित्सक ने पुलिस को सूचना भेज दी थी जिस पर सहायक उपनिरीक्षक आधे घंटे के भीतर अस्पताल पहुंचा और औपचारिक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट तारीख 5 नवम्बर, 1991 को 1.10 बजे पूर्वाह्न में अभिलिखित की गई, ये सभी तथ्य अभिलेख पर साबित हो चुके हैं । अभि. सा. 1 के शरीर पर पाई गई क्षतियों से इस तथ्य की पुष्टि हो जाती है कि वह (घटनास्थल पर) मौजूद था । तथापि, श्री रघुपति ने यह दलील दी है

कि चूंकि अभि. सा. 1 किसी भी व्यक्ति को पहचानने की स्थिति में नहीं था कि उसे किसने विशिष्ट क्षति पहुंचाई है, इसलिए उसका परिसाक्ष्य किसी भी प्रकार से संगत नहीं है । हमारा यह निष्कर्ष है कि यह अभिवाक् स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है । यह घटना सार्वजनिक रेस्तरां में घटित हुई है और ऐसी जगह पर कम रोशनी होती है किन्तु यह असंभव है कि वहां पूर्णतया अंधकार था । अन्यथा भी, श्री रघुपति की इस दलील में कोई सार नहीं है कि कम रोशनी में अभियुक्त की शनाख्त नहीं की जा सकती थी । स्वीकृततः, प्रश्नगत रेस्तरां बहुत छोटा था जिसमें चार मेजें आती थीं । साक्ष्य में यह भी उल्लेख है कि रेस्तरां में ट्यूब लाइटें जल रही थीं । अतः, हमें यह उपधारित करना होगा कि रोशनी इतनी भी कम नहीं थी कि एक या दो फीट की दूरी पर खड़ा कोई व्यक्ति पहचाना न जा सके ।

5. एक अन्य सुसंगत परिस्थिति भी है । स्वीकृततः, अभि. सा. 1 अभियुक्तों को घटना के पूर्व से नहीं जानता था । तथापि, अपीलार्थी के हुलिये का वर्णन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में ही कर दिया गया है । उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय की इस कार्यवाही पर प्रतिकूल मत व्यक्त किया है उसने (विचारण न्यायालय) इस तथ्य को और अपीलार्थी की शनाख्त से संबंधित अत्यंत महत्वपूर्ण साक्ष्य को अनदेखा किया है ।

6. श्री रघुपति द्वारा अत्यधिक प्रयास इस तथ्य पर किया गया है कि घटना के समय अभि. सा. 1 पूर्णतया नशे में था, अतः अभियुक्त को पहचानने की स्थिति में नहीं था । हमने अभि. सा. 1 के साक्ष्य का अत्यंत सावधानी से परिशीलन किया है । इस साक्षी से ऐसा कोई भी बात उसकी परीक्षा के दौरान नहीं कही गई है कि वह घटना के समय पूर्णतया नशे में था । हमारा यह भी निष्कर्ष है कि अन्वेषक अधिकारी या चिकित्सक से अभि. सा. 1 की उस समय की हालत के बारे में कोई भी प्रश्न नहीं किया गया था जिस समय उसे अस्पताल लाया गया था या जिस समय प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत किए जाने के लिए उसका कथन अभिलिखित किया गया था । किसी भी साक्ष्य के अभाव में यह सुझाव कि अभि. सा. 1 नशे में था, पूर्णतया निराधार है । हमें 'पूर्णतया नशे में होने' और 'शराब पीये होने' में जो अन्तर है उस पर ध्यान देना होगा । अभि. सा. 1 और उसके मित्र तथा मृतक ने अपना रात्रि भोज करने के पूर्व शराब पी थी किन्तु अभि. सा. 1 पूर्णतया नशे में था, यह तथ्य साक्ष्य से साबित नहीं हुआ है । अतः, मामले के तथ्यों के आधार पर हमारा यह निष्कर्ष है कि जहां तक वर्तमान अपीलार्थी का संबंध है, उच्च न्यायालय द्वारा किया गया हस्तक्षेप पूर्णतया न्यायोचित है ।

7. हमने दंडादेश की मात्रा के संबंध में दी गई श्री रघुपति की दलील पर भी विचार किया है । उच्च न्यायालय ने इस संबंध में लगभग रियायत ही बरती है कि अपीलार्थी को तीन वर्ष का दंडादेश अधिनिर्णीत किया है किन्तु इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए कि घटना 15 वर्ष पूर्व घटित हुई है और मानसिक रोग से ग्रस्त अपीलार्थी का एक भाई भी है, इसलिए उच्च न्यायालय ने केवल तीन वर्ष के कारावास का आदेश किया है ।

8. हमारा यह विचार है कि दंडादेश की मात्रा के संबंध में भी कोई भी हस्तक्षेप किए जाने का कोई कारण नहीं है ।

9. अपील खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

अस./अनू.

[2013] 1 उम. नि. प. 9

योमेशभाई प्राणशंकर भट्ट

बनाम

गुजरात राज्य

19 मई, 2011

न्यायमूर्ति अशोक कुमार गांगुली और न्यायमूर्ति दीपक वर्मा

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 136, 142, 134, 145 (सपठित उच्चतम न्यायालय नियम, 1966 अध्याय 47 नियम 61) – विशेष इजाजत याचिका से उत्पन्न अपील – न्यायालय का क्षेत्राधिकार – याचिका सुनवाई के लिए ग्रहण किए जाते समय न्यायालय द्वारा पारित आदेश विधि के किसी अभिव्यक्त उपबंध का दर्जा नहीं रखते – ऐसी मताभिव्यक्तियां या आदेश न्यायालय की अधिकारिता को सीमित नहीं कर सकते ।

संक्षेप में मामले के तथ्य यह हैं कि दोनों निचले न्यायालयों अर्थात् बड़ोदरा के अपर सेशन न्यायाधीश और गुजरात उच्च न्यायालय ने एक ही निष्कर्ष पर पहुंचते हुए अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के

अधीन दोषसिद्ध किया और आजीवन कारावास भोगने के द्वारा दंडादिष्ट किया । यह अपील दोनों निचले न्यायालयों द्वारा निकाले गए उपरोक्त समवर्ती निष्कर्षों के विरुद्ध फाइल की गई है । इस न्यायालय ने विशेष इजाजत याचिका के प्रक्रम पर तारीख 27 जुलाई, 2009 को आदेश पारित करते हुए मात्र इस प्रयोजनार्थ नोटिस जारी किया कि क्या याची भारतीय दंड संहिता की धारा 304 के किसी भाग के अधीन कोई अपराध कारित करने का दोषी है न कि धारा 302 के अधीन । अपील भागतः मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – याचिका सुनवाई के लिए ग्रहण किए जाते समय न्यायालय द्वारा पारित आदेश विधि के किसी अभिव्यक्त उपबंध का दर्जा नहीं रखता । किसी याचिका को सुने जाते समय न्यायालय द्वारा नोटिस जारी किए जाने के द्वारा की गई मताभिव्यक्ति अनंतिम मताभिव्यक्ति होती है । ऐसी मताभिव्यक्तियां या आदेश इस न्यायालय की अधिकारिता को अनुच्छेद 142 के अधीन सीमित नहीं कर सकती । न्यायालय नियमों के अंतर्गत इस स्थिति और अनुच्छेद 142 के अधीन संवैधानिक उपबंध को ध्यान में रखते हुए यह नहीं समझता कि यह न्यायालय अंतिम सुनवाई के समय विवाद पर संपूर्ण परिप्रेक्ष्य में विचार करने से विवर्जित है और ऐसा करते हुए यह न्यायालय नोटिस जारी करते समय पारित किसी आदेश में की गई मताभिव्यक्ति द्वारा नहीं है । (पैरा 10 और 13)

संहिता की धारा 100 का परंतुक स्पष्ट करता है कि उच्च न्यायालय की शक्तियां किसी ऐसे प्रश्न, जिसको द्वितीय अपील ग्रहण किए जाने के समय निश्चित नहीं किया गया, द्वितीय अपील सुने जाने के प्रयोजनार्थ रुकावट नहीं बन सकता, जहां तक कि मामले में कोई अन्य प्रश्न अन्तर्वलित न हो । जहां तक उच्च न्यायालय का संबंध है, उसको द्वितीय अपील के प्रयोजनार्थ धारा 100 के अधीन कानूनी रूप से मान्यता प्रदान की गई है । तथापि, न्यायालय यह स्पष्ट कर देता है कि सभी मामलों में यह सर्वव्यापी प्रथा नहीं हो सकती । यह प्रश्न कि क्या न्यायालय अंतिम सुनवाई के समय अपनी जांच की परिधि को विस्तृत कर देगा, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर होता है । न्यायालय को पारिस्थितिक साक्ष्य से संबंधित किसी मामले में सम्बद्ध व्यक्ति की दोषिता के निष्कर्ष पर पहुंचने के पहले परिस्थितियों पर अत्यधिक सतर्कतापूर्वक विचार करना चाहिए और फिर भी यदि कोई ऐसा संदेह उत्पन्न होता है जो अभियुक्त की निर्दोषिता के साथ असुसंगत है, तो लाभ अभियुक्त को मिलना चाहिए । (पैरा 16, 18 और 30)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2009] (2009) 7 एस. सी. सी. 647 :
उत्तरांचल राज्य बनाम **आलोक शर्मा और अन्य** ; 14

[1991] ए. आई. आर. 1991 एस. सी. 1853 :
खुज्जी उर्फ **सुरेन्द्र तिवारी** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ; 24

[1989] ए. आई. आर. 1989 एस. सी. 1543 :
उत्तर प्रदेश राज्य बनाम **चेतराम और अन्य** । 23

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2009 की दांडिक अपील सं. 2109.

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री डी. एन. रे, लोकेश के. चौधरी और श्रीमती सुमिता रे,

प्रत्यर्थी की ओर से सुश्री हेमंतिका वाही, जेसल वाही और सुवेनी बनर्जी

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति अशोक कुमार गांगुली ने दिया ।

न्या. गांगुली – पक्षकारों की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेलों को सुना ।

2. इस मामले में विचाराणार्थ कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न उद्भूत हुए हैं ।

3. यह अपील दोनों निचले न्यायालयों द्वारा निकाले गए समवर्ती निष्कर्षों, जिनके द्वारा अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध किया गया और उसको आजीवन कारावास भोगने के द्वारा दंडादिष्ट किया गया, के विरुद्ध फाइल की गई है । विचारण न्यायालय का निर्णय वड़ोदरा के अपर सेशन न्यायाधीश द्वारा 2001 के सेशन मामला संख्या 275 में तारीख 16 अगस्त, 2001 को पारित निर्णय और आदेश है । इस आदेश की पुष्टि उच्च न्यायालय ने 2001 की दांडिक अपील संख्या 815 में तारीख 17 मार्च, 2009 को पारित निर्णय और आदेश द्वारा कर दी थी ।

4. इस न्यायालय ने विशेष इजाजत याचिका के प्रक्रम पर तारीख 27 जुलाई, 2009 के आदेश द्वारा मात्र इस प्रयोजनार्थ नोटिस जारी किया कि क्या याची भारतीय दंड संहिता की धारा 304 के किसी भाग के अधीन कोई अपराध कारित करने का दोषी है, न कि धारा 302 के अधीन ।

5. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने दलील दी कि यद्यपि नोटिस जारी किए जाने के प्रक्रम पर इस न्यायालय ने अपने अधिकार केवल भारतीय दंड संहिता की धारा 304 के विवाद्यकों के भीतर सीमित कर लिए थे, फिर भी यह न्यायालय मामले की अंतिम सुनवाई के समय नोटिस जारी करते समय दिए गए निदेश का पालन करने के लिए बाध्य नहीं है और अपीलार्थी को यह दलील देने के अधिकार समेत कि उसको मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से अवगत कराया जाना चाहिए था, सभी विवाद्यकों पर दलीलें देने का हक है । हम पूर्वोक्त निवेदन की शुद्धता का परीक्षण करने के पूर्व इस न्यायालय के नियम का अवलोकन करने के लिए आनत हैं । 1966 के उच्चतम न्यायालय नियम (जिसको इसमें इसके पश्चात् "नियम" कह कर निर्दिष्ट किया गया है), जिसको संविधान के अनुच्छेद 145 के अधीन विरचित किया गया है, इस जांच के संबंध में सुसंगत है । इस न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि उच्चतम न्यायालय की नियम बनाने की शक्ति अपनी खुद की प्रक्रिया का विनियमित करने के प्रयोजनार्थ मात्र दो परिसीमाओं के अधीन है :–

(i) ये नियम संसद् द्वारा बनाए गए कानूनों के अधीन हैं (देखें रोडमेडेन इंडिया लिमिटेड **बनाम** इंटरनेशनल ट्रेड एक्सपो सेंटर लिमिटेड, (2006) 11 एस. सी. सी. 651 = ए. आई. आर. 2006 एस. सी. 3456) ।

(ii) ये नियम अधीनस्थ विधान की प्रकृति के होने के कारण संवैधानिक उपबंध की अध्यपेक्षा नहीं कर सकते । (देखें प्रेम चंद गर्ग और एक अन्य **बनाम** उत्पाद शुल्क आयुक्त और अन्य, ए. आई. आर. 1963 एस. सी. 996) ।

6. तथापि, ये नियम इस न्यायालय की प्रथा और प्रक्रिया को नियंत्रित करने के लिए आशयित हैं ।

7. संविधान का अनुच्छेद 145 उपबंधित करता है कि उच्चतम न्यायालय संसद् द्वारा बनाई गई किसी विधि के उपबंधों के अधीन रहते हुए राष्ट्रपति के अनुमोदन से न्यायालय की पद्धति और प्रक्रिया के साधारणतया, विनियमन के लिए नियम बना सकेगा जिसके अंतर्गत निम्नलिखित भी हैं, अर्थात् :–

"(क) उस न्यायालय में विधि-व्यवसाय करने वाले व्यक्तियों के बारे में नियम ;

(ख) अपीलें सुनने के लिए प्रक्रिया के बारे में और अपीलों संबंधी अन्य विषयों के बारे में,

(ग) भाग 3 द्वारा प्रदत्त अधिकारों में से किसी का प्रवर्तन कराने के लिए उस न्यायालय में कार्यवाहियों के बारे में नियम ;

(गग) अनुच्छेद 139क के अधीन उस न्यायालय में कार्यवाहियों के बारे में नियम ;

(घ) अनुच्छेद 134 के खंड (1) के उपखंड (ग) के अधीन अपीलों को ग्रहण किए जाने के बारे में नियम ;

(ङ) उस न्यायालय द्वारा सुनाए गए किसी निर्णय या किए गए आदेश का जिन शर्तों के अधीन रहते हुए पुनर्विलोकन किया जा सकेगा उनके बारे में और ऐसे पुनर्विलोकन के लिए प्रक्रिया के बारे में, जिसके अन्तर्गत वह समय भी है जिसके भीतर ऐसे पुनर्विलोकन के लिए आवेदन उस न्यायालय में ग्रहण किए जाने हैं, नियम ;

(च) उस न्यायालय में किन्हीं कार्यवाहियों के और उनके आनुषंगिक खर्चे के बारे में, तथा उसमें कार्यवाहियों के संबंध में प्रभारित की जाने वाली फीसों के बारे में नियम ;

(छ) जमानत मंजूर करने के बारे में नियम ;

(ज) कार्यवाहियों को रोकने के बारे में नियम ;

(झ) जिस, अपील के बारे में उस न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि वह तुच्छ या तंग करने वाली है अथवा विलंब करने के प्रयोजन से की गई है, उसके संक्षिप्त अवधारण के लिए उपबंध करने वाले नियम ।'

8. इस मामले में हम अनुच्छेद 145 के अन्य उपनुच्छेदों से संबद्ध नहीं हैं । अत:, संवैधानिक उपबंध के अधीन इस न्यायालय द्वारा विरचित नियम संविधान के अनुच्छेद 142 जो निम्नलिखित को उपबंधित करता है, के अधीन इस न्यायालय की शक्ति की परिधि को समझे जाने के प्रयोजनार्थ पढ़े जाने चाहिएं :–

"142. **उच्चतम न्यायालय की डिक्रियों और आदेशों का प्रवर्तन और प्रकटीकरण आदि के बारे में आदेश** – (1) उच्चतम न्यायालय अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए ऐसी डिक्री पारित कर सकेगा या ऐसा आदेश कर सकेगा जो उसके समक्ष लंबित किसी वाद या

विषय में पूर्ण न्याय करने के लिए आवश्यक हों और इस प्रकार पारित डिक्री या किया गया आदेश भारत के राज्यक्षेत्र में सर्वत्र ऐसी रीति से, जो संसद् द्वारा बनाई गई किसी विधि या उसके अधीन विहित की जाए और जब तक इस निमित्त इस प्रकार उपबंध नहीं किया जाता है तब तक, ऐसी रीति से जो राष्ट्रपति आदेश द्वारा विहित करे, प्रवर्तनीय होगा ।"

(2) संसद् द्वारा इस निमित्त बनाई गई किसी विधि के उपबंधों के अधीन रहते हुए, उच्चतम न्यायालय को भारत के संपूर्ण राज्यक्षेत्र के बारे में किसी व्यक्ति को हाजिर कराने के, किन्हीं दस्तावेजों के प्रकटीकरण या पेश कराने के अथवा अपने किसी अवमान का अन्वेषण करने या दंड देने के प्रयोजन के लिए कोई आदेश करने की समस्त और प्रत्येक शक्ति होगी ।"

9. संविधान के अनुच्छेद 142 के उपबंधों का अर्थान्वयन इस न्यायालय द्वारा अनेक निर्णयों में किया गया है । फिर भी एक बात स्पष्ट है कि यह न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए ऐसी डिक्री और आदेश पारित कर सकता है जैसाकि इस न्यायालय के समक्ष लंबित किसी वाद या मामलों में पूर्ण न्याय करने के लिए आवश्यक हो । अत: यह स्पष्ट है कि न्यायालय मामले को सुनते समय ऐसा आदेश पारित कर सकता है जो मामले में न्याय करने के लिए आवश्यक हो और ऐसा करते हुए न्यायालय की अधिकारिता पर कोई बाधा अधिरोपित नहीं की जा सकती है सिवाय विधि के किसी अभिव्यक्त उपबंध उसके विपरीत हो, के अनुक्रम का पालन करके और सामान्यतया यह न्यायालय अनुच्छेद 142 के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए उसका अनदेखा नहीं कर सकता ।

10. याचिका सुनवाई के लिए ग्रहण किए जाते समय न्यायालय द्वारा पारित आदेश विधि के किसी अभिव्यक्त उपबंध का दर्जा नहीं रखता । किसी याचिका को सुने जाते समय न्यायालय द्वारा नोटिस जारी किए जाने के द्वारा की गई मताभिव्यक्ति अनंतिम मताभिव्यक्ति होती है । ऐसी मताभिव्यक्तियां या आदेश इस न्यायालय की अधिकारिता को अनुच्छेद 142 के अधीन सीमित नहीं कर सकती ।

11. यदि हम नियमों का अवलोकन करें तो आदेश 47, नियम 6 से यह स्पष्ट हो जाता है कि न्यायालय की अन्तर्निहित शक्तियां इन नियमों के अधीन व्यावृत्त हैं । आदेश 47 नियम 6 के उपबंध का उल्लेख इस

स्थिति को प्रदर्शित करने के प्रयोजनार्थ नीचे किया गया है :–

> "इन नियमों में कुछ भी ऐसा आदेश पारित करने, जो न्याय के उद्देश्य को अभिप्राप्त करने के प्रयोजनार्थ आवश्यक हो या न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने वाला हो, से न्यायालय की अन्तर्निहित शक्तियों को सीमित या अन्यथा रूप से प्रभावित करने वाला प्रतीत नहीं किया जाएगा ।"

12. आदेश 47 नियम 1 भी लगभग यही प्रभाव रखता है जिसको नीचे उल्लिखित किया गया है :–

> "न्यायालय पक्षों को दर्शित किए गए पर्याप्त कारणोंवश इन नियमों की किसी भी अपेक्षा के अनुपालन से माफ कर सकता है और प्रथा और प्रक्रिया के मामले में ऐसा निदेश दे सकता है जैसाकि वह उचित और समीचीन प्रतीत करे ।"

13. हम नियमों के अंतर्गत इस स्थिति और अनुच्छेद 142 के अधीन संवैधानिक उपबंध को ध्यान में रखते हुए यह नहीं समझते कि यह न्यायालय अंतिम सुनवाई के समय विवाद पर संपूर्ण परिप्रेक्ष्य में विचार करने से विवर्जित है और ऐसा करते हुए यह न्यायालय नोटिस जारी करते समय पारित किसी आदेश में की गई मताभिव्यक्ति द्वारा नहीं है ।

14. इस बाबत मताभिव्यक्ति **उत्तरांचल राज्य** बनाम **आलोक शर्मा और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय में की गई है । निर्णय के पृष्ठ 658 पर पैराग्राफ 31 में अनुच्छेद 142 के अभिव्यक्त उपबंध को निर्दिष्ट करते हुए इस न्यायालय ने जो अभिनिर्धारित किया, इस प्रकार है :–

> "जहां तक 2005 की विशेष इजाजत याचिका (सिविल) संख्या 6451 और 2005 की विशेष इजाजत याचिका (सिविल) संख्या 8239 से उद्भूत होने वाली सिविल अपीलों का संबंध है, यद्यपि मामले को पिछली मजदूरी के विवाद्यक विनिर्धारण तक सीमित करते हुए नोटिस जारी किया गया था, किंतु अन्य मामलों में पारित आदेश को दृष्टि में रखते हुए हमारा यह विचार है कि उक्त आदेश को वापस ले लिया जाएगा और सभी बिंदुओं के विनिर्धारण हेतु, इजाजत प्रदान कर दी जाएगी । हमारे विचार में प्रत्यर्थियों के मामले पर भी

---

[1] (2009) 7 एस. सी. सी. 647.

समान प्रकृति का होने के कारण भिन्न रूप से विचार नहीं किया जाना चाहिए । यह आदेश संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन हमारी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए पारित किया गया है । तथापि, हम यह स्पष्ट करते हैं कि यदि उक्त प्रत्यर्थियों को किसी रकम का संदाय किया गया है तो उसकी वसूली नहीं की जानी चाहिए । अपीलों को ऊपरनिर्दिष्ट निदेशों के साथ स्वीकार किया जाता है ।"

15. हम सादृश्यता का प्रयोग करते हुए सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के उपबंध को निर्दिष्ट करते हैं । धारा 100 इस प्रकार है :–

"100. **द्वितीय अपील** – उसके सिवाय जैसा इस संहिता के पाठ में या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में अभिव्यक्त रूप से उपबंधित है, उच्च न्यायालय के अधीनस्थ किसी न्यायालय द्वारा अपील में पारित प्रत्येक डिक्री की उच्च न्यायालय में अपील हो सकेगी, यदि उच्च न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि उस मामले में विधि का कोई सारवान् प्रश्न अन्तर्वलित है ।

(2) एकपक्षीय पारित अपीली डिक्री की अपील इस धारा के अधीन हो सकेगी ।

(3) इस धारा के अधीन अपील में अन्तर्वलित विधि के उस सारवान् प्रश्न का अपील के ज्ञापन में प्रमितत: कथन किया जाएगा ।

(4) जहां उच्च न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि किसी मामले में सारवान विधि का प्रश्न अन्तर्वलित है तो वह उस प्रश्न को बनाएगा ।

(5) अपील इस प्रकार बनाए गए प्रश्न सुनी जाएगी और प्रतिवादी को अपील की सुनवाई में यह तर्क करने की अनुज्ञा दी जाएगी कि ऐसे मामले में ऐसा प्रश्न अन्तर्वलित नहीं है :

परंतु इस धारा की किसी बात के बारे में यह नहीं समझा जाएगा कि वह, विधि के किसी अन्य ऐसे सारवान् प्रश्न पर जो न्यायालय के द्वारा नहीं बनाया गया है, न्यायालय का यह समाधान हो जाने पर कि उस मामले में ऐसा प्रश्न अन्तर्वलित है, न्यायालय के कारणों को लेखबद्ध करके अपील सुनने की शक्ति वापस लेती है या उसे न्यून करती है ।"

16. संहिता की धारा 100 का परंतुक स्पष्ट करता है कि उच्च

न्यायालय की शक्तियां किसी ऐसे प्रश्न, जिसको द्वितीय अपील ग्रहण किए जाने के समय निश्चित नहीं किया गया, द्वितीय अपील सुने जाने के प्रयोजनार्थ रुकावट नहीं बन सकता, जहां तक कि मामले में कोई अन्य प्रश्न अन्तर्वलित न हो । जहां तक उच्च न्यायालय का संबंध है, उसको द्वितीय अपील के प्रयोजनार्थ धारा 100 के अधीन कानूनी रूप से मान्यता प्रदान की गई है ।

17. अत: हमको इस तथ्य के बाद भी कि नोटिस जारी किए जाते समय तारीख 27 जुलाई, 2009 के आदेश के निबंधनों के अनुसार सीमित अधिकार थे, दोषमुक्ति के प्रयोजनार्थ अपीलार्थी के अभिवाक् पर विचार करने का अधिकार प्राप्त है ।

18. तथापि, हम यह स्पष्ट कर देते हैं कि सभी मामलों में यह सर्वव्यापी प्रथा नहीं हो सकती । यह प्रश्न कि क्या न्यायालय अंतिम सुनवाई के समय अपनी जांच की परिधि को विस्तृत कर देगा, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर होता है । चूंकि इस मामले के तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि अपीलार्थी को सभी बिंदुओं पर सुना जाए, अत: हम पूर्वोक्त निष्कर्ष पर पहुंचते हैं ।

19. अब, मामले के तथ्यों पर विचार करते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि मौटे तौर पर अपीलार्थी के विरुद्ध मामले में कोई प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है । मामले के तथ्य यह है कि मृतक अपीलार्थी के घर में नौकरानी के रूप में कार्यरत थी । वह अपने कार्य से अनुपस्थित थी और अपीलार्थी उसको नौकरानी के कार्य पर पहुंचने के लिए बुलाने हेतु उसके घर, जो अपीलार्थी के घर निकटवर्ती क्षेत्र में ही स्थित था, गया था । किसी का भी यह पक्षकथन नहीं है कि अपीलार्थी मृतका के घर किसी आयुध से लैस होकर गया था या वह अपने साथ कोई ज्वलनशील पदार्थ ले गया था । इसलिए, अपीलार्थी द्वारा मृतका के कोई शारीरिक नुकसान या क्षति कारित किए जाने के पूर्व विचार की आशंका स्वीकृतत: समाप्त हो जाती है ।

20. अब मामले के तथ्यों पर विचार करते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि व्यापक रूप से अपीलार्थी के विरुद्ध इस मामले में कोई प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है । तथ्य यह है कि मृतक अपीलार्थी के घर में नौकरानी के रूप में कार्य कर रही थी । वह अपने कार्य से अनुपस्थित थी और अपीलार्थी उसके घर जो अपीलार्थी के घर के निकट के क्षेत्र में स्थित है, अपने कार्य पर पहुंचने के लिए बुलाने के लिए गया था । किसी भी पक्ष का यह पक्षकथन नहीं है कि अपीलार्थी मृतका के घर किसी आयुध से

लैस होकर या कोई ज्वलनशील पदार्थ लेकर गया था । इसलिए, मृतक को कोई शारीरिक हानि या क्षति कारित करने का अपीलार्थी का कोई इरादा नहीं था ।

21. अपीलार्थी मृतक के घर अल्पेश से लैस होकर गया था । चूंकि मृतका नौकरानी के रूप में अपने कार्य पर आने और कार्यारंभ करने से इनकार कर रही थी, मृतका के घर में अपीलार्थी और मृतक के मध्य विवाद उपधारणा के आधार पर इस आधार पर हुआ था कि 375/- रुपए प्रतिमाह की रकम जिसका संदाय अपीलार्थी द्वारा मृतका को पारिश्रमिक के रूप में किया जाता था, अत्यधिक न्यून था । अपीलार्थी ने बचाव में अभिकथित किया है कि मृतका ने अपीलार्थी से 10,000/- रुपए का ऋण लिया था और अपीलार्थी चाहता था कि मृतका उस रकम को वापस करे । तथापि, इस प्रतिरक्षा को विचारण न्यायालय या उच्च न्यायालय द्वारा स्वीकार नहीं किया गया है । स्वीकृतत:, विवाद हुआ था और यह अभिकथित किया गया है कि अपीलार्थी क्षणिक क्रोध से ग्रस्त होकर मृतका के घर गया और उसका मुख दबा दिया । अभियोजन का आगे पक्षकथन यह है कि जब अपीलार्थी मृतका के घर गया तो वह उस समय भोजन पका रही थी । उसके निकट किरोसीन का एक कैन रखा था और अपीलार्थी ने मृतका के ऊपर किरोसिन के उस कैन को लगभग खाली कर दिया और माचिस की तीली जला ली । आश्चर्यजनक रूप से अल्पेश जो अपीलार्थी के साथ मृतका के घर गया था, इसके पहले कि जलाए जाने की घटना घटित होती, घटनास्थल से भाग गया था और अभियोजन द्वारा उसका परीक्षण बिल्कुल नहीं किया गया । इस मामले में दो अन्य साक्षी हैं अभि. सा. 1, जो मृतका का पति है और अभि. सा. 2, जो मृतका की बड़ी ननद है । अभि. सा. 2 मृतका की चीखने-चिल्लाने की आवाजें सुनकर घटनास्थल पर आया था और उसने मृतका को उपचार के लिए चिकित्सक के पास ले जाने का इंतजाम किया था । अभि. सा. 1, मृतका के पति और अभि. सा. 2 कांता बेन, जिन्होंने मृतका को चिकित्सीय उपचार के लिए ले जाने का इंतजाम किया था, को पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया था । अभि. सा. 1, मृतका के पति ने अपने साक्ष्य में बताया था कि मृतका की पहले भी आत्महत्या के लिए प्रवृत्त रहने वाली आदत से ग्रस्त थी ।

22. अत:, मामला पूर्णत: पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित है और मृतका का कथन मृत्युकालिक कथन के आधिक्य में है । ऐसा प्रतीत होता है कि प्रथम मृत्युकालिक कथन तब अभिलिखित किया गया था जब अभि.

सा. 2 कांता बेन मृतका को अपराह्न 3.30 बजे अस्पताल लेकर गई जहां चिकित्सक ने कहा कि मृतका पूरी तरह से होश में थी और उसने चिकित्सक को सूचित किया था कि अपीलार्थी ने उसके घर पर जब अपना कार्य कर रही थी और माचिस की तीली से उसके ऊपर आग लगा दी । द्वितीय मृत्युकालिक कथन, जो प्रदर्श 27 है, पुलिस उप निरीक्षक द्वारा अभिलिखित किया गया था और तीसरा कार्यकारी मजिस्ट्रेट द्वारा अभिलिखित की गई थी (प्रदर्श 31) । अप्रत्यक्ष रूप से घटना के दिन कुछ घंटों के अंतराल पर अभिलिखित किए गए मृतका के इन मृत्युकालिक कथनों के मध्य कोई असंगतता नहीं है । अभियोजन द्वारा यह साक्ष्य प्रस्तुत किया गया है कि मृतका घटना की तारीख से छ: दिनों तक जीवित रही थी और इस अवधि के दौरान जब तक वह जीवित रही, उसने अपनी चेतना को खो दिया था और उसका पुन: प्राप्त नहीं कर सकी थी । अभि. सा. 1 का साक्ष्य यह है कि उसको घटना की सूचना दी गई थी और वह घटना की तारीख पर मृतका को देखने गया था और उसने पाया था कि वह (मृतका) चेतनावस्था में नहीं थी । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने आगे निवेदन किया कि चिकित्सक ने इस बाबत अपनी लिखित राय नहीं दी थी कि मृतका अपना कथन अभिलिखित कराने के लिए पूर्णतया थी । यद्यपि चिकित्सक ने मौखिक रूप से ऐसा कहा था । साक्ष्य के इस भाग का अवलंब लेते हुए, विशेष रूप से मृतका के पति के साक्ष्य का, अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने निवेदन किया कि यद्यपि यह संभव है कि पति को पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया हो, पक्षद्रोही साक्षियों के साक्ष्य के अधिमूल्यन से संबंधित विधि का यह आशय नहीं है कि उनके द्वारा दिए गए साक्ष्य का पूर्णतया अनदेखा कर दिया जाए । इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि पक्षद्रोही साक्षी द्वारा दिए गए साक्ष्य में भी सत्यता के तत्व समाविष्ट हो सकते हैं ।

23. इस न्यायालय ने **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **चेतराम और अन्य**[1] वाले मामले में अभिनिर्धारित किया है कि मात्र इस कारणवश कि साक्षियों को पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया है, सम्पूर्ण साक्ष्य को अस्वीकृत नहीं किया जा सकता । [देखें पृष्ठ 1548 पर पैरा 13]

24. **खुज्जी** उर्फ **सुरेन्द्र तिवारी** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने समान विचार व्यक्त

---

[1] ए. आई. आर. 1989 एस. सी. 1543.

[2] ए. आई. आर. 1991 एस. सी. 1853.

किए । रिपोर्ट के पृष्ठ 1857 के पैरा 6 पर इस न्यायालय ने न्यायमूर्ति अहमदी, जो उस समय इस न्यायालय के न्यायाधीश थे, द्वारा इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों को निर्दिष्ट करते हुए मत व्यक्त अधिकथित किया कि मात्र इस कारणवश कि साक्षी पक्षद्रोही हो गया है, उसके सम्पूर्ण साक्ष्य को अनदेखा नहीं किया जाएगा ।

25. इसके अतिरिक्त विद्वान् काउंसेल ने निवेदन किया कि धारा 313 के अधीन अपीलार्थी के कथन के साथ लिखित दस्तावेज भी संलग्न थे । यहां पर अपीलार्थी ने प्रतिरक्षा का अभिवाक् किया कि वह मृतका को बचाना चाहता था और इसी कारणवश उसका दाहिनी हाथ जल गया था

26. तथापि, न तो विचारण न्यायलय और न ही उच्च न्यायालय ने मामले के इस पहलू पर विचार किया । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने आगे निवेदन किया कि अभियोजन का पक्षकथन, जैसाकि दिया गया है, पूर्णत: अधिसंभाव्य है । उन्होंने श्रमसाध्यतापूर्वक दलील दी कि किसी व्यक्ति के लिए यह असंभव था कि वह किसी स्त्री को, उसकी पकड़ से छूटन के लिए बुरी तरह संघर्ष कर रही थी, को एक हाथ से पकड़ता और दूसरे हाथ से उसके ऊपर एक कैन से, जिसमें एक छोटा सा सुराख था, तीन लिटर किरोसीन का तेल डालता और तत्पश्चात् माचिस जलाता, जिसमें दोनों हाथों का प्रयोग अपेक्षित था । निचले न्यायालयों को मामले के इस पहलू पर विचार करना चाहिए था जो अभियोजन के पक्षकथन में अंतर्निहित अनधिसंभाव्यता को दर्शित करता है ।

27. इस बात से इनकर नहीं किया जा सकता चूंकि साक्ष्य में यह बात स्पष्ट हो गई है कि चूंकि मृतका पालिस्टर की साड़ी पहने हुए थी, जलने के कारण कारित क्षतियां को बढ़ा-चढ़ा कर बताया गया था जो इतनी गंभीर नहीं होती यदि उसने सूती साड़ी पहने होती । विद्वान् काउंसेल ने निवेदन किया कि इस न्यायालय द्वारा पूर्वोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए मामला भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन नहीं आ सकता ।

28. राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल ने निवेदन किया कि अपीलार्थी के पक्षकथन पर विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा बारंबार विचार किया गया था और दोनों ही न्यायालयों ने निरंतर रूप से उसके विरुद्ध निष्कर्ष निकाला और पूर्वोक्त दलील को नामंजूर कर दिया था ।

29. विद्वान् काउंसेल ने आगे निवेदन किया कि यह मामला प्रत्यक्षत:

भारतीय दंड संहिता की धारा 300 के तीसरे अपवाद के अन्तर्गत आता है ।

30. हमने सुसंगत निवेदन पर विचार किया है । हमारा यह विचार है कि न्यायालय को पारिस्थितिक साक्ष्य से संबंधित किसी मामले में सम्बद्ध व्यक्ति की दोषिता के निष्कर्ष पर पहुंचने के पहले परिस्थितियों पर अत्यधिक सतर्कतापूर्वक विचार करना चाहिए और फिर भी यदि कोई ऐसा संदेह उत्पन्न होता है जो अभियुक्त की निर्दोषिता के साथ असुसंगत है, तो लाभ अभियुक्त को मिलना चाहिए ।

31. प्रस्तुत मामले में यह स्पष्ट है कि अपीलार्थी का मृतका की हत्या करने का कोई पूर्व इरादा नहीं था । सभी कुछ क्षणिक उत्तेजनावश घटित हुआ था । ऐसा प्रतीत होता है कि अपीलार्थी ने मृतका के कुछ उत्प्रेरित करने वाले अभिकथनों के कारण आत्मनियंत्रण खो दिया था । अभि. सा. 1 के साक्ष्य को ध्यान में रखते हुए इन संभाव्यताओं से इनकार नहीं किया जा सकता । तथापि, दोनों निचले न्यायलयों द्वारा निकाले निष्कर्षों और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री को ध्यान में रखते हुए इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि मृतका पर किरोसिन अपीलार्थी द्वारा डाला गया था ।

32. किंतु क्या यह मामला भारतीय दंड संहिता की धारा 300 के तृतीय अपवाद के अधीन आता है, अत्यंत संदेहपूर्ण है । यह न्यायालय के मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और मृतक की प्रतिरक्षा के प्रकाश में अभिनिर्धारित करता है कि मामला धारा 304 के भाग-2 के अधीन आता है और अपीलार्थी पहले ही ग्यारह वर्ष और दो माह का कारावास भोग चुका है । यह न्यायालय मामले को इस दृष्टि से देखते हुए अभिनिर्धारित करता है कि अपीलार्थी ने जो दंडादेश पहले ही भोग लिया है, धारा 304 के भाग-2 के अधीन पर्याप्त से अधिक है । तथापि, जुर्माने के दंडादेश को अपास्त किया जाता है ।

33. हमारे इस निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए कि मामला धारा 304 के भाग-2 के अधीन आता है, अपील ऊपरनिर्दिष्ट सीमा तक मंजूर की जाती है । अपीलार्थी को तुरंत निर्मुक्त कर दिया जाए यदि वह किसी अन्य मामले में वांछित न हो ।

अपील भागतः मंजूर की गई ।

शु.

[2013] 1 उम. नि. प. 22

न्यायमूर्ति पी. डी. दिनाकरन

बनाम

न्यायाधीश जांच समिति और अन्य

5 जुलाई, 2011

न्यायमूर्ति जी. एस. सिंघवी और न्यायमूर्ति चन्द्रमौली कुमार प्रसाद

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 32, 124(4) और 217 [सपठित न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968 की धारा 3(2)] – उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति को पद से हटाए जाने के लिए जांच समिति का गठन – जांच समिति में प्रत्यर्थी सं. 3 अधिवक्ता को शामिल किए जाने के संबंध में अभिकथित पक्षपात के आधार पर आक्षेप – प्रत्यर्थी सं. 3 के पक्षपातपूर्ण होने का अभिवाक् समिति का गठन करने संबंधी अधिसूचना के प्रकाशन के तुरंत पश्चात् न करके समिति की ओर से सूचना प्राप्त होने पर किया जाना – प्रत्यर्थी सं. 3 को समिति में शामिल करने के विरुद्ध किए गए विलंबित आक्षेप से यह प्रतीत होता है कि याची की यह सोची-समझी चाल थी और वह सभी संभव तरीके अपनाकर जांच पूरी होने में विलंब कराना चाहता था और याची द्वारा समिति के गठन की जानकारी हो जाने के पश्चात् लगभग दस मास तक प्रत्यर्थी सं. 3 को समिति में शामिल करने के संबंध में आक्षेप न करने से यह अप्रतिरोध्य निष्कर्ष निकलता है कि उसने इस संबंध में आक्षेप करने संबंधी अपने अधिकार का अधित्यजन कर दिया था ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 32, 124(4) और 217 [सपठित न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968 की धारा 3(2)] – उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति का हटाया जाना – जांच समिति में एक सदस्य को शामिल करने के संबंध में पक्षपात के अभिकथन के आधार पर आक्षेप – पक्षपातपूर्ण होने संबंधी प्रश्न का विनिश्चय न्यायालय या जांच समिति के दृष्टिकोण से नहीं बल्कि किसी युक्तिमान, वस्तुनिष्ठ और जानकार व्यक्ति के दृष्टिकोण से पक्षपातपूर्ण होने की वास्तविक संभाव्यता की कसौटी के आधार पर किया जाना चाहिए, अतः याची की प्रत्यर्थी सं. 3 के पक्षपातपूर्ण होने की संभाव्यता संबंधी आशंका तर्कसंगत है न कि काल्पनिक और समिति के अध्यक्ष से प्रत्यर्थी सं. 3 के स्थान पर एक

अन्य प्रख्यात विधिवेत्ता नामनिर्दिष्ट करने का अनुरोध किया गया ।

नैसर्गिक न्याय – न्यायिक कार्यवाहियां – पक्षपातपूर्ण या हितबद्ध होने के विरुद्ध नियम – यदि कोई न्यायाधीश विवाद के किसी पक्षकार के पक्ष में या उसके विरुद्ध है या ऐसी स्थिति में है कि पूर्वाग्रह का अनुमान लगाया जा सकता है तो वह न्यायाधीश के रूप में कार्य करने के लिए निरर्हित हो जाता है और कार्यवाहियां दूषित हो जाती हैं और धनीय हित, चाहे वह कितना ही छोटा क्यों न हो, किसी व्यक्ति को न्यायाधीश के रूप में कार्य करने से निरर्हित कर देता है तथा गैर-धनीय हित में पक्षपातपूर्ण होने की वास्तविक संभाव्यता न केवल शिकायतकर्ता पक्षकार द्वारा अभिनिश्चित सामग्री से प्रकट होनी चाहिए बल्कि ऐसे अन्य तथ्यों से भी प्रकट होनी चाहिए जो वह आसानी से अभिनिश्चित कर सकता था और जिन्हें युक्तियुक्त जांच करके आसानी से सत्यापित किया जा सकता था ।

नैसर्गिक न्याय – प्रकृति और परिधि – नैसर्गिक न्याय न केवल न्याय प्राप्त करना है बल्कि न्याय की हानि को रोकना भी है और नैसर्गिक न्याय के नियम नम्य हैं तथा उनका लागू किया जाना किसी मामले के तथ्यों, कानूनी उपबंधों, प्रभावित अधिकार की प्रकृति और उन परिणामों पर निर्भर करता है जो नैसर्गिक न्याय के नियमों का अतिक्रमण करने के कारण निकल सकते हैं ।

राज्य सभा के पचास सदस्यों ने याची को, जो कि उस समय कर्नाटक उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति के रूप में तैनात था, भारत के संविधान के अनुच्छेद 124(4) के साथ पठित अनुच्छेद 217 के अधीन हटाने के लिए भारत के राष्ट्रपति को समावेदन उपस्थापित करने के प्रस्ताव की एक सूचना प्रस्तुत की । उस सूचना में दुर्व्यवहार के ऐसे कृत्य प्रगणित किए गए जो अभिकथित रूप से याची द्वारा कारित किए गए थे और उसके साथ एक स्पष्टीकारक टिप्पण और अभिकथनों के समर्थन में दस्तावेज़ भी लगाए गए थे । राज्य सभा के सभापति ने (जिसे इसमें इसके पश्चात् "सभापति" कहा गया है) प्रस्ताव ग्रहण किए जाने के पश्चात् एक समिति का गठन किया जिसमें न्यायमूर्ति श्री वी. एस. सिरपुरकर, भारत के उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश, न्यायमूर्ति श्री ए. आर. दवे, आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के तत्कालीन मुख्य न्यायमूर्ति और प्रत्यर्थी सं. 3 थे । अधिनियम की धारा 3(2) के अधीन तारीख 15 जनवरी, 2010 को अधिसूचना जारी किए जाने के ठीक पश्चात्, समाचारपत्रों ने यह इंगित करते हुए रिपोर्टें प्रकाशित कीं कि इस समिति में प्रत्यर्थी सं. 3 को शामिल

करने के संबंध में इस आधार पर आक्षेप है कि उसने याची को दिसम्बर, 2009 में विधिक राय दी थी । प्रत्यर्थी सं. 3 ने समाचारपत्रों की रिपोर्टों को पढ़ने के पश्चात् सभापति से यह अनुरोध करते हुए तारीख 19 जनवरी, 2010 को एक पत्र भेजा कि उसे समिति से अवमुक्त कर दिया जाए । सभापति ने सम्यक् रूप से विचार करने के पश्चात्, प्रत्यर्थी सं. 3 के अनुरोध को स्वीकार करने से इनकार कर दिया और उसे समिति का सदस्य बने रहने के लिए कहा । इसके पश्चात्, प्रत्यर्थी सं. 3 ने तारीख 21 जनवरी, 2010 को पत्र भेजा और वह कर्तव्यभार को स्वीकार करने के लिए सहमत हो गया । तारीख 12 मई, 2010 को याची ने स्वयमेव भारत के उप-राष्ट्रपति और राज्य सभा के सभापति को एक पत्र भेजा जिसमें यह कहा गया कि मुझे प्रिंट और इलैक्ट्रोनिक मीडिया के माध्यम से अधिनियम की धारा 3(2) के अधीन समिति का गठन किए जाने के बारे में ज्ञात हुआ है । याची ने यह दावा कि उसके विरुद्ध लगाए गए अभिकथन मिथ्या और निराधार हैं । उसने इस बात पर दुख व्यक्त किया कि उसे अपना न्यायिक कार्य करने से निवारित किया जा रहा है और यह प्रार्थना की कि उसके विरुद्ध आरंभ की गई जांच तुरंत पूरी कर ली जाए और उसकी शिकायत का निवारण यथासंभव शीघ्र किया जाए । समिति ने अपने समक्ष रखी गई सामग्री की प्रारंभिक संवीक्षा करने के पश्चात् तारीख 16 मार्च, 2011 को एक सूचना जारी की जो कि याची को तारीख 23 मार्च, 2011 को तामील की गई जिसमें उससे आरोपों का उत्तर देने के लिए तारीख 9 अप्रैल, 2011 को उपस्थित होने के लिए कहा गया था । याची ने यह सूचना प्राप्त होने के पश्चात् भारत के उप-राष्ट्रपति और राज्य सभा के सभापति को तारीख 8 अप्रैल, 2011 को एक अभ्यावेदन प्रस्तुत किया जिसमें यह प्रार्थना की गई कि प्रस्ताव की सूचना ग्रहण करने संबंधी आदेश वापस ले लिया जाए, जांच समिति गठित करने वाला आदेश अभिखंडित किया जाए और समिति द्वारा जारी की गई सूचना बातिल की जाए । उस अभ्यावेदन में याची ने प्रथम बार यह अभिकथित करते हुए समिति में प्रत्यर्थी सं. 3 को शामिल करने के विरुद्ध आक्षेप उठाया कि पश्चात्वर्ती ने इस मामले में पहले ही अपने विचार व्यक्त कर दिए थे और उसे कतिपय आरोपों का दोषी घोषित कर दिया था । याची ने यह दावा किया कि प्रत्यर्थी सं. 3 ने भारत के तत्कालीन मुख्य न्यायमूर्ति से मिलने के लिए अधिवक्ताओं के एक प्रतिनिधि-मंडल का प्रतिनिधित्व किया था और वह उच्चतम न्यायालय में मेरे प्रोन्नयन के विरुद्ध ज्येष्ठ अधिवक्ताओं द्वारा किए गए अभ्यावेदन में एक हस्ताक्षरकर्ता था । याची ने इसके अलावा यह दावा किया कि मुझे

प्रत्यर्थी सं. 3 के आचरण से क्षोभ हुआ है क्योंकि इसके पूर्व उक्त प्रत्यर्थी ने न केवल मेरे कार्य की सराहना की थी बल्कि अपनी कृतज्ञता संसूचित करने के लिए मुझसे मुलाकात भी की थी और उच्चतम न्यायालय में प्रोन्नयन के लिए मेरे नाम की सिफारिश किए जाने पर बधाई संदेश भी भेजा था । अगले दिन, अर्थात्, तारीख 9 अप्रैल, 2011 को याची ने समिति के पीठासीन अधिकारी को एक पत्र भेजा जिसके साथ अध्यक्ष को प्रस्तुत किए गए अभ्यावेदन की एक प्रति संलग्न थी और यह अनुरोध किया कि उसके विनिश्चय की प्रतीक्षा की जाए । तारीख 20 अप्रैल, 2011 को याची ने समिति को एक आवेदन किया और तारीख 16 मार्च, 2011 वाली सूचना के विरुद्ध अनेक आक्षेप उठाए जिनमें एक आक्षेप यह था कि प्रत्यर्थी सं. 3 उसके विरुद्ध पूर्वाग्रह से ग्रस्त है । दो दिनों के पश्चात्, प्रत्यर्थी सं. 3 ने समिति के पीठासीन अधिकारी को तारीख 22 अप्रैल, 2011 का एक पत्र भेजा और उसमें उन सभी बातों को दोहराया जो उसने तारीख 27 जनवरी, 2010 के पत्र में कही थी किन्तु इसके साथ-साथ प्रत्यर्थी सं. 3 ने विनिर्दिष्ट रूप से इस बात से इनकार किया कि उसने याची को दोषी ठहराया था । उसने इस बात से भी इनकार किया कि याची ने उससे परामर्श किया था या उससे कोई राय मांगी गई थी और उसने वह राय दी थी । प्रत्यर्थी सं. 3 ने इस बात को स्वीकार किया कि जब याची के नाम की उच्चतम न्यायालय में प्रोन्नयन के लिए सिफारिश किए जाने का समाचार प्रकट हुआ तो उसने उसे तारीख 30 अगस्त, 2009 की ईमेल द्वारा बधाई दी थी, अध्यक्ष को संबोधित तारीख 19 जनवरी, 2010 के पत्र के प्रति निर्देश किया और यह उपदर्शित किया कि उसका यह कर्तव्य था कि वह पुनः समिति की सदस्यता से स्वयं हट जाता । प्रत्यर्थी सं. 3 ने इसी प्रकार का पत्र अध्यक्ष को भेजे जाने के लिए तैयार किया किन्तु समिति के पीठासीन अधिकारी द्वारा सलाह दिए जाने पर उसने उसे रोक लिया । याची के आक्षेपों पर विचार करने के पश्चात्, समिति ने (प्रत्यर्थी सं. 3 ने इन कार्यवाहियों में भाग नहीं लिया था) तारीख 24 अप्रैल, 2011 का एक विस्तृत आदेश पारित किया जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया कि समिति में प्रत्यर्थी सं. 3 को शामिल किए जाने के संबंध में किसी न किसी समय दोनों पक्षों द्वारा विरोध किया गया था और संभवतः यही बात उसकी निष्पक्षता पुष्ट करने के लिए पर्याप्त है । समिति ने यह मत व्यक्त किया कि राज्य सभा में समावेदन की सूचना रखे जाने से पूर्व, जिसके परिणामस्वरूप समिति का गठन हुआ था, प्रत्यर्थी सं. 3 को इस समिति में शामिल किए जाने के संबंध में इस आधार पर आक्षेप किया गया था कि

याची प्रत्यर्थी सं. 3 से मिला था और उससे इस विषय पर परामर्श किया था । उस अवसर पर प्रत्यर्थी सं. 3 ने समिति से हट जाने की पेशकश की थी किन्तु सभापति द्वारा उसकी पेशकश स्वीकार नहीं की गई थी । चूंकि समिति ने, जिसमें प्रत्यर्थी सं. 3 एक सदस्य थे, अपना कार्य करना आरंभ कर दिया था इसलिए किसी भी पक्ष की ओर से कोई शिकायत या आक्षेप नहीं किया गया था । जांच समिति ने इसके पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि अब उस न्यायाधीश की ओर से आक्षेप किया गया है जिसका आचरण जांच की विषयवस्तु है और यह स्पष्ट रूप से सोची-समझी चाल है । याची को आरंभ से ही यह ज्ञात था कि प्रत्यर्थी सं. 3 समिति का एक सदस्य है । उसने बहुत पहले तारीख 12 मई, 2010 को राज्य सभा के सभापति को एक पत्र भेजा था जिसमें समिति की कार्यवाहियों को शीघ्र पूरा कराने का अनुरोध किया गया था । उस पत्र में उसने समिति के तीनों सदस्यों के नामों का उल्लेख भी किया था किन्तु प्रत्यर्थी सं. 3 को समिति में शामिल किए जाने के संबंध में किंचित भी आक्षेप नहीं किया गया था । इस प्रकार समिति ने यह निष्कर्ष निकाला कि याची ने जिस समय प्रत्यर्थी सं. 3 को समिति में शामिल किए जाने के संबंध में आक्षेप किया है उससे यह प्रतीत होता है कि वह केवल समिति की कार्यवाहियों में विलंब कारित करने के लिए है, इसलिए समिति ने याची के आक्षेप को नामंजूर कर दिया । याची ने समिति और उसके आदेश को अभिखंडित करने की ईप्सा करते हुए प्रस्तुत याचिका फाइल की है । उच्चतम न्यायालय द्वारा याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस संबंध में कोई विवाद नहीं है कि प्रत्यर्थी सं. 3 ने बार एसोसिएशन ऑफ इंडिया द्वारा आयोजित सेमीनार में भाग लिया, जिसका वह उपाध्यक्ष था । उसने याची के इस न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में प्रोन्नयन से पूर्व उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों के संबंध में सार्वजनिक जांच करने की मांग की थी । इस सेमीनार के दौरान अनेक प्रख्यात अधिवक्ताओं ने इस आधार पर याची के प्रस्तावित प्रोन्नयन के विरुद्ध भाषण दिया कि उसके विरुद्ध गंभीर अभिकथन लगाए गए थे । इसके पश्चात्, प्रत्यर्थी सं. 3 ने याची के इस न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में प्रोन्नयन का विरोध करते हुए एक संकल्प का प्रारूप तैयार किया । वह अन्य प्रख्यात वकीलों के साथ भारत के तत्कालीन मुख्य न्यायमूर्ति से मिला । इन तथ्यों से किसी बुद्धिमान व्यक्ति के मन में यह आशंका उत्पन्न हो सकती है कि प्रत्यर्थी सं. 3 के पक्षपातपूर्ण होने की संभावना थी । एक युक्तिमान, वस्तुनिष्ठ और जानकार व्यक्ति यह कह सकता है कि प्रत्यर्थी

सं. 3 को याची के प्रोन्नयन का विरोध न किया होता यदि उसका यह समाधान न हो गया होता कि उसके विरुद्ध लगाए गए अभिकथनों में कुछ सार है । यह सही है कि न्यायाधीशों और वकीलों को वस्तुनिष्ठ बनने और भूसी में से अन्न, झूठ में से सच निकालने की क्षमता रखने का प्रशिक्षण दिया जाता है और हमें इस संबंध में कोई संदेह नहीं है कि प्रत्यर्थी सं. 3 के पास ये योग्यताएं हैं । हम समिति से भी इस बारे में सहमत हैं कि दोनों ओर से किया गया आक्षेप संभवतः किसी और बात के अलावा, "एकमात्र रूप से उसकी निष्पक्षता पुष्ट करने के लिए पर्याप्त है" । तथापि, प्रत्यर्थी सं. 3 के पक्षपातपूर्ण होने संबंधी विवाद को इस न्यायालय या उस विषय में समिति के दृष्टिकोण से नहीं देखा जाना है । इसे एक युक्तिमान, वस्तुनिष्ठ और जानकार व्यक्ति के दृष्टिकोण से देखा जाना है । वह कौन-सी राय बनाएगा । उसकी आशंका ही सर्वोपरि रूप से महत्वपूर्ण है । निर्णय के पूर्ववर्ती भाग में वर्णित तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रत्यर्थी सं. 3 के विरुद्ध पक्षपात की संभाव्यता संबंधी याची की आशंका युक्तियुक्त है न कि काल्पनिक हालांकि वास्तव में वह पक्षपातपूर्ण नहीं भी हो सकता है । (पैरा 45)

अगला प्रश्न जिस पर विचार किए जाने की आवश्यकता है, यह है कि समिति द्वारा तारीख 24 अप्रैल, 2011 को पारित आदेश प्रत्यर्थी सं. 3 के पक्षपातपूर्ण होने की युक्तियुक्त संभाव्यता के आधार पर अभिखंडित किया जाना चाहिए । इस विवाद्यक को विनिश्चित करते समय हमें यह ध्यान में रखना होगा कि याची कोई साधारण व्यक्ति नहीं है । वह विधि में निपुण है और वह विधिक रूप से प्रशिक्षित विवेक रखता है । इसके अलावा, याची ने पिछले 15 वर्षों से न्यायाधीश और उसके बाद उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति के सांविधानिक पद धारण किए हैं । याची ने यह अभिवचन नहीं किया था कि उसे बार एसोसिएशन ऑफ इंडिया द्वारा आयोजित सेमीनार के बारे में जानकारी नहीं थी जिसमें प्रख्यात अधिवक्ताओं ने भाग लिया था, जिनमें दो पूर्ववर्ती महाधिवक्ता भी थे और जिसमें प्रत्यर्थी सं. 3 ने इस न्यायालय में उसके प्रोन्नयन का विरोध करते हुए भाषण दिया था और उक्त प्रयोजनार्थ संकल्प का प्रारूप भी तैयार किया था । उस सेमीनार की कार्यवाहियों का प्रिंट और इलेक्ट्रानिक मीडिया में व्यापक प्रचार हुआ । अतः, यह कहा जा सकता है कि याची को समिति के गठन से बहुत पहले इस तथ्य का पता चल गया था कि प्रत्यर्थी सं. 3, जिसने याची के अपने कथनानुसार, न्यायालय में उसके कार्य की सराहना की थी और जब कालेजिम द्वारा इस न्यायालय में प्रोन्नयन के

लिए उसके नाम को मंजूरी दी गई थी, उसे बधाई संदेश भी भेजा था, उस सेमीनार में भाग लिया था और उसके प्रोन्नयन का विरोध करते हुए भाषण दिया था और उक्त प्रयोजनार्थ संकल्प का प्रारूप भी तैयार किया था । सभापति ने प्रत्यर्थी सं. 3 के प्रख्यात अधिवक्ता के रूप में लंबे अनुभव और सांविधानिक विधि के क्षेत्र में उसकी विशेषज्ञता को ध्यान में रखते हुए उसे समिति का सदस्य नियुक्त किया था । समिति का गठन तारीख 15 जनवरी, 2010 के शासकीय राजपत्र में अधिसूचित किया गया था और लगभग सभी समाचारपत्रों द्वारा इसका व्यापक रूप से प्रचार किया गया था । अतः, युक्तियुक्त रूप से यह धारणा की जा सकती है कि याची को जनवरी, 2010 मास में उस समिति के गठन के बारे में पता चल गया था, जिसमें प्रत्यर्थी सं. 3 भी शामिल था । उसने तारीख 12 मई, 2010 के अपने अभ्यावेदन में यह दावा किया था कि समिति के गठन और संरचना के बारे में उसे प्रिंट और इलेक्ट्रानिक मीडिया के माध्यम से पता चला । इस प्रकार, कम से कम तारीख 12 मई, 2010 को उसे इस बात की पूरी तरह जानकारी थी कि प्रत्यर्थी सं. 3 को समिति के सदस्य के रूप में नियुक्त किया गया था । इस बात के होते हुए भी उसने प्रकटतः इस कारण कोई आक्षेप नहीं उठाया था क्योंकि तारीख 6 दिसम्बर., 2009 को प्रत्यर्थी सं. 3 से मिलने के पश्चात् याची ने इस संबंध में संतुष्ट अनुभव किया कि उक्त प्रत्यर्थी उसके विरोध में नहीं है । अतः, याची द्वारा किया गया यह विलंबित अभिवाक् स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है कि बार एसोसिएशन ऑफ इंडिया द्वारा आयोजित बैठक में उसकी सक्रिय भागीदारी के कारण प्रत्यर्थी सं. 3 के बारे में यह समझा जाएगा कि वह उसके विरुद्ध पक्षपातपूर्ण है । यह उल्लेख करना भी महत्वपूर्ण है कि प्रत्यर्थी सं. 3 का याची से व्यक्तिगत रूप से कोई विरोध नहीं है । उसने उस सेमीनार में एसोसिएशन के उपाध्यक्ष के रूप में भाग लिया । विधिज्ञ-वर्ग के ज्येष्ठ सदस्यों द्वारा, जिसमें प्रत्यर्थी सं. 3 भी है, याची के प्रोन्नयन के मामले में, जिसके बारे में यह अभिकथित किया गया है कि उसने न्यायाधीश के रूप में और उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति के रूप में अपनी हैसियत का धनीय लाभ के लिए दुरुपयोग किया था, दर्शाई गई चिन्ता परवर्ती हेतुक से प्रेरित नहीं थी । उन्होंने वास्तव में यह महसूस किया कि याची के विरुद्ध लगाए गए अभिकथनों की जांच की जानी आवश्यक है । यह दर्शित नहीं होता है कि प्रत्यर्थी सं. 3 ने सेमीनार के पश्चात् ऐसा कुछ किया जिससे युक्तियुक्त प्रज्ञा वाले किसी भी व्यक्ति को किंचित भी यह आभास हो सकता हो कि वह याची का विरोधी था । इसके विपरीत, याची के अपने

कथनानुसार, वह प्रत्यर्थी सं. 3 से उसके निवास-स्थान पर तारीख 6 दिसम्बर, 2009 को मिला और उसे इस बात का विश्वास हो गया था कि प्रत्यर्थी सं. 3 उसके बिल्कुल भी विरोध में नहीं है । इस स्थिति के कारण याची के इस अभिवाक् को ग्रहण करना संभव नहीं है कि समिति के गठन को इस आधार पर अकृत किया जाना चाहिए कि प्रत्यर्थी सं. 3 उसके विरुद्ध पक्षपातपूर्ण है और तारीख 24 अप्रैल, 2011 का आदेश अभिखंडित किया जाना चाहिए । (पैरा 46)

इस विवाद्यक पर एक अन्य दृष्टिकोण से विचार करने की आवश्यकता है । स्वीकृततः, याची ने पक्षपात का अभिवाक् तारीख 16 मार्च, 2011 की सूचना, जिसके साथ आरोपों का कथन और दस्तावेज़ों और साक्षियों की सूची संलग्न थी, प्राप्त करने के पश्चात् ही उठाया । याची का इस संबंध में लगभग दस मास की अवधि तक जानबूझकर चुप रहना प्रत्यर्थी सं. 3 की समिति के सदस्य के रूप में नियुक्ति संबंधी उसके आक्षेप की सद्भाविकता के विरुद्ध जाता है । याची जैसी हैसियत वाले किसी व्यक्ति से यह उपधारणा की जा सकती है कि उसे आक्षेप करने संबंधी अपने अधिकार की जानकारी है । यदि याची को किंचित भी यह आशंका थी कि प्रत्यर्थी सं. 3 ने उसकी दोषिता के बारे में पहले से निर्णय बना लिया था या वह अन्यथा पक्षपातपूर्ण था तो वह सर्वप्रथम उपलब्ध अवसर पर समिति के सदस्य के रूप में उसकी नियुक्ति के बारे में आक्षेप करता । याची तारीख 15 जनवरी, 2010 की अधिसूचना के प्रकाशन होने के ठीक पश्चात् ऐसा कर सकता था । वह सभापति को यह अभ्यावेदन कर सकता था कि ऐसी समिति द्वारा, जिसमें प्रत्यर्थी सं. 3 एक सदस्य है, किया जाने वाला अन्वेषण ऋजु और निष्पक्ष नहीं होगा क्योंकि प्रत्यर्थी सं. 3 ने उसे पहले ही दोषी उपधारित कर लिया था । हम अभ्यावेदन के परिणाम की भविष्यवाणी नहीं कर सकते हैं किन्तु ऐसे अभ्यावेदन से सभापति को याची द्वारा की जाने वाली शिकायत पर विचार करने और उचित विनिश्चय करने का अवसर मिला होता, जैसा कि उसने मार्च, 2010 में किया था जब प्रत्यर्थी सं. 3 ने विधिज्ञ-वर्ग के एक भाग द्वारा की गई मांग के फलस्वरूप समिति से स्वयं को हटाने की ईप्सा की थी जिससे गलती से यह उपधारणा की गई थी कि याची ने प्रत्यर्थी सं. 3 से परामर्श किया था । तथापि, वस्तुस्थिति यह है कि याची ने यह कभी नहीं सोचा था कि प्रत्यर्थी सं. 3 उसके विरुद्ध पूर्वाग्रह से ग्रस्त है या विरोधी है और यही कारण है कि उसने अप्रैल, 2011 तक प्रत्यर्थी सं. 3 को समिति में शामिल किए जाने के विरुद्ध कोई आक्षेप नहीं किया था । इसके परिणामस्वरूप यह

अप्रतिरोध्य निष्कर्ष निकलता है कि याची ने प्रत्यर्थी सं. 3 की समिति के सदस्य के रूप में नियुक्ति के संबंध में आक्षेप करने संबंधी अपने अधिकार का अधित्यजन कर दिया था । याची को समिति में प्रत्यर्थी सं. 3 की नियुक्ति के संबंध में आक्षेप करने के लिए उपलब्ध अधिकार उसका व्यक्तिगत अधिकार था और वह कभी भी उसका अधित्यजन कर सकता था । (पैरा 47)

परिणामतः, धारा 3(2) के अधीन समिति में प्रत्यर्थी सं. 3 को शामिल करने के विरुद्ध उठाए गए विलंबित आक्षेप के बारे में यह प्रतीत होता है कि वह याची की सोची-समझी चाल है । वह एक बुद्धिमान व्यक्ति है और यह जानता है कि न्यायाधीश (जांच) नियम, 1969 के नियम 9(2)(ग) के निबंधनानुसार समिति के पीठासीन अधिकारी को, अधिनियम की धारा 3(3) के अधीन विरचित आरोपों की उस पर तामील करने की तारीख से तीन मास की अवधि के भीतर सभापति को रिपोर्ट भेजनी होती है । अतः, वह रिपोर्ट को भेजने में देरी करने के सभी संभावित तरीके अपनाना चाहता है जिससे कि समिति हर हालत में सभापति को नियम 9(2)(ग) के परन्तुक के निबंधनानुसार समय बढ़ाने का अनुरोध करने के लिए बाध्य हो जाए । यह न्यायालय या इस कारण कोई भी न्यायालय याची को जांच पूरी करने में विलंब करने के एकमात्र उद्देश्य से फाइल की गई याचिका में सहायता प्रदान नहीं कर सकता है । (पैरा 51)

52. तथापि, पक्षपात के मुद्दे पर न्यायालय के निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए, सभापति से यह अनुरोध किया जाता है कि वह प्रत्यर्थी सं. 3 के स्थान पर एक अन्य प्रख्यात विधिवेत्ता को नामनिर्दिष्ट करें । याची के विरुद्ध आरंभ की गई कार्यवाहियां केवल आरोप विरचित करने के प्रक्रम तक पहुंची हैं और समिति को अभी आरोपों के संबंध में अपने निष्कर्ष लेखबद्ध करने हैं और रिपोर्ट प्रस्तुत करनी है । अतः, किसी अन्य विधिवेत्ता के नामनिर्देशन से समिति की कार्यवाहियों में बाधा नहीं पड़ेगी और पुनर्गठित समिति याची के विरुद्ध पहले से विरचित किए गए आरोपों के आधार पर आगे कार्यवाही करने की हकदार होगी । (पैरा 52)

नैसर्गिक न्याय लोक विधि की एक शाखा है । यह एक ऐसा विकट हथियार है जिसे नागरिकों के लिए न्याय प्राप्त करने हेतु काम में लाया जा सकता है । नैसर्गिक न्याय के नियम ऐसी 'मूल मान्यताएं' हैं जिनका मनुष्य ने युगों से पोषण किया है । नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत लोक प्राधिकारियों के सभी कार्यों को तर्कसंगति, सद्भाव और न्याय, साम्या और शुद्ध अंतःकरण से संबंधित नियमों को लागू करके नियंत्रित करते हैं ।

नैसर्गिक न्याय ऐसी विधि का एक भाग है जिसका संबंध न्याय प्रशासन से है । नैसर्गिक न्याय के नियम वास्तव में न्याय और निष्पक्षता की महत्वपूर्ण प्रत्याभूतियां हैं । नैसर्गिक न्याय के नियमों का अंतर्निहित उद्देश्य नागरिकों की मूलभूत स्वाधीनता और उनके अधिकारों को सुनिश्चित करना है । इस प्रकार वे लोक हित की पूर्ति करते हैं । वह स्वर्णिम नियम जो दृढ़ता से साबित होता है, यह है कि नैसर्गिक न्याय का सिद्धांत केवल न्याय प्राप्त करने के लिए नहीं है बल्कि न्यायहानि रोकने के लिए है । (पैरा 22)

परम्परागत आंग्ल विधि में नैसर्गिक न्याय के निम्नलिखित दो सिद्धांतों को मान्यता दी गई है : (क) "Nemo debet esse judex in propria causa: कोई भी व्यक्ति अपने मामले का स्वयं निर्णायक नहीं हो सकता, या कोई भी व्यक्ति एक ही समय में दोनों - एक पक्षकार या वादकर्ता और दूसरे निर्णायक - के रूप में कार्य नहीं कर सकता है, या विनिश्चय करने वाला प्राधिकारी निष्पक्ष और पूर्वाग्रह से रहित होना चाहिए; और (ख) Audi alteram partem : दूसरे पक्ष को भी सुनो, या दोनों ओर के पक्षकारों की सुनवाई अवश्य ही की जानी चाहिए, या किसी भी व्यक्ति को बिना सुनवाई किए सिद्धदोष नहीं ठहराया जाना चाहिए, या विनिश्चय करने वाले प्राधिकारी की ओर से निष्पक्षता बरती जानी चाहिए । तथापि, विश्वभर के न्यायालयों ने वर्षों से नैसर्गिक न्याय के नियमों के नए पहलुओं की खोज की है और उन्हें न्यायिक, न्यायिककल्प और प्रशासनिक कार्यवाहियों/विनिश्चयों में भी लागू किया है । इसके साथ-साथ, न्यायालयों ने बारंबार इस बात पर जोर दिया है कि नैसर्गिक न्याय के नियम नम्य हैं और उनका लागू किया जाना मामले विशेष के तथ्यों और लागू कानूनी उपबंधों, यदि कोई हैं, प्रभावित होने वाले अधिकार की प्रकृति और उन परिणामों पर निर्भर करता है जो नैसर्गिक न्याय के नियमों का अतिक्रमण करने के कारण निकल सकते हैं । (पैरा 23)

इस मामले का संबंध परम्परागत आंग्ल विधि द्वारा मान्यताप्राप्त नैसर्गिक न्याय के दो सिद्धांतों में से प्रथम सिद्धांत को लागू करने से है, अर्थात् कोई भी व्यक्ति अपने मामले का स्वयं निर्णायक नहीं हो सकता । इस सिद्धांत में पूर्वाग्रह या हित के विरुद्ध वाला नियम शामिल है और यह तीन सूत्रों पर आधारित है : (i) कोई भी व्यक्ति अपने मामले का स्वयं निर्णायक नहीं होगा; (ii) न्याय न केवल किया जाना चाहिए बल्कि स्पष्टतः और निसंदिग्ध रूप से किया गया दिखाई भी देना चाहिए; और (iii), न्यायाधीश, सीज़र की पत्नी की तरह संदेह से परे होने चाहिएं । नैसर्गिक

न्याय की पहली अपेक्षा यह है कि न्यायाधीश निष्पक्ष और तटस्थ होना चाहिए और वह पूर्वाग्रह से मुक्त होना चाहिए । उसका संविवाद के पक्षकारों के प्रति तटस्थ होना आवश्यक है । वह किसी ऐसे वाद में न्यायाधीश के रूप में कार्य नहीं कर सकता है जिसमें उसका अपना धनीय या अन्यथा कोई हित है क्योंकि यह तटस्थता के विरुद्ध मजबूत आधार बनता है । वह न्यायिक रूप से कार्य करने और मामले का आत्मपरक रूप से विनिश्चय करने की स्थिति में होना चाहिए । न्यायाधीश कठोर प्रवृत्ति का होना चाहिए । उसका मानसिक संतुलन सदैव दृढ़ और अनभिज्ञेय होना चाहिए । उसे विनिश्चय करते समय व्यक्तिगत पूर्वाग्रह को आड़े नहीं आने देना चाहिए । उद्देश्य मात्र यह नहीं है कि तराजू को संतुलित रूप में पकड़ना चाहिए बल्कि उसके पलड़े झुके हुए प्रतीत भी नहीं होने चाहिएं । यदि न्यायाधीश विवाद से संबंधित किसी पक्षकार के पक्ष या विरोध में पूर्वाग्रह से ग्रस्त है या ऐसी स्थिति में है कि पूर्वाग्रह का अनुमान लगाया जा सकता है तो वह न्यायाधीश के रूप में कार्य करने के लिए अपात्र है और कार्यवाहियां दूषित होंगी । यह नियम ऐसे न्यायिक और प्रशासनिक प्राधिकारियों को लागू होता है जिनसे न्यायिक या न्यायिककल्प रूप से कार्य करने की अपेक्षा होती है । भारत में, न्यायालयों ने यह विनिश्चिय करने के लिए व्यापक रूप से वास्तविक संभाव्यता की कसौटी अपनाई है कि न्यायिक या न्यायकिकल्प निकाय का कोई विशिष्ट विनिश्चय पक्षपात के कारण दूषित है अथवा नहीं, । (पैरा 25 और 35)

धनीय पूर्वाग्रह संबंधी हित, चाहे वह कितना ही छोटा क्यों न हो, किसी व्यक्ति को न्यायाधीश के रूप में कार्य करने के लिए अपात्र बनाता है । तथापि, अन्य प्रकार के पूर्वाग्रहों को यही आधार लागू नहीं होता और न्यायालयों ने समय-समय पर यह विनिश्चित करने के लिए भिन्न-भिन्न नियम तैयार किए हैं कि क्या व्यक्तिगत या शासकीय पूर्वाग्रह या विषयवस्तु के प्रति पूर्वाग्रह या न्यायिक ज़िद के कारण अंतिम कार्रवाई/आदेश/विनिश्चय दूषित हो जाएगा । (पैरा 26)

कोई भी व्यक्ति स्वयं अपने मामले में निर्णायक नहीं हो सकता है और न्याय न केवल किया जाना चाहिए बल्कि प्रकट रूप से किया गया दिखाई भी देना चाहिए । तराजू न केवल संतुलित होना चाहिए बल्कि वह झुका हुआ दिखाई भी नहीं देना चाहिए । किसी ऐसे व्यक्ति को, जिसका हेतुक की विषयवस्तु में हित है, न्यायाधीश के रूप में कार्य करने से प्रविरत किया गया है । मुकदमे की विषयवस्तु में हित होने के आधार पर किसी

व्यक्ति को न्यायनिर्णयन करने से निरर्हित करने के लिए पक्षपात की वास्तविक संभाव्यता की कसौटी लागू की जानी है । दूसरे शब्दों में, इस बात का पता लगाया जाना चाहिए कि उस व्यक्ति की ओर से पक्षपात किए जाने का वास्तविक खतरा है जिसके विरुद्ध ऐसी आशंका इस आशय से व्यक्त की गई है कि वह किसी पक्षकार के पक्ष या विपक्ष में जा सकता है । प्रत्येक मामले में, न्यायालय को इस बात पर विचार करना होता है कि क्या कोई युक्तिमान और जानकार व्यक्ति समस्त तथ्यों पर विचार करने के पश्चात् युक्तियुक्त रूप से यह आशंका करेगा कि न्यायाधीश निष्पक्ष रूप से कार्य नहीं करेगा । दूसरे शब्दों में, कसौटी यह होगी कि क्या युक्तियुक्त रूप से बुद्धिमान ऐसे व्यक्ति को जो समस्त तथ्यों से पूर्णतः अवगत है, पक्षपात किए जाने की गंभीर आशंका होगी । गैर-धनीय पक्षपात के मामलों में, "युक्तियुक्त संदेह" की कसौटी के मुकाबले "वास्तविक संभाव्यता" की कसौटी को अधिमानता दी गई है और न्यायालयों ने निरन्तर यह अभिनिर्धारित किया है कि पक्षपात के प्रश्न का विनिश्चय करते समय मानवीय अधिसंभाव्यताओं और मानवीय आचरण के सामान्य अनुक्रम को विचार में रखना होता है । हम यह भी जोड़ना चाहते हैं कि पक्षपात की वास्तविक संभाव्यता न केवल शिकायतकर्ता-पक्षकार द्वारा अभिनिश्चित सामग्री से बल्कि ऐसे अन्य तथ्यों से भी प्रकट होनी चाहिए, जो वह आसानी से अभिनिश्चित कर सकता था और जिन्हें युक्तियुक्त जांच करके सत्यापित किया जा सकता था । (पैरा 43)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2009] (2009) 8 एस. सी. सी. 106 :
आर. के. आनन्द बनाम **दिल्ली उच्च न्यायालय** ; 14

[2003] (2003) 7 एस. सी. सी. 418 :
बिहार राज्य खनिज विकास निगम बनाम **एनकॉन बिल्डर्स (इंडिया) (प्राइवेट) लिमिटेड** ; 42

[2001] (2001) 1 डब्ल्यू. एल. आर. 700 :
मेडिकामेंट्स एंड रिलेटेड क्लासिज़ ऑफ गुड्स ; 13,33

[2000] (2000) 174 आस्ट्रेलियन लॉ रिपोर्ट्स 655:
जॉनसन बनाम **जॉनसन** ; 34

[1999] (1999) 4 एस. ए. 147:
प्रेज़ीडेंट आफ दि रिपब्लिक आफ साउथ अफ्रीका बनाम **साउथ अफ्रीकन रगबी फुटबाल यूनियन** ; 34

[1999] (1999) 1 आल इंग्लैंड ला रिपोर्ट्स 577:
आर. बनाम **बो स्ट्रीट मेट्रोपोलिटन स्टाइपेंडरी मजिस्ट्रेट और अन्य, एक्सपार्टे पिनोचेट उगार्टे (सं. 2)** ; 13,32,34

[1993] (1993) अपील केसेज़ 646:
आर. बनाम **गफ** ; 31

[1992] (1992) 4 एस. सी. सी. 605:
कृष्ण स्वामी बनाम **भारत संघ और अन्य** ; 13

[1991] (1991) 4 एस. सी. सी. 699:
सब कमेटी ऑन ज्युडिशियल अकाउंटेबिलिटी बनाम **भारत संघ** ; 18

[1989] (1989) 1 एस. सी. सी. 678:
त्रिवेणीबेन बनाम **गुजरात राज्य** ; 13

[1989] [1989] 2 उम. नि. प. 207 =
(1988) सप्ली. एस. सी. सी. 651:
सचिव, परिवहन विभाग, मद्रास सरकार, मद्रास बनाम **मुन्नुस्वामी मुदलियार और अन्य** ; 41

[1988] [1988] 2 उम. नि. प. 256 =
(1987) 4 एस. सी. सी. 611:
रंजीत ठाकुर बनाम **भारत संघ** ; 13,40

[1986] [1986] 1 उम. नि. प. 269 =
(1985) 3 एस. सी. सी. 545:
ओल्गा टेलिस बनाम **मुम्बई नगर निगम** ; 24

[1985] [1985] 3 उम. नि. प. 1061 =
(1985) 4 एस. सी. सी. 417:
अशोक कुमार यादव बनाम **हरियाणा राज्य** ; 39

[1979] [1979] 1 उम. नि. प. 243 =
(1978) 1 एस. सी. सी. 248:
मेनका गांधी बनाम **भारत संघ** ; 13,24

[1978] (1978) 3 एस. सी. सी. 544:
एम. एच. होसकोट बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ; 13

[1977] [1977] 3 उम. नि. प. 58 =
(1976) 3 एस. सी. सी. 585:
डा. जी. सरन बनाम **लखनऊ विश्वविद्यालय** ; 14,38

[1973] [1973] 3 उम. नि. प. 1256 =
(1974) 3 एस. सी. सी. 459:
एस. पार्थसारथी बनाम **आन्ध्र प्रदेश राज्य** ; 37,38

[1971] [1971] 2 उम. नि. प. 199 =
ए. आई. आर. 1971 एस. सी. 2213:
लच्छू मल बनाम **राधे श्याम** ; 48

[1970] [1970] 2 उम. नि. प. 389 =
(1969) 2 एस. सी. सी. 262:
ए. के. केराइपक बनाम **भारत संघ** ; 24,36,38,39

[1969] ए. आई. आर. 1969 एस. सी. 198:
सुरेश कोशी जार्ज बनाम **केरल विश्वविद्यालय** ; 24

[1969] (1969) 1 क्यू. बी. 577:
मैट्रोपोलिटन प्रापर्टीज़ (एफ.जी.सी.) लिमिटेड
बनाम **लेन्नन** ; 30

[1968] [1968] 2 उम. नि. प. 1113 =
[1967] 2 एस. सी. सी. 625:
उड़ीसा राज्य बनाम **डा. (सुश्री) बीना पाणि देई** ; 24

[1968] ए. आई. आर. 1968 एस. सी. 850:
भारत संघ बनाम **पी. के. राय** ; 24

[1967] (1967) 2 क्यू. बी. 617:
एच. के. (एक शिशु) वाला मामला ; 24

[1964] ए. आई. आर. 1964 एस. सी. 1300:
धीरेन्द्र नाथ गोरई बनाम **सुधीर चन्द्र** ; 50

[1964] (1964) अपील केसेज़ 40:
रिज बनाम **बाल्डविन** ; 24

[1958] (1958) 2 आल इंग्लैंड ला रिपोर्ट्स 579:
बायर्ने बनाम **किनेमाटोग्राफ रेंटर्स सोसायटी लिमिटेड** ; 24

[1957] ए. आई. आर. 1957 एस. सी. 425:
मानक लाल बनाम **डा. प्रेम चन्द सिंघवी**; 14,35

[1955] (1955) 1 क्यू. बी. 41:
रेगिना बनाम **कैम्बोर्न जस्टिसिज़ एक्सपार्टे पियर्स**; 29

[1949] (1949) 1 आल इंग्लैंड ला रिपोर्ट्स 108:
रस्सल बनाम **ड्यूक आफ नोरफाक**; 24

[1927] (1927) 2 के. बी. 475:
रेक्स बनाम **एसेक्स जस्टिसिज़, एक्सपार्टे पेरकिन्स**; 29

[1926] (1926) अपील केसेज़ 586:
फ्रोम यूनाइटेड ब्रेवरीज़ कंपनी बनाम **बाथ जस्टिसिज़**; 29

[1924] (1924) 1 के. बी. 256:
रेक्स बनाम **ससेक्स जस्टिसिज़, एक्सपार्टे मैकार्थी**; 28,29

[1910] (1910) 2 आई. आर. 271:
रेक्स बनाम **काउंटी कार्क के न्यायमूर्ति** ; 29

[1894] (1894) 2 क्यू. बी. 667:
एकरसले बनाम **मर्सी डाक्स एंड हार्बर बोर्ड** ; 29

[1866] (1866) एल. आर. 1 (क्यू. बी. डी.) 230:
क्वीन बनाम **रैंड** । 27,29

मूल अधिकारिता : 2011 की रिट याचिका (सिविल) सं. 217.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन रिट याचिका ।

उपस्थित होने वाले पक्षकारों की ओर से सर्वश्री ए. शरण और यू. यू. ललित, ज्येष्ठ अधिवक्ता, अमित आनन्द तिवारी, आशुतोष झा, विवेक सिंह, रोमी चाको, नितिन संगरा, ए. राधाकृष्णन्, प्रशांत भूषण और (सुश्री) कामिनी जायसवाल

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति जी. एस. सिंघवी ने दिया ।

न्या. सिंघवी – यद्यपि संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन फाइल की गई इस याचिका में की गई प्रार्थनाएं राज्य सभा के सभापति द्वारा न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968 (जिसे संक्षेप में "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 3(2) के अधीन गठित समिति द्वारा पारित तारीख 24 अप्रैल, 2011 के आदेश को अभिखंडित करने के लिए और यह घोषणा करने के लिए हैं कि समिति द्वारा तारीख 24 अप्रैल, 2011 को संचालित की गई कार्यवाहियां शून्य और अकृत है, तथापि, उन आधारों के, जिन पर ये प्रार्थनाएं आधारित हैं, तात्पर्य से यह दर्शित होता है कि याची प्रत्यर्थी सं. 3 श्री पी. पी. राव, भारत के उच्चतम न्यायालय के ज्येष्ठ अधिवक्ता को अधिनियम की धारा 3(2)(ग) के अधीन गठित समिति में शामिल करने से भी व्यथित है ।

2. राज्य सभा के पचास सदस्यों ने याची को, जो कि उस समय कर्नाटक उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति के रूप में तैनात था, भारत के संविधान के अनुच्छेद 124(4) के साथ पठित अनुच्छेद 217 के अधीन हटाने के लिए भारत के राष्ट्रपति को समावेदन उपस्थापित करने के प्रस्ताव की एक सूचना प्रस्तुत की । उस सूचना में दुर्व्यवहार के ऐसे कृत्य प्रगणित किए गए जो अभिकथित रूप से याची द्वारा कारित किए गए थे और उसके साथ एक स्पष्टीकारक टिप्पण और अभिकथनों के समर्थन में दस्तावेज़ भी लगाए गए थे । राज्य सभा के सभापति ने (जिसे इसमें इसके पश्चात् "सभापति" कहा गया है) प्रस्ताव ग्रहण किए जाने के पश्चात् एक समिति का गठन किया जिसमें न्यायमूर्ति श्री वी. एस. सिरपुरकर, भारत के उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश, न्यायमूर्ति श्री ए. आर. दवे, आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के तत्कालीन मुख्य न्यायमूर्ति और प्रत्यर्थी सं. 3 थे ।

3. अधिनियम की धारा 3(2) के अधीन तारीख 15 जनवरी, 2010 को अधिसूचना जारी किए जाने के ठीक पश्चात्, समाचारपत्रों ने यह इंगित करते हुए रिपोर्टें प्रकाशित कीं कि इस समिति में प्रत्यर्थी सं. 3 को शामिल करने के संबंध में इस आधार पर आक्षेप है कि उसने याची को दिसम्बर, 2009 में विधिक राय दी थी । प्रत्यर्थी सं. 3 ने समाचारपत्रों की रिपोर्टों को पढ़ने के पश्चात् सभापति से यह अनुरोध करते हुए तारीख 19 जनवरी, 2010 को एक पत्र भेजा कि उसे समिति से अवमुक्त कर दिया जाए । उस पत्र का पैरा 2 निम्नलिखित रूप में है :–

> "यद्यपि कर्तव्य और हित के संबंध में कोई विरोधाभास नहीं है क्योंकि मैंने उसे कोई वृत्तिक सेवा प्रदान नहीं की थी, तथापि, कुछ

पक्षों की ओर से मेरी निरर्हता की मांग की गई है, जो कि आपने आज के हिन्दुस्तान टाइम्स में पढ़ा होगा । मुझे विश्वास है कि आप इस बात को मानेंगे कि न्याय न केवल किया जाना चाहिए बल्कि वह किया गया दिखाई भी देना चाहिए । हालांकि मुझे अपने नामनिर्देशन के बारे में अभी तक कोई सरकारी संसूचना प्राप्त नहीं हुई है किन्तु ऐसे आक्षेप को ध्यान में रखते हुए मेरे लिए समिति के सदस्य के रूप में कार्य करना उचित नहीं होगा । मेरा आपसे अनुरोध है कि कृपया मुझे तत्काल अवमुक्त कर दिया जाए और मेरे स्थान पर एक अन्य विधिवेत्ता को नामनिर्देशित करके कृतार्थ करें ।"

4. सभापति ने सम्यक् रूप से विचार करने के पश्चात्, प्रत्यर्थी सं. 3 के अनुरोध को स्वीकार करने से इनकार कर दिया और उसे समिति का सदस्य बने रहने के लिए कहा । इसके पश्चात्, प्रत्यर्थी सं. 3 ने तारीख 21 जनवरी, 2010 का पत्र भेजा और वह कर्तव्यभार को स्वीकार करने के लिए सहमत हो गया । उसी दिन, न्यायिक जवाबदेही और सुधार अभियान के संयोजक ने उप-राष्ट्रपति को एक पत्र भेजा जिसमें सुझाव देने की आड़ में यह मांग की गई थी कि न्यायमूर्ति श्री वी. एस. सिरपुरकर को समिति से हट जाना चाहिए क्योंकि वर्ष 1997 से 2003 तक मद्रास उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में वे याची से सहबद्ध रहे थे । प्रत्यर्थी सं. 3 के लिए भी यह कथन करते हुए इसी प्रकार का सुझाव और मांग की गई थी कि याची ने प्रत्यर्थी सं. 3 से परामर्श किया था और प्रत्यर्थी सं. 3 ने उसे आरोपों की जांच करने के लिए जांच आयोग नियुक्त कराने की सलाह दी थी ।

5. सभापति द्वारा अनुदेश दिए जाने पर, राज्य सभा के महासचिव ने उपर्युक्त पत्र की प्रति प्रत्यर्थी सं. 3 को अग्रेषित की । प्रत्यर्थी सं. 3 ने तारीख 27 जनवरी, 2010 के अपने प्रत्युत्तर में उस पृष्ठभूमि का ब्यौरा दिया जिसमें याची उससे तारीख 6 दिसम्बर, 2009 को मिला था और उनके बीच क्या बातचीत हुई थी । उस पत्र के सुसंगत पैरा निम्नलिखित रूप में हैं :–

"मैं यह बात अभिलेख पर लाना चाहूंगा कि मुख्य न्यायमूर्ति दिनाकरन मेरे निवास-स्थान पर रविवार, तारीख 6 दिसम्बर, 2009 को 2.30 बजे अपराह्न पूर्व समय लेकर मुझसे क्यों मिले थे । तारीख 28 नवम्बर, 2009, शनिवार को बार एसोसिएशन ऑफ इंडिया द्वारा न्यायपालिका की समस्याओं पर विचार-विमर्श करने के लिए श्री एफ.

एस. नारीमन की अध्यक्षता में एक द्विसीय राष्ट्रीय सेमीनार आयोजित किया गया था जिसमें माननीय विधि मंत्री ने भी उद्घाटन सत्र में थोड़ी देर के लिए भाग लिया था । मैं एक उपाध्यक्ष हूं । मैंने अपने भाषण के दौरान यह मांग की कि कालेजियम को मुख्य न्यायमूर्ति पी. डी. दिनाकरन को उच्चतम न्यायालय में लाने संबंधी सिफारिश पर आगे कार्यवाही नहीं करनी चाहिए और एक सार्वजनिक जांच कराई जानी चाहिए जिसमें मुख्य न्यायमूर्ति दिनाकरन को विधिज्ञ-वर्ग के ज्येष्ठ सदस्यों द्वारा उनके विरुद्ध लगाए गए आरोपों से अपने आप को निर्दोष साबित करना चाहिए और जांच के दौरान उसे अपने पद से हट जाना चाहिए और छुट्टी पर रहना चाहिए । विधिज्ञ-वर्ग के अनेक प्रख्यात सदस्य, जिनमें भारत के दो पूर्व महाधिवक्ता, अर्थात् श्री सोली जे. सोराबजी और श्री अशोक देसाई, इंटरनेशनल बार एसोसिएशन के पूर्व अध्यक्ष, अर्थात् श्री आर. के. पी. शंकर दास और लॉ एशिया के पूर्व अध्यक्ष, अर्थात् श्री अनिल दीवान भी हैं, जिन्होंने सेमीनार में भाग लिया था, यही मत व्यक्त किया । अंततः, बार एसोसिएशन ऑफ इंडिया के अध्यक्ष के अनुरोध पर मैने संकल्प का प्रारूप तैयार किया था और उपस्थित सदस्यों द्वारा उसे सर्वसम्मति से पारित करने से पूर्व उसमें उसके द्वारा सुधार किया गया था ।

उस सेमीनार में दिए गए भाषणों को, जिनमें मेरा भाषण भी है, मीडिया में रिपोर्ट किया गया था । अगले सप्ताह मुख्य न्यायमूर्ति दिनाकरन संभवतः भारत के मुख्य न्यायमूर्ति, कालेजिम के सदस्यों और अन्य लोगों से मिलने के लिए दिल्ली आए । दिल्ली में उन्होंने मुझे टेलीफोन किया और यह कहा कि मुझे इस बात का आश्चर्य है कि आप भी यह मानते हैं कि मेरे विरुद्ध जो आरोप लगाए गए हैं मैं उनका दोषी हूं और मैं आपसे व्यक्तिगत रूप से मिलना चाहूंगा । जब किसी उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति मिलना चाहता है तो विधि व्यवसाय करने वाले किसी भी सदस्य के लिए उससे इनकार करना अनुचित होगा । जब वे मुझसे तारीख 6 दिसम्बर, 2009 को मिले तब मैंने उनसे यह कहा कि जब चेन्नई, बंगलौर और दिल्ली में व्यवसाय करने वाले विधिज्ञ-वर्ग के ज्येष्ठ सदस्यों द्वारा उनके विरुद्ध अभिकथन किए गए हैं तो यह उचित होगा कि सार्वजनिक जांच होनी चाहिए । जब उन्होंने यह कहा कि वे पूर्णतः निर्दोष हैं और वे मुझे इसके बारे में विश्वास दिला सकते हैं तब मैंने उनसे विनम्रता से कहा कि उन्हें उन लोगों को विश्वास दिलाना है जिन्होंने किसी आधार पर

अभिकथन किए हैं और यह केवल सार्वजनिक जांच में ही संभव हो सकेगा । इसके बाद मैने उन्हें यह सुझाव दिया कि यदि वे निर्दोष हैं तो उन्हें स्वयं जांच आयोग अधिनियम, 1952 के अधीन जांच की मांग करनी चाहिए और जांच के दौरान छुट्टी पर चले जाने की प्रस्थापना करनी चाहिए । आरोपों के गुणागुण के बारे में न तो कोई परामर्श दिया गया था और न ही कोई राय मांगी गई या दी गई थी । बात वहीं समाप्त हो गई थी । मैने उन्हें प्राइवेट तौर पर जो कुछ कहा, जब वे मेरे निवास-स्थान पर मुझसे मिले थे, वह उससे अधिक कुछ नहीं था जो कि मैंने सेमीनार में सार्वजनिक रूप से मांग की थी । ऐसी दशा में हित और कर्तव्य में विरोधाभास का बिल्कुल भी कोई प्रश्न नहीं उठता है । जब राज्य सभा के माननीय सभापति ने मेरे हटने के प्रस्ताव पर सम्यक् रूप से विचार करने के पश्चात् मुझे बने रहने के लिए कहा तब मैंने ससम्मान उनका अनुरोध स्वीकार कर लिया क्योंकि यह भारत के उप-राष्ट्रपति जैसे बड़े व्यक्ति की ओर से सार्वजनिक कर्तव्य करने की मांग थी जिससे मैं पीछे नहीं हटूंगा ।"

6. तारीख 12 मई, 2010 को याची ने स्वयमेव भारत के उप-राष्ट्रपति और राज्य सभा के सभापति को एक पत्र भेजा जिसमें यह कहा गया कि मुझे प्रिंट और इलैक्ट्रानिक मीडिया के माध्यम से अधिनियम की धारा 3(2) के अधीन समिति का गठन किए जाने के बारे में ज्ञात हुआ है । याची ने यह दावा किया कि उसके विरुद्ध लगाए गए अभिकथन मिथ्या और निराधार हैं । उसने इस बात पर दुःख व्यक्त किया कि उसे अपना न्यायिक कार्य करने से निवारित किया जा रहा है और यह प्रार्थना की कि उसके विरुद्ध आरंभ की गई जांच तुरंत पूरी कर ली जाए और उसकी शिकायत का निवारण यथासंभव शीघ्र किया जाए । संदर्भ की दृष्टि से तारीख 12 मई, 2010 का पत्र नीचे उद्धृत किया जाता है :–

"तारीख 12 मई, 2010

माननीय भारत के उप-राष्ट्रपति
और सभापति, राज्य सभा, संसद्,
नई दिल्ली ।

महामहिम,

मैं महामहिम के विचारार्थ यह याचना प्रस्तुत करना चाहता हूं ।

2. यद्यपि मुझे प्रिंट और इलैक्ट्रानिक मीडिया से यह पता चला

है कि मेरे विरुद्ध आज तक 75 माननीय संसद् सदस्यों द्वारा राज्य सभा के समक्ष भारत के संविधान के अनुच्छेद 124(4) के साथ पठित अनुच्छेद 217 के अधीन महाभियोग का प्रस्ताव पेश किया है । मुझे आज तक इस संबंध में किसी प्रकार की कोई शासकीय संसूचना प्राप्त नहीं हुई है ।

3. मुझे प्रिंट और इलैक्ट्रानिक मीडिया के माध्यम से यह भी पता चला है कि महामहिम द्वारा जनवरी, 2010 में न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968 की धारा 3(ख) के अधीन यथा-अनुध्यात एक समिति का गठन किया गया है जिसमें माननीय न्यायमूर्ति श्री वी. एस. सिरपुरकर, भारत के उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश, माननीय न्यायमूर्ति श्री ए. आर. दवे, आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के तत्कालीन मुख्य न्यायमूर्ति और श्री पी. पी. राव, ज्येष्ठ अधिवक्ता, विधिवेत्ता शामिल हैं किन्तु आज तक इस संबंध में मुझे शासकीय रूप से कोई भी सूचना नहीं मिली है जिससे कि मैं अपना पक्षकथन स्पष्ट कर सकूं । अब चूंकि न्यायमूर्ति श्री ए. आर. दवे का भारत के उच्चतम न्यायालय में प्रोन्नयन कर दिया गया है इसलिए समिति का पुनर्गठन करना आवश्यक है ।

4. इसी बीच, प्रिंट और इलैक्ट्रानिक मीडिया ने मेरे विरुद्ध लगाए गए अभिकथनों का व्यापक प्रचार-प्रसार कर दिया है जिससे मुझे और मेरे कुटुम्ब को व्यक्तिगत रूप से और उस सांविधानिक हैसियत को, जो मैं धारण किए हुए हूं, अपूरणीय नुकसान पहुंचा है । ये सभी अभिकथन उच्चतम न्यायालय में मेरे प्रोन्नयन को रोकने के परवर्ती हेतुक से किए गए हैं जबकि उच्चतम न्यायालय के माननीय कालेजियम ने उच्चतम न्यायालय में मेरे प्रोन्नयन के लिए मेरे नाम की सिफारिश कर दी है ।

5. ऐसा प्रतीत होता है कि राज्य सभा के माननीय सदस्य तमिलनाडु राज्य के थिरुवल्लूर के जिला कलक्टर की तारीख 8, 10 और 15 अक्तूबर, 2009 की रिपोर्टों से भ्रमित हुए हैं जिनमें यह कहा गया है कि मैने और मेरी पत्नी ने तमिलनाडु राज्य के थिरुवल्लूर जिले के तिरुतानी तालुक के कावेरीराजपुरम में 199.53 एकड़ भूमि का अधिक्रमण किया है । चूंकि मैने जिला कलक्टर की उक्त रिपोर्टों को निराधार बताते हुए उनसे विनिर्दिष्ट रूप से इनकार किया था इसलिए मामला विज्ञान और प्रोद्यौगिकी विभाग के भारत सर्वेक्षण के

मेजर जनरल (डा.) शिव कुमार की अध्यक्षता वाली एक समिति को निर्देशित किया गया था, जिसने अंततोगत्वा तारीख 15 फरवरी, 2010 को मेरी पत्नी डा. के. एम. विनोदिनी दिनाकरन के समक्ष यह अभिनिर्धारित करते हुए सर्वेक्षण नक्शा प्रस्तुत किया था कि मेरे द्वारा या मेरी पत्नी द्वारा किसी भी सरकारी/सार्वजनिक भूमि का कोई अधिक्रमण नहीं किया गया है ।

6. मेरे विरुद्ध लगाए गए सभी अभिकथन मिथ्या और निराधार हैं ।

7. मुझे और मेरे कुटुम्ब के सदस्यों को निहित हित वाले व्यक्तियों द्वारा अपमानित किया गया है और बड़ी कठिनाई में डाला गया है; और मुझे समिति द्वारा जांच किए जाने तक संविधान के अधीन न्यायिक कार्य करने संबंधी अपनी बाध्यताओं का निर्वहन करने से निवारित किया गया है । किन्तु जांच अभी आरंभ की जानी है । महामहिम कृपया यह मानेंगे कि मेरे विरुद्ध संस्थित की गई जांच की अंतहीन प्रतीक्षा नहीं की जा सकती ।

मेरे द्वारा इतने दिनों तक अपने मामले को स्पष्ट करने के लिए अवसर की धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करने के पश्चात् कि ये अभिकथन निराधार हैं और इनमें किसी भी प्रकार का कोई तत्व और गुणता नहीं है, मैं महामहिम से अनुरोध करता हूं कि आवश्यक कार्यवाही की जाए जिससे कि मेरी निष्कपट शिकायत का यथासंभव शीघ्र निपटारा हो सके और मुझे शीघ्र न्याय प्राप्त हो सके ।

ससम्मान

भवदीय

हस्ता.

(पी. डी. दिनाकरन)"

(जोर देने के लिए रेखांकित)

7. इसी बीच न्यायमूर्ति श्री ए. आर. दवे, मुख्य न्यायमूर्ति, आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय का मुम्बई उच्च न्यायालय में स्थानांतरण हो गया और उसके बाद उनका इस न्यायालय में न्यायाधीश के रूप में प्रोन्नयन कर दिया गया था और उसके स्थान पर न्यायमूर्ति श्री जे. एस. खेहर, मुख्य न्यायमूर्ति, उत्तराखंड उच्च न्यायालय को समिति में शामिल किया गया

था । सितम्बर, 2010 में भारत के उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश न्यायमूर्ति श्री आफताब आलम को पीठासीन अधिकारी नियुक्त किया गया था क्योंकि न्यायमूर्ति श्री वी. एस. सिरपुरकर समिति से स्वयं हट गए थे ।

8. उपर्युक्त गतिविधि के लगभग दो मास पश्चात् याची की पत्नी डा. (श्रीमती) के. एम. विनोदिनी दिनाकरन ने समिति के पीठासीन अधिकारी और सदस्यों को तारीख 27 नवम्बर, 2010 का पत्र भेजा जिसमें यह अनुरोध किया गया कि उसके पति के विरुद्ध लगाए गए अभिकथनों की जांच निष्पक्ष पदाधिकारियों के माध्यम से कराई जानी चाहिए । यह अनुरोध इस संदर्भ में किया गया था कि कुछ जांच श्री गोविन्दस्वामी, ग्राम प्रशासनिक अधिकारी, कावेरीराजपुरम ग्राम, तिरुतानी तालुक और श्री वीरराघवन, पूर्व तहसीलदार तिरुतानी द्वारा कराई गई थी । उसने यह दावा किया कि इन दोनों पदाधिकारियों ने तत्कालीन जिला कलक्टर श्री पलानी कुमार, भा.प्र.से. के साथ दुरभिसंधि की थी जो कि याची का विरोधी था । उसने यह अनुरोध किया कि अन्वेषक अभिकरण को श्री गोविन्दस्वामी और श्री वीरराघवन को शामिल नहीं करना चाहिए क्योंकि उन्होंने पहले ही उसके कुटुम्ब के विरुद्ध दुर्भावना और पक्षपातपूर्ण कार्य किया था ।

9. समिति ने अपने समक्ष रखी गई सामग्री की प्रारंभिक संवीक्षा करने के पश्चात्, जिसमें राज्य के सरकारी विभागों और अभिकरणों/ परिकरणों से मांगी गई दस्तावेज़ें भी शामिल हैं, तारीख 16 मार्च, 2011 की सूचना जारी की जो याची को तारीख 23 मार्च, 2011 को तामील की गई थी, जिसमें उससे आरोपों का उत्तर देने के लिए तारीख 9 अप्रैल, 2011 को हाजिर होने की अपेक्षा की गई । उस सूचना के साथ आरोपों का कथन और दस्तावेज़ों और साक्षियों की सूचियां भी लगाई गई थीं ।

10. याची ने सूचना प्राप्त होने पर भारत के उप-राष्ट्रपति और राज्य सभा के सभापति को तारीख 8 अप्रैल, 2011 का अभ्यावेदन प्रस्तुत किया जिसमें यह प्रार्थना की गई कि प्रस्ताव की सूचना ग्रहण करने संबंधी आदेश वापस ले लिया जाए, जांच समिति गठित करने वाला आदेश अभिखंडित किया जाए और समिति द्वारा जारी की गई सूचना बातिल की जाए । उस अभ्यावेदन में याची ने प्रथम बार यह अभिकथित करते हुए समिति में प्रत्यर्थी सं. 3 को शामिल करने के विरुद्ध आक्षेप उठाया कि पश्चात्वर्ती ने इस मामले में पहले ही अपने विचार व्यक्त कर दिए थे और उसे कतिपय आरोपों का दोषी घोषित कर दिया था । याची ने यह दावा किया कि प्रत्यर्थी सं. 3 ने भारत के तत्कालीन मुख्य न्यायमूर्ति से मिलने के लिए

अधिवक्ताओं के एक प्रतिनिधि-मंडल का प्रतिनिधित्व किया था और वह उच्चतम न्यायालय में मेरे प्रोन्नयन के विरुद्ध ज्येष्ठ अधिवक्ताओं द्वारा किए गए अभ्यावेदन में एक हस्ताक्षरकर्ता था । याची ने इसके अलावा यह दावा किया कि मुझे प्रत्यर्थी सं. 3 के आचरण से क्षोभ हुआ है क्योंकि इसके पूर्व उक्त प्रत्यर्थी ने न केवल मेरे कार्य की सराहना की थी बल्कि अपनी कृतज्ञता संसूचित करने के लिए मुझसे मुलाकात भी की थी और उच्चतम न्यायालय में प्रोन्नयन के लिए मेरे नाम की सिफारिश किए जाने पर बधाई संदेश भी भेजा था । याची ने यह भी कथन किया कि वह अपनी पत्नी और के. वेंकटसुब्बाराजू नामक व्यक्ति के साथ प्रत्यर्थी सं. 3 को उसके निवास-स्थान पर मिला और मुलाकात के दौरान प्रत्यर्थी सं. 3 ने यह स्वीकार किया कि अभ्यावेदन पर हस्ताक्षर करते समय वह कतिपय निहित हितों द्वारा भ्रमित हो गया था । याची द्वारा लिखे गए पत्र के पैरा 6, 7 और 8 नीचे उद्धृत किए जाते हैं :–

> "6. जब मुझे यह पता चला कि श्री पी. पी. राव ने यह मांग करते हुए मेरे विरुद्ध प्रतिनिधि-मंडल का प्रतिनिधित्व किया है कि मुझे उन्नत नहीं किया जाना चाहिए, तब मुझे श्री पी. पी. राव के इस आचरण से क्षोभ हुआ । इससे पूर्व श्री पी. पी. राव ने सदैव न्यायालय में मेरे कार्य की सराहना की थी और मुझे यह संसूचित करने के लिए मुझसे मिले भी थे । जब मैं मद्रास उच्च न्यायालय का न्यायाधीश था तब श्री पी. पी. राव मुझसे मिले और न्यायाधीश के रूप में मेरे कार्य की सराहना की । उसने मेरे निडर और स्वतंत्र दृष्टिकोण के लिए प्रशंसा भी की । भारत के उच्चतम न्यायालय में प्रोन्नयन के लिए मेरे नाम पर विचार किए जाने और सिफारिश किए जाने के तुरंत पश्चात् श्री पी. पी. राव ने मुझे लिखित में बधाई दी । अतः, जब मुझे उसके द्वारा मेरे प्रोन्नयन का विरोध किए जाने का पता चला तब मुझे हैरानी हुई थी । श्री के. वेंकटसुब्बाराजू, अधिवक्ता ने, जो कि हम दोनों का ही मित्र है, श्री पी. पी. राव से बात की और हमारे बीच मुलाकात की व्यवस्था की । तदनुसार, मैं श्री के. वेंकटसुब्बाराजू और अपनी पत्नी के साथ श्री पी. पी. राव से उसके निवास-स्थान पर मिला और समाचारपत्रों की रिपोर्टों पर उससे बातचीत की । श्री पी. पी. राव ने यह स्वीकार किया कि वह मेरे विरुद्ध याचिका में हस्ताक्षर करते समय कतिपय निहित हितों से भ्रमित हो गया था और उसने यहां तक कहा कि उसे एसोसिएशन के पदाधिकारी के रूप में याचिका पर

हस्ताक्षर करने के लिए बाध्य किया गया था । उक्त स्पष्टीकरण को ध्यान में रखते हुए मैंने बात को वहीं समाप्त करना उपयुक्त समझा ।

7. इसी बीच, माननीय न्यायमूर्ति श्री वी. एस. सिरपुरकर की अध्यक्षता में गठित समिति में श्री पी. पी. राव का नाम देखकर मैं स्तब्ध रह गया । इससे पूर्व कि मैं इस संबंध में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता, उन्हीं निहित व्यक्तियों ने, जो कि मेरे विरुद्ध मिथ्या अभिकथन लगाने में सहायक हैं, उक्त समिति के गठन का विरोध किया । उन्होंने अध्यक्ष की नियुक्ति के संबंध में आक्षेप करते समय श्री पी. पी. राव को समिति में शामिल करने के बारे में विनिर्दिष्ट आक्षेप किया । इस विरोध के कारण माननीय न्यायमूर्ति वी. एस. सिरपुरकर ने समिति के अध्यक्ष से त्यागपत्र दे दिया । मैंने यह प्रत्याशा की थी कि इसका अनुसरण करते हुए श्री पी. पी. राव भी अपनी प्रतिष्ठा और ख्याति को ध्यान में रखते हुए समिति से त्यागपत्र दे देंगे ।

8. इस पृष्ठभूमि में, यह स्पष्ट है कि श्री पी. पी. राव ने मुझे कतिपय आरोपों के लिए पहले ही दोषी घोषित कर दिया है जिसके आधार पर उसने उच्चतम न्यायालय में मेरे प्रोन्नयन का भरपूर विरोध किया । यह न्याय की विडम्बना है कि न्यायाधीश जांच समिति का गठन इस प्रकार किया गया है कि जिसमें इसी श्री पी. पी. राव को उक्त समिति का आसीन सदस्य बनाया गया है । यह न्याय के सभी सिद्धांतों और विधि के नियम के विरुद्ध है । इन्हीं परिस्थितियों में, यह याचिका अन्य आधारों के साथ-साथ निम्नलिखित आधारों पर प्रस्तुत की जाती है ।" (जोर देने के लिए रेखांकित)

11. अगले दिन, अर्थात्, तारीख 9 अप्रैल, 2011 को याची ने समिति के पीठासीन अधिकारी को एक पत्र भेजा जिसके साथ अध्यक्ष को प्रस्तुत किए गए अभ्यावेदन की एक प्रति संलग्न थी और यह अनुरोध किया कि उसके विनिश्चय की प्रतीक्षा की जाए । तारीख 20 अप्रैल, 2011 को याची ने समिति को एक आवेदन किया और तारीख 16 मार्च, 2011 वाली सूचना के विरुद्ध अनेक आक्षेप उठाए जिनमें एक आक्षेप यह था कि प्रत्यर्थी सं. 3 उसके विरुद्ध पूर्वाग्रह से ग्रस्त है । दो दिनों के पश्चात्, प्रत्यर्थी सं. 3 ने समिति के पीठासीन अधिकारी को तारीख 22 अप्रैल, 2011 का एक पत्र भेजा और उसमें उन सभी बातों को दोहराया जो उसने तारीख 27 जनवरी, 2010 के पत्र में कही थी किन्तु इसके साथ-साथ प्रत्यर्थी सं. 3 ने

विनिर्दिष्ट रूप से इस बात से इनकार किया कि उसने याची को दोषी ठहराया था । उसने इस बात से भी इनकार किया कि याची ने उससे परामर्श किया था या उससे कोई राय मांगी गई थी और उसने वह राय दी थी । प्रत्यर्थी सं. 3 ने इस बात को स्वीकार किया कि जब याची के नाम की उच्चतम न्यायालय में प्रोन्नयन के लिए सिफारिश किए जाने का समाचार प्रकट हुआ तो उसने उसे तारीख 30 अगस्त, 2009 की ईमेल द्वारा बधाई दी थी, अध्यक्ष को संबोधित तारीख 19 जनवरी, 2010 के पत्र के प्रति निर्देश किया और यह उपदर्शित किया कि उसका यह कर्तव्य था कि वह पुनः समिति की सदस्यता से स्वयं हट जाता । प्रत्यर्थी सं. 3 ने इसी प्रकार का पत्र अध्यक्ष को भेजे जाने के लिए तैयार किया किन्तु समिति के पीठासीन अधिकारी द्वारा सलाह दिए जाने पर उसने उसे रोक लिया ।

12. याची के आक्षेपों पर विचार करने के पश्चात्, समिति ने (प्रत्यर्थी सं. 3 ने इन कार्यवाहियों में भाग नहीं लिया था) तारीख 24 अप्रैल, 2011 का एक विस्तृत आदेश पारित किया जिसके सुसंगत भाग नीचे उद्धृत किए जाते हैं :–

> "अपीलार्थी के अनुसार, इससे पूर्व जब उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति के लिए उसके नाम की सिफारिश की गई थी तब श्री पी. पी. राव ने भारत के तत्कालीन मुख्य न्यायमूर्ति के समक्ष उच्चतम न्यायालय में उसके प्रोन्नयन का विरोध करने वाली याचिका सौंपने के लिए वकीलों के एक प्रतिनिधि-मंडल का प्रतिनिधित्व किया था । भारत के तत्कालीन मुख्य न्यायमूर्ति को सौंपे गए अभ्यावेदन पर हस्ताक्षर करने वाले में वह भी एक हस्ताक्षरकर्ता था जिसमें उससे यह आग्रह किया गया था कि आवेदक को उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में उन्नत न किया जाए । वह भारतीय विधिज्ञ परिषद् द्वारा आयोजित उस सेमीनार में एक वक्ता था जिसमें प्राधिकारियों से यह आग्रह किया गया था कि वे आवेदक को उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में उन्नत किए जाने के विरुद्ध हैं । श्री राव उच्चतम न्यायालय में उसके प्रोन्नयन के विरुद्ध अभियान की अगुवाई करने वाला प्रमुख व्यक्ति था । उन अभिकथनों के आधार पर, अपीलार्थी ने यह कथन किया कि श्री पी. पी. राव के समिति का सदस्य होने पर उसे न्यायसंगत और ऋजु जांच होने की प्रत्याशा नहीं है ।

श्री पी. पी. राव की विशिष्टता यह है कि समिति में उसकी उपस्थिति का किसी न किसी समय दोनों पक्षों द्वारा विरोध किया गया है और अन्य किसी बात के अलावा संभवतः यही एकमात्र बात उसकी निष्पक्षता पुष्ट करने के लिए पर्याप्त है ।

यह स्मरणीय है कि समिति के प्रारंभ से ही एक ऐसे समूह की ओर से श्री प्रशांत भूषण ने, जो न्यायमूर्ति दिनाकरन की उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में की गई सिफारिश के विरुद्ध आन्दोलन कर रहा था और उसे उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के पद से हटाने के लिए जांच की मांग कर रहा था, राज्य सभा के सभापति को एक पत्र भेजा जिसमें श्री पी. पी. राव को समिति में शामिल करने का विरोध किया गया था । यह आक्षेप इस आधार पर आधारित था कि राज्य सभा में प्रस्ताव की सूचना प्रस्तुत किए जाने से पूर्व ही, जिसके परिणामस्वरूप समिति का गठन किया गया था और जबकि न्यायाधीश के विरुद्ध जांच करने की मांग अभी आधार पकड़ रही थी, न्यायमूर्ति श्री पी. डी. दिनाकरन इस मामले में श्री राव से मिले थे और परामर्श किया था । उस अवसर पर श्री राव ने समिति से त्यागपत्र देने की प्रस्थापना की थी किन्तु उसकी प्रस्थापना सभापति द्वारा स्वीकार नहीं की गई थी । चूंकि समिति ने अपना कार्य आरंभ कर दिया था जिसमें श्री पी. पी. राव सदस्य थे, इसलिए किसी भी पक्ष की ओर से कोई शिकायत या आपत्ति नहीं की गई थी । सभी आशंकाओं का समाधान कर दिया गया था और ऐसा प्रतीत होता है कि वे समूह और संगठन, जिन्हें आरंभिक व्हिसल ब्लोअर कहा जा सकता है, समिति में श्री राव के शामिल होने के बारे में पूर्णतः संतुष्ट थे ।

अब आक्षेप उस न्यायाधीश की ओर से किया गया है जिसका आचरण जांच की विषयवस्तु है ।

पूर्ववर्ती आक्षेप पूर्णतः भ्रामक और निराधार था किन्तु उसका कोई परवर्ती हेतुक नहीं था । दुर्भाग्यवश, प्रस्तुत आक्षेप के बारे में यह नहीं कहा जा सकता है । यह स्पष्ट रूप से बाद में सोचा गया आक्षेप है और इसका परवर्ती हेतुक है ।

आवेदक को आरंभ से ही यह पता था कि श्री राव समिति का सदस्य है । उसने सबसे पहले तारीख 12 मई, 2010 को राज्य सभा

के सभापति को पत्र लिखा था जिसमें उनसे समिति के समक्ष कार्यवाहियों को शीघ्र पूरा करने का आग्रह किया गया था । उस पत्र में उसने समिति के तीन सदस्यों में से प्रत्येक सदस्य के नाम का उल्लेख किया था जो कि उस समय विद्यमान था, जिसमें श्री पी. पी. राव, ज्येष्ठ अधिवक्ता का नाम भी था किन्तु समिति में श्री राव के शामिल किए जाने के बारे में किंचित भी विरोध नहीं किया गया था । उस पत्र का पैरा 3 निम्नलिखित रूप में है :–

> "मुझे प्रिंट और इलैक्ट्रानिक मीडिया के माध्यम से यह भी पता चला है कि महामहिम द्वारा जनवरी, 2010 में न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968 की धारा 3(ख) के अधीन यथा-अनुध्यात एक समिति का गठन किया गया है जिसमें माननीय न्यायमूर्ति श्री वी. एस. सिरपुरकर, भारत के उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश, माननीय न्यायमूर्ति श्री ए. आर. दवे, आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के तत्कालीन मुख्य न्यायमूर्ति और श्री पी. पी. राव, ज्येष्ठ अधिवक्ता, विधिवेत्ता शामिल हैं किन्तु आज तक इस संबंध में मुझे शासकीय रूप से कोई भी सूचना नहीं मिली है जिससे कि मैं अपना पक्षकथन स्पष्ट कर सकूं । अब चूंकि न्यायमूर्ति श्री ए. आर. दवे का भारत के उच्चतम न्यायालय में प्रोन्नयन कर दिया गया है इसलिए समिति का पुनर्गठन करना आवश्यक है ।"

न्यायमूर्ति श्री पी. डी. दिनाकरन को समिति के सचिव श्री के. डी. सिंह ने अपने तारीख 4 अगस्त, 2010 के पत्र द्वारा उत्तर दिया था । उस पत्र से यह प्रकट होता है कि न्यायमूर्ति दवे के प्रोन्नयन के पश्चात् समिति का पुनर्गठन किया गया था और उसके स्थान पर न्यायमूर्ति जे. एस. खेहर को, जो उस समय उत्तराखंड उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति थे, समिति में लाया गया था । पत्र में यह कहा गया था कि माननीय न्यायमूर्ति श्री वी. एस. सिरपुरकर, न्यायाधीश, भारत का उच्चतम न्यायालय, माननीय न्यायमूर्ति श्री जे. एस. खेहर, मुख्य न्यायमूर्ति, उत्तराखंड उच्च न्यायालय और श्री पी. पी. राव, ज्येष्ठ अधिवक्ता से मिलकर बनी समिति प्रस्ताव की सूचना की परीक्षा कर रही थी । न्यायमूर्ति श्री दिनाकरन ने समिति में श्री राव की उपस्थिति के विरुद्ध कोई आक्षेप नहीं किया था ।

तारीख 27 नवम्बर, 2010 को न्यायमूर्ति श्री पी. डी. दिनाकरन

की पत्नी श्रीमती डा. विनोदिनी दिनाकरन ने समिति के तीन सदस्यों को संबोधित एक पत्र भेजा जिसमें इस बात पर जोर दिया गया कि जांच के संबंध में उसके वृद्ध नातेदारों को तंग किया जा सकता है और इसके अलावा, समिति को पत्र में नामित कतिपय ऐसे व्यक्तियों के कथनों का आश्रय नहीं लेना चाहिए जो उनके प्रति विद्वेष रखते थे । यह पत्र सभी तीन सदस्यों को, जिनमें श्री पी. पी. राव भी शामिल है, अलग-अलग भेजा गया था । इस पत्र से भी श्री राव को समिति में शामिल करने के बारे में किसी प्रकार के आक्षेप का कोई संकेत नहीं मिलता है ।

यह आक्षेप पहली बार न्यायाधीश को आरोपों और आरोपों के समर्थन में साक्षियों और दस्तावेज़ों की सूची सहित सूचना की तामील करने के पश्चात् ही उठाया गया है ।

जिस प्रक्रम और समय पर यह आक्षेप उठाया गया है उससे यह स्पष्ट होता है कि उद्देश्य यह है कि किसी प्रकार समिति की कार्यवाहियों में विलंब कारित करके जांच को रोका जाए ।" (जोर देने के लिए रेखांकित)

13. याची की ओर से विद्वान ज्येष्ठ काउन्सेल श्री अमरेन्द्र शरण ने यह दलील दी कि सभापति द्वारा गठित समिति में प्रत्यर्थी सं. 3 को शामिल करने का प्रभाव अब तक की गई कार्यवाहियों को दूषित करना है क्योंकि उक्त प्रत्यर्थी याची के विरुद्ध पूर्वाग्रह से ग्रस्त है । श्री शरण ने इस बात पर जोर दिया कि प्रत्यर्थी सं. 3 ने बार एसोसिएशन ऑफ इंडिया द्वारा तारीख 28 नवम्बर, 2009 को आयोजित सेमीनार में सक्रिय भाग लेने के कारण स्वयं को समिति का सदस्य बनने से अपात्र बना दिया था और सभापति को सुसंगत तथ्यों की जानकारी हो जाने के पश्चात् प्रत्यर्थी सं. 3 का त्यागपत्र स्वीकार करके समिति में परिवर्तन कर देना चाहिए था । विद्वान ज्येष्ठ काउन्सेल ने यह दलील दी कि उसके विरुद्ध लगाए गए अभिकथनों के संबंध में ऋजु, निष्पक्ष और पक्षपातरहित अन्वेषण संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 के अधीन याची को गारंटीकृत जीने के मूल अधिकार का अभिन्न अंग है और अधित्यजन के सिद्धांत का अवलंब लेकर उसे उस अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता है । श्री अमरेन्द्र शरण ने अपनी दलीलों के समर्थन में **मेनका गांधी** बनाम **भारत संघ**[1], **एम. एच.**

---

[1] [1979] 1 उम. नि. प. 243 = (1978) 1 एस. सी. सी. 248.

होसकोट बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1], **रंजीत ठाकुर** बनाम **भारत संघ**[2], **त्रिवेणीबेन** बनाम **गुजरात राज्य**[3] वाले मामलों में इस न्यायालय के निर्णयों का और **आर.** बनाम **बो स्ट्रीट मेट्रोपोलिटन स्टाइपेंडरी मजिस्ट्रेट और अन्य, एक्सपार्टे पिनोचेट उगार्टे(सं. 2)**[4] तथा **मेडिकामेंट्स एंड रिलेटेड क्लासिज़ ऑफ गुड्स**[5] वाले मामलों का अवलंब लिया । विद्वान काउन्सेल ने न्यायमूर्ति के. रामास्वामी द्वारा **कृष्ण स्वामी** बनाम **भारत संघ और अन्य**[6] वाले मामले में अभिव्यक्त विसम्मत मत के प्रति विस्तारपूर्वक निर्देश किया और यह दलील दी कि विद्वान न्यायाधीश द्वारा उन मुद्दों पर अधिकथित प्रतिपादनाएं, जो कि बहुमत द्वारा विनिश्चित नहीं किए गए हैं, संविधान के अनुच्छेद 141 के प्रयोजनार्थ इस न्यायालय द्वारा विधि की घोषणा मानी जानी चाहिएं और वह आबद्धकर हैं ।

14. प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान ज्येष्ठ काउन्सेल श्री यू. यू. ललित ने यह दर्शित करने के लिए कि सरकारी संसूचना प्राप्त करने से पूर्व याची को इस तथ्य का भान हो गया था कि प्रत्यर्थी सं. 3 अधिनियम की धारा 3(2) के अधीन गठित समिति का सदस्य है, न्यायालय का ध्यान याची द्वारा उप-राष्ट्रपति और राज्य सभा के सभापति को लिखे गए पत्र की ओर आकर्षित किया । इसके बाद श्री ललित ने यह दलील दी कि न्यायालय को समिति में प्रत्यर्थी सं. 3 को शामिल किए जाने से संबंधित आक्षेप इस आधार पर ग्रहण नहीं करना चाहिए कि वह याची के विरुद्ध पूर्वाग्रह से ग्रस्त है क्योंकि याची ने इस तथ्य के बावजूद कि वह यह जानता था कि प्रत्यर्थी सं. 3 ने तारीख 28 नवम्बर, 2009 को आयोजित सेमीनार में भाग लिया था, इस न्यायालय में उसके प्रोन्नयन का विरोध करते हुए भाषण दिया था और उस आशय के संकल्प का प्रारूप तैयार किया था, तारीख 16 मार्च, 2011 की सूचना प्राप्त होने तक उस संबंध में कोई आक्षेप नहीं किया था । इसके बाद, विद्वान ज्येष्ठ काउन्सेल ने यह दलील दी कि प्रत्यर्थी सं. 3 को तारीख 6 दिसम्बर, 2009 को उसके निवास-स्थान पर मिलने के पश्चात् याची का

---

[1] (1978) 3 एस. सी. सी. 544.

[2] [1988] 2 उम. नि. प. 256 = (1987) 4 एस. सी. सी. 611.

[3] (1989) 1 एस. सी. सी. 678.

[4] (1999) 1 ऑल इंग्लैंड लॉ रिपोर्ट्स 577.

[5] (2001) 1 डब्ल्यू. एल. आर. 700.

[6] (1992) 4 एस. सी. सी. 605.

पूर्ण रूप से यह समाधान हो गया था कि उक्त प्रत्यर्थी का उससे कोई विरोध नहीं था । विद्वान ज्येष्ठ काउन्सेल ने यह भी इंगित किया कि याची की पत्नी द्वारा लिखे गए पत्र में भी प्रत्यर्थी सं. 3 के समिति का सदस्य होने के संबंध में इस आधार पर कोई आक्षेप नहीं किया गया था कि उसने उसके पति की दोषिता के बारे में पहले से निर्णय कर लिया है । विद्वान ज्येष्ठ काउन्सेल ने यह दलील दी कि याची और उसकी पत्नी द्वारा किए गए अभ्यावेदनों का पठन करने के पश्चात् युक्तियुक्त प्रज्ञा वाला कोई भी व्यक्ति यह आभास नहीं कर सकता कि वह समिति जिसमें प्रत्यर्थी सं. 3 एक सदस्य है, याची के विरुद्ध विरचित आरोपों का वस्तुनिष्ठ रूप से अन्वेषण करने में समर्थ नहीं होगी । विद्वान ज्येष्ठ काउन्सेल ने **मानक लाल** बनाम **डा. प्रेम चन्द सिंघवी**[1], **डा. जी. सरन** बनाम **लखनऊ विश्वविद्यालय**[2] और **आर. के. आनन्द** बनाम **दिल्ली उच्च न्यायालय**[3] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णयों का अवलंब लिया और यह दलील दी कि याची ने प्रत्यर्थी सं. 3 की समिति के सदस्य के रूप में नियुक्ति के विरोध में एक वर्ष से अधिक समय तक शांत रहने पर यह समझा जाएगा कि उसने समिति के गठन को प्रश्नगत करने संबंधी अपने अधिकार का अधित्याग कर दिया है ।

15. मध्यक्षेपी की ओर से विद्वान काउन्सेल श्री प्रशांत भूषण ने तारीख 12 मई, 2010 के पत्र के प्रति भी निर्देश किया और यह दलील दी कि याची ने प्रत्यर्थी सं. 3 के, जिसकी सेमीनार में भागीदारी का उसे बहुत पहले नवम्बर, 1999 में पता था, पक्षपाती होने की किसी आशंका का आश्रय नहीं लिया था और यही कारण था कि उसने उक्त प्रत्यर्थी से मिलना चाहा और यह दलील दी कि याची द्वारा समिति के गठन के विरुद्ध उठाया गया विलंबित आक्षेप ग्रहण नहीं किया जाना चाहिए ।

16. हमने संपूर्ण मामले पर गंभीरता से विचार किया है । दो प्रश्न जो विचारार्थ उद्भूत होते हैं, ये हैं कि प्रत्यर्थी सं. 3 द्वारा बार एसोसिएशन ऑफ इंडिया द्वारा तारीख 28 नवम्बर, 2009 को आयोजित सेमीनार में सक्रिय रूप से भाग लेना और उसके द्वारा याची के इस न्यायालय में प्रोन्नयन का विरोध करना प्रत्यर्थी सं. 3 को अधिनियम की धारा 3(2) के

---

[1] ए. आई. आर. 1957 एस. सी. 425.

[2] [1977] 3 उम. नि. प. 58 = (1976) 3 एस. सी. सी. 585.

[3] (2009) 8 एस. सी. सी. 106.

अधीन गठित समिति में शामिल किए जाने से निर्रहित करने के लिए पर्याप्त हैं और क्या याची के बारे में यह समझा जाएगा कि उसने अपने आचरण द्वारा प्रत्यर्थी सं. 3 की समिति के सदस्य के रूप में नियुक्ति पर आक्षेप करने संबंधी अपने अधिकार का अधित्यजन कर दिया है ।

17. चूंकि विद्वान काउन्सेल द्वारा संविधान के अनुच्छेद 121 और 124 की परिधि के संबंध में व्यापक रूप से तर्क दिए गए थे इसलिए इन अनुच्छेदों की अवेक्षा करना उपयोगी होगा । अनुच्छेद 121 में यह घोषित है कि उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश के, अपने कर्तव्यों के निर्वहन में किए गए आचरण के विषय में संसद् में कोई चर्चा उस न्यायाधीश को हटाने वाले समावेदन को राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत करने के प्रस्ताव पर ही होगी, अन्यथा नहीं । अनुच्छेद 124(4) में यह अधिकथित है कि उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायाधीश को उसके पद से तब तक नहीं हटाया जाएगा जब तक साबित कदाचार या असमर्थता के आधार पर ऐसे हटाए जाने के लिए संसद् के प्रत्येक सदन द्वारा अपनी कुल सदस्य संख्या के बहुमत द्वारा तथा उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों के कम से कम दो-तिहाई बहुमत द्वारा समर्थित समावेदन राष्ट्रपति के समक्ष उसी सत्र में रखे जाने पर राष्ट्रपति ने आदेश नहीं दे दिया है । अनुच्छेद 124(5) में यह अधिकथित है कि संसद् खंड (4) के अधीन किसी समावेदन के रखे जाने की तथा न्यायाधीश के कदाचार या असमर्थता के अन्वेषण और साबित करने की प्रक्रिया का विधि द्वारा विनियमन कर सकेगी । अनुच्छेद 217(1)(ख) के आधार पर अनुच्छेद 124(4) में अंतर्विष्ट उपबंध उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश को हटाने के मामले में लागू किया गया है ।

18. अनुच्छेद 121 और 124 का निर्वचन संविधान पीठ द्वारा **सब कमेटी ऑन ज्युडिशियल अकाउंटेबिलिटी** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में किया गया था । उस मामले में, न्यायालय ने लोक सभा के तत्कालीन अध्यक्ष द्वारा नवीं लोक सभा के 108 सदस्यों द्वारा, जिन्होंने इस न्यायालय के न्यायमूर्ति श्री वी. रामास्वामी को हटाने की प्रार्थना की थी, किए गए अभिकथनों की जांच करने के लिए गठित जांच समिति की पृष्ठभूमि में फाइल की गई चार रिट याचिकाओं पर विचार किया था । अधिवक्ताओं के संगठनों द्वारा फाइल की गई रिट याचिकाओं में से दो रिट याचिकाओं में

---

[1] (1991) 4 एस. सी. सी. 699.

भारत संघ से जांच समिति को अधिनियम के अधीन अपने कृत्यों का निर्वहन करने में समर्थ बनाने हेतु तुरंत कदम उठाने और विद्वान न्यायाधीश को न्यायिक कृत्यों का पालन करने और न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करने से अवरुद्ध करने के लिए परमादेश जारी करने की प्रार्थना की गई थी । एक अधिवक्ता द्वारा फाइल की गई तीसरी रिट याचिका में यह प्रार्थना की गई थी कि विद्वान न्यायाधीश को उसके न्यायिक कृत्यों का निर्वहन करने से तब तक अवरुद्ध नहीं किया जाना चाहिए जब तक संसद् के दोनों संदनों द्वारा उसके हटाने के लिए रखे जाने वाले समावेदन का निपटारा नहीं कर दिया जाता है, । चौथी रिट याचिका भी एक अधिवक्ता द्वारा अधिनियम को इस आधार पर विखंडित करने के लिए फाइल की गई थी कि वह संविधान के अनुच्छेद 100, 105, 118, 121 और 124(5) के उपबंधों के अधिकारातीत है । उसने यह घोषणा करने की भी ईप्सा की थी कि संसद् के 108 सदस्यों द्वारा न्यायाधीश को हटाने के लिए प्रस्तुत किया गया समावेदन नवीं लोक सभा के विघटन के साथ ही व्यपगत हो गया था । न्यायालय ने चार रिट याचिकाओं के साथ 1991 की रिट याचिका (सिविल) सं. 1061 का भी अंतरण और निपटारा कर दिया, जो कि दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष उस प्रार्थना के लिए लंबित थी जो कि चार रिट याचिकाओं में से एक रिट याचिका में की गई प्रार्थना के समरूप थी । बहुमत निर्णय न्यायमूर्ति बी. सी. रे द्वारा अपनी ओर से और न्यायमूर्ति एम. एन. वेंकटचलय्या, न्यायमूर्ति जे. एस. वर्मा और न्यायमूर्ति एस. सी. अग्रवाल की ओर से सुनाया गया था । विद्वान न्यायाधीश ने यह अवेक्षा की कि इंग्लैंड में उच्चतर न्यायालयों के न्यायाधीशों को हटाने के लिए प्रचलित प्रक्रिया तथा कनाडा, आस्ट्रेलिया और अमेरिकी संविधानों में अंतर्विष्ट उपबंधों में अक्तूबर, 1982 में नई दिल्ली में आयोजित अंतरराष्ट्रीय विधिज्ञ संगम के 19वें द्वि-वार्षिकीय सम्मेलन, तारीख 10 जून, 1982 को मांट्रियल में आयोजित न्याय की स्वाधीनता पर प्रथम विश्व सम्मेलन, अगस्त-सितम्बर, 1985 में मिलन में आयोजित अपराध निवारण और अपराधियों का उपचार पर सातवीं संयुक्त राष्ट्र सभा में पारित संकल्पों, संविधान सभा में हुए वाद-विवाद के प्रति निर्देश किया गया है और उन्होंने इस प्रकार मत व्यक्त किया :–

> "किन्तु भारत में सांविधानिक स्कीम में न्यायाधीशों को हटाने के लिए राजनैतिक और न्यायिक प्रक्रियाओं का एक न्यायसम्मत मेल बनाने की ईप्सा की गई है । यद्यपि प्रथमदृष्टया यह प्रतीत होता है

कि अनुच्छेद 124 के खंड (4) और (5) को अंगीकार करने से संबंधित संविधान सभा की कार्यवाहियां इसके प्रतिकूल संकेत देती हुई प्रतीत होती हैं और इससे कदाचार या असमर्थता के अभिकथनों की शुद्धता का न्यायिक प्रक्रिया द्वारा अधिक सावधानीपूर्वक परीक्षा करके अवधारण अपवर्जित करने का आशय दर्शित होता है किन्तु यह सही निष्कर्ष नहीं है ।"

विद्वान न्यायाधीश ने इसके बाद अनुच्छेद 121 और 124 की स्कीम के प्रति निर्देश किया और इस प्रकार मत व्यक्त किया :–

"तदनुसार, स्कीम यह है कि हटाने की संपूर्ण प्रक्रिया दो भागों में है – खंड (5) के अधीन प्रथम भाग कदाचार या असमर्थता की कार्यवाही के आरंभ से अन्वेषण और सबूत तक अधिनियमित विधि के अंतर्गत आता है क्योंकि संसद् की भूमिका, जैसा कि उसके द्वारा अधिनियमित सभी विधियों में होता है, केवल विधायी होती है; और दूसरा भाग खंड (4) के अधीन केवल सबूत के पश्चात् वाला है और वह प्रक्रिया केवल खंड (5) के अधीन अधिनियमित विधि के अनुसार सबूत के आधार पर आरंभ होती है । अतः, प्रथम भाग संपूर्णतः कानूनी है जबकि दूसरा भाग केवल संसदीय प्रक्रिया है ।

संविधान में पूर्णतः अधिनियमित विधि के अंतर्गत आने वाले प्रथम भाग के लिए स्पष्ट उपबंध करना आशयित था, जिसकी विधिमान्यता और जिसके अधीन वाली प्रक्रिया किसी राजनैतिक वर्ण के बिना न्यायिक पुनर्विलोकन के अध्यधीन होती है और सबूत के पश्चात् इसका संसदीय प्रक्रिया होना आशयित था । हमारी सांविधानिक स्कीम में किसी न्यायाधीश को हटाने के लिए यही संश्लेषण है ।

यदि हटाने के लिए रखे जाने वाले समावेदन का प्रस्ताव साबित कदाचार या असमर्थता के आधार पर अनुच्छेद 121 और 124(4) द्वारा परिकल्पित है तो इससे यह पूर्वकल्पित होता है कि कदाचार या असमर्थता पहले साबित हो चुकी है । ऐसा खंड (5) में 'अन्वेषण और सबूत' अभिव्यक्ति का प्रयोग किए जाने के कारण भी है जिसमें खंड (4) के प्रति विनिर्दिष्ट निर्देश किया गया है । इससे यह उपदर्शित होता है कि कदाचार या असमर्थता का 'अन्वेषण और सबूत' खंड (4) के अंतर्गत नहीं आता है बल्कि खंड (5) के अंतर्गत आता है । खंड

(5) में सत्र के प्रति कोई निर्देश किए बिना खंड (4) में 'उसी सत्र' अभिव्यक्ति के प्रयोग से भी यह उपदर्शित होता है कि खंड (5) के लिए सदन के सत्र का कोई महत्व नहीं है, अर्थात् 'अन्वेषण और सबूत' पूर्णतः अधिनियमित विधि द्वारा शासित होता है न कि संसदीय पद्धति द्वारा जो कि प्रत्येक लोक सभा द्वारा परिवर्तित की जा सकती है ।

अनुच्छेद 124 के खंड (4) में 'कदाचार या असमर्थता' अभिव्यक्ति से पूर्व 'साबित' शब्द का महत्व भी उपदर्शित होता है जब इस उपबंध की तुलना लोक सेवा आयोग के सदस्य को हटाने का उपबंध करने वाले अनुच्छेद 317 से की जाती है । अनुच्छेद 317 के खंड (1) में हटाने का आधार वर्णित करने के लिए प्रयुक्त अभिव्यक्ति 'कदाचार का आधार' है जबकि अनुच्छेद 124 के खंड (4) में 'साबित कदाचार या असमर्थता का आधार' अभिव्यक्ति का प्रयोग किया गया है । लोक सेवा आयोग के सदस्य को हटाने के लिए प्रक्रिया खंड (1) में भी विहित है, जिसमें उच्चतम न्यायालय द्वारा इस प्रयोजन के लिए निर्देश किए जाने पर जांच करने का उपबंध है । किसी न्यायाधीश की दशा में, अन्वेषण और सबूत के लिए प्रक्रिया अनुच्छेद 124 के खंड (5) के अधीन संसद् द्वारा अधिनियमित विधि के अनुसार होनी चाहिए । इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि अनुच्छेद 317(1) के अधीन कदाचार के आधार पर न्यायनिर्णयन उच्चतम न्यायालय द्वारा किया जाना चाहिए, ऐसे न्यायाधीश की दशा में जो उच्चतर सांविधानिक कृत्यकारी है, आधार के न्यायिक अवधारण की अपेक्षा को अनुच्छेद 124(4) में 'साबित' शब्द जोड़कर और अनुच्छेद 124(5) के अधीन इस प्रयोजनार्थ विधि की अपेक्षा द्वारा सुदृढ़ बनाया गया है ।

वास्तव में, अधिनियम हटाने की प्रक्रिया के न्यायिक और राजनैतिक दोनों तत्वों का सांविधानिक तत्व-ज्ञान प्रदर्शित करता है । अंतिम प्राधिकार इस अर्थ में संसद् के पास रहता है कि भले ही अन्वेषण समिति यह निष्कर्ष लेखबद्ध करती है कि न्यायाधीश आरोपों का दोषी है फिर भी संसद् यह विनिश्चित करने के लिए स्वतंत्र है कि वह उसे हटाने के लिए राष्ट्रपति के समक्ष रखे अथवा नहीं । किन्तु यदि समिति यह निष्कर्ष लेखबद्ध करती है कि न्यायाधीश दोषी नहीं है तो हटाने की प्रक्रिया में राजनैतिक तत्व के पास और कोई विकल्प नहीं होता है । वस्तुतः, विधि विधान का एक ऐसा सभ्य खंड

है जो न्यायाधीशों की जवाबदेही की संकल्पना और न्यायिक स्वाधीनता के मूल्यों को संगत बनाता है ।"

19. हम अधिनियम की धारा 3 से 6 की भी अवेक्षा कर सकते हैं जो कि संविधान के अनुच्छेद 124(5) के अधीन संसद् द्वारा अधिनियमित किया गया था । वे धाराएं निम्नलिखित रूप में हैं :–

"3. **न्यायाधीश के कदाचार या असमर्थता का समिति द्वारा अन्वेषण –** (1) यदि राष्ट्रपति को ऐसा समावेदन, जिसमें किसी न्यायाधीश के हटाए जाने की प्रार्थना हो, उपस्थापित करने के प्रस्ताव की ऐसी सूचना दी जाए, जो –

(क) लोकसभा में दी गई सूचना की दशा में, उस सदन के सौ से अन्यून सदस्यों द्वारा,

(ख) राज्यसभा में दी गई सूचना की दशा में, उस सभा के पचास से अन्यून सदस्यों द्वारा

हस्ताक्षरित हो तो, यथास्थिति, अध्यक्ष या सभापति ऐसे व्यक्तियों से, यदि कोई हों, परामर्श करने के पश्चात् जिन्हें वह ठीक समझे और ऐसी सामग्री पर, यदि कोई हो, विचार करने के पश्चात् जो उसे उपलभ्य हो या तो प्रस्ताव को ग्रहण कर लेगा या उसे ग्रहण करने से इनकार कर देगा ।

(2) यदि उपधारा (1) में निर्दिष्ट प्रस्ताव ग्रहण कर लिया जाता है तो, यथास्थिति, अध्यक्ष या सभापति प्रस्ताव को लंबित रखेगा और उन आधारों का अन्वेषण करने के लिए जिन पर न्यायाधीश को हटाए जाने की प्रार्थना की गई है, यथाशक्य शीघ्र, एक समिति गठित करेगा जो तीन सदस्यों से मिलकर बनेगी, जिनमें से –

(क) एक सदस्य उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति और अन्य न्यायाधीशों में से चुना जाएगा ;

(ख) एक सदस्य उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायमूर्तियों में से चुना जाएगा ; और

(ग) एक सदस्य ऐसा व्यक्ति होगा जो, यथास्थिति, अध्यक्ष या सभापति की राय में, विशिष्ट विधिवेत्ता है :

परन्तु जहां उपधारा (1) में निर्दिष्ट प्रस्ताव की सूचनाएं संसद् के

दोनों सदनों में एक ही दिन दी जाएं वहां कोई समिति तब तक गठित नहीं की जाएगी जब तक कि प्रस्ताव दोनों सदनों में ग्रहण न कर लिया जाए और जहां ऐसा प्रस्ताव दोनों सदनों में ग्रहण कर लिया गया है वहां समिति अध्यक्ष और सभापति द्वारा मिलकर गठित की जाएगी :

परन्तु यह और कि जहां यथापूर्वोक्त प्रस्ताव की सूचनाएं संसद् के सदनों में विभिन्न तारीखों पर दी जाएं वहां वह सूचना जो बाद में दी गई है नामंजूर हो जाएगी ।

(3) समिति न्यायाधीश के विरुद्ध उन निश्चित आरोपों की विरचना करेगी जिनके आधार पर अन्वेषण का किया जाना प्रस्थापित है ।

(4) ऐसे आरोप, उन आधारों के कथन सहित जिन पर हर एक ऐसा आरोप आधारित है, न्यायाधीश को संसूचित किए जाएंगे और उसे, उतने समय के भीतर जो कि समिति इस निमित्त विनिर्दिष्ट करे, प्रतिवाद का लिखित कथन उपस्थापित करने का युक्तियुक्त अवसर दिया जाएगा ।

.....

(8) समिति, न्यायाधीश के लिखित कथन और स्वास्थ्य-रिपोर्ट पर, यदि कोई हो, विचार करने के पश्चात् उपधारा (3) के अधीन विरचित आरोपों को संशोधित कर सकेगी, और ऐसी दशा में न्यायाधीश को प्रतिवाद का नया लिखित कथन उपस्थापित करने के लिए युक्तियुक्त अवसर दिया जाएगा ।

(9) यदि केन्द्रीय सरकार से, यथास्थिति, अध्यक्ष या सभापति या दोनों यह अपेक्षा करें तो, वह न्यायाधीश के विरुद्ध मामला संचालित करने के लिए एक अधिवक्ता नियुक्त कर सकेगी ।

4. समिति की रिपोर्ट – (1) ऐसे किन्हीं नियमों के अध्यधीन रहते हुए जो इस निमित्त बनाए जाएं, समिति को अन्वेषण करने के लिए अपनी प्रक्रिया स्वयं विनियमित करने की शक्ति होगी और वह न्यायाधीश को, साक्षियों की प्रतिपरीक्षा करने, साक्ष्य देने और अपने प्रतिवाद में सुनवाई के लिए युक्तियुक्त अवसर देगी ।

(2) अन्वेषण की समाप्ति पर, समिति अपनी रिपोर्ट, यथास्थिति,

अध्यक्ष या सभापति को या जहां कि समिति अध्यक्ष और सभापति द्वारा मिलकर गठित की गई है, वहां उन दोनों को, देगी जिसमें पूरे मामले पर ऐसे विचार व्यक्त करते हुए जिन्हें वह ठीक समझता है हर एक आरोप पर अलग-अलग उसके निष्कर्ष कथित होंगे ।

(3) अध्यक्ष या सभापति, या जहां कि समिति अध्यक्ष और सभापति द्वारा मिलकर गठित की गई है वहां दोनों, उपधारा (2) के अधीन प्रस्तुत की गई रिपोर्ट को, यथाशक्य शीघ्र क्रमशः लोक सभा और राज्य सभा के समक्ष रखवाएंगे ।

5. समिति की शक्तियां – इस अधिनियम के अधीन कोई अन्वेषण करने के प्रयोजन के लिए समिति को निम्नलिखित विषयों के बारे में, अर्थात् –

(क) किसी व्यक्ति को समन करने, और उसको हाजिर कराने तथा उसे शपथ पर परीक्षित करने के बारे में ;

(ख) दस्तावेज़ों के प्रकटीकरण और पेश किए जाने की अपेक्षा करने के बारे में ;

(ग) शपथ पर साक्ष्य प्राप्त करने के बारे में ;

(घ) साक्षियों या दस्तावेज़ों की परीक्षा के लिए कमीशन निकालने के बारे में ;

(ङ) अन्य ऐसे विषयों के बारे में जो विहित किए जाएं ;

वे समस्त शक्तियां होंगी जो किसी सिविल न्यायालय को सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के अधीन वाद का विचारण करते समय होती हैं ।

6. रिपोर्ट पर विचार किया जाना और न्यायाधीश के हटाए जाने के लिए समावेदन उपस्थापित करने की प्रक्रिया – (1) यदि समिति की रिपोर्ट में यह निष्कर्ष हो कि न्यायाधीश किसी कदाचार का दोषी नहीं है या उसमें कोई असमर्थता नहीं है, तब उस रिपोर्ट के संबंध में संसद् के किसी भी सदन में कोई आगे कार्रवाई नहीं की जाएगी और संसद् के सदन या सदनों में लंबित प्रस्ताव पर कोई भी कार्यवाही नहीं की जाएगी ।

(2) यदि समिति की रिपोर्ट से यह निष्कर्ष हो कि न्यायाधीश

किसी कदाचार का दोषी है या उसमें कोई असमर्थता है तो समिति की रिपोर्ट सहित धारा 3 की उपधारा (1) में निर्दिष्ट प्रस्ताव पर, संसद् के सदन या सदनों द्वारा, जिसमें या जिनमें वह लंबित है, विचार किया जाएगा ।

(3) यदि प्रस्ताव, यथास्थिति, संविधान के अनुच्छेद 124 के खंड (4) के उपबंधों के अनुसार या अनुच्छेद 218 के साथ पठित उस खंड के अनुसार, संसद् के हर एक सदन द्वारा अंगीकृत कर लिया जाता है तब यह समझा जाएगा कि न्यायाधीश का कदाचार या उसकी असमर्थता साबित हो गई है और न्यायाधीश के हटाए जाने की प्रार्थना करने वाला समावेदन उसी सत्र में जिसमें कि प्रस्ताव अंगीकृत किया गया है, संसद् के हर एक सदन द्वारा, राष्ट्रपति को विहित रीति से उपस्थापित किया जाएगा ।"

20. ऊपर उद्धृत उपबंधों का विश्लेषण करने से यह दर्शित होता है कि अधिनियम की धारा 3(1) में प्रस्ताव के यथास्थिति, अध्यक्ष या सभापति द्वारा ग्रहण किए जाने के लिए उपबंध है बशर्ते वह यथास्थिति, लोक सभा के 100 सदस्यों या राज्य सभा के 50 सदस्यों द्वारा समर्थित हो । यथास्थिति, अध्यक्ष या सभापति ऐसे व्यक्ति से, यदि कोई हो, परामर्श करने और ऐसी सामग्री पर, यदि कोई हो, जो उसे उपलभ्य हो, विचार करने का हकदार है । यदि प्रस्ताव ग्रहण कर लिया जाता है तो यथास्थिति, अध्यक्ष या सभापति को प्रस्ताव लंबित रखना होता है और उन आधारों का अन्वेषण करने के प्रयोजन के लिए जिन पर न्यायाधीश के हटाए जाने की प्रार्थना की गई है, एक समिति गठित करनी होती है [धारा 3(2)] । अन्वेषण के प्रयोजन के लिए गठित समिति तीन सदस्यों से मिलकर बनेगी जिनमें से - (क) एक सदस्य उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति और अन्य न्यायाधीशों में से चुना जाएगा, (ख) एक सदस्य उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायमूर्तियों में से चुना जाएगा, और (ग) एक सदस्य ऐसा व्यक्ति होगा जो, यथास्थिति, अध्यक्ष या सभापति की राय में, विशिष्ट विधिवेत्ता है । धारा 3(3) के निबंधनानुसार, समिति के लिए न्यायाधीश के विरुद्ध उन निश्चित अपराधों की विरचना करना आवश्यक है जिनके आधार पर अन्वेषण का किया जाना प्रस्थापित है । धारा 3(4) में यह अपेक्षित है कि आरोप, उन आधारों के कथन सहित जिन पर हर एक आरोप आधारित है, न्यायाधीश को संसूचित किए जाएंगे और उसे प्रतिवाद का लिखित कथन उपस्थापित करने का युक्तियुक्त अवसर दिया जाएगा । धारा 3(8) ऐसी

स्थिति के संबंध में है जहां समिति न्यायाधीश के लिखित कथन पर विचार करने के पश्चात् आरोपों को संशोधित करने का विनिश्चय करती है । उस दशा में, न्यायाधीश को प्रतिवाद का नया लिखित कथन उपस्थापित करने के लिए युक्तियुक्त अवसर दिया जाना अपेक्षित है । धारा 3(9) के निबंधनानुसार, केन्द्रीय सरकार को न्यायाधीश के विरुद्ध मामला संचालित करने के लिए एक अधिवक्ता नियुक्त करने की शक्ति प्राप्त है । धारा 4(1) में यह घोषित किया गया है कि ऐसे किन्हीं नियमों के अध्यधीन रहते हुए जो इस निमित्त बनाए जाएं, समिति को अन्वेषण करने के लिए अपनी प्रक्रिया स्वयं विनियमित करने की शक्ति होगी । इसमें यह भी अधिकथित किया गया है कि समिति न्यायाधीश को साक्षियों की प्रतिपरीक्षा करने, साक्ष्य पेश करने और अपने प्रतिवाद में सुनवाई के लिए युक्तियुक्त अवसर देगी । धारा 4(2) में समिति द्वारा यथास्थिति, अध्यक्ष या सभापति को रिपोर्ट प्रस्तुत करने का उपबंध है । इसमें वहां अध्यक्ष और सभापति दोनों को रिपोर्ट प्रस्तुत करने का भी उपबंध है जहां समिति संयुक्त रूप से उनके द्वारा मिलकर गठित की गई है । धारा 4(3) के अनुसार, समिति की रिपोर्ट वहां संसद् के दोनों सदनों के समक्ष रखी जानी अपेक्षित है जहां समिति अध्यक्ष और सभापति द्वारा मिलकर गठित की गई है । धारा 5 में यह अधिकथित है कि समिति को अधिनियम के अधीन अन्वेषण करने के प्रयोजनार्थ साक्षियों को समन करने इत्यादि से संबंधित विषयों में सिविल न्यायालय की वही शक्तियां होंगी जो उसे सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के अधीन वाद का विचारण करने के लिए होती हैं । धारा 6(1) में यह अधिकथित है कि यदि समिति यह निष्कर्ष निकालती है कि न्यायाधीश किसी कदाचार का दोषी नहीं है या उसमें कोई असमर्थता नहीं है तो संसद् के किसी भी सदन में कोई आगे कार्रवाई नहीं की जानी चाहिए । धारा 6(2) में यह उपबंध है कि यदि समिति की रिपोर्ट में यह निष्कर्ष हो कि न्यायाधीश किसी कदाचार का दोषी है या उसमें कोई असमर्थता है तो रिपोर्ट सहित प्रस्ताव पर उस सदन द्वारा, जिसमें प्रस्ताव लंबित है, विचार किया जाएगा । धारा 6(3) में यह उपबंध है कि यदि प्रस्ताव, यथास्थिति, संविधान के अनुच्छेद 124 (4) के उपबंधों के अनुसार या अनुच्छेद 218 के साथ पठित उस खंड के अनुसार, संसद् के हर एक सदन द्वारा अंगीकृत कर लिया जाता है तब यह समझा जाएगा कि न्यायाधीश का कदाचार या उसकी असमर्थता साबित हो गई है और न्यायाधीश के हटाए जाने की प्रार्थना करने वाला समावेदन उसी सत्र में जिसमें कि प्रस्ताव अंगीकृत किया गया है, संसद् के हर एक सदन द्वारा, राष्ट्रपति को विहित रीति से

उपस्थापित किया जाएगा ।

21. हम सुसंगत सांविधानिक और कानूनी उपबंधों की पृष्ठभूमि में अब इस बात पर विचार करेंगे कि क्या प्रत्यर्थी सं. 3 द्वारा बार एसोसिएशन आफ इंडिया द्वारा आयोजित सेमीनार में भाग लेने से, जहां उसने याची के इस न्यायालय में प्रोन्नयन का विरोध करते हुए भाषण दिया था और उस आशय के एक संकल्प का प्रारूप भी तैयार किया था, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वह याची के विरुद्ध पूर्वाग्रह से ग्रस्त था और उसे अधिनियम की धारा 3(2)(ग) के निबंधनों के अनुसार समिति का सदस्य नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए था ।

22. उपर्युक्त प्रश्न पर विचार करने के लिए पूर्वाग्रह के विरुद्ध नियम की प्रकृति और परिधि के प्रति संक्षिप्त निर्देश करते हुए प्राक्कथन करना आवश्यक है और भारत में साधारण विधि संबंधी अधिकारिता वाले न्यायालयों द्वारा न्यायिक और प्रशासनिक कार्यवाहियों/आदेशों को अविधिमान्य ठहराने के लिए इसे किस प्रकार लागू किया गया है । नैसर्गिक न्याय लोक विधि की एक शाखा है । यह एक ऐसा विकट हथियार है जिसे नागरिकों के लिए न्याय प्राप्त करने हेतु काम में लाया जा सकता है । नैसर्गिक न्याय के नियम ऐसी 'मूल मान्यताएं' हैं जिनका मनुष्य ने युगों से पोषण किया है । नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत लोक प्राधिकारियों के सभी कार्यों को तर्कसंगति, सद्भाव और न्याय, साम्या और शुद्ध अंतःकरण से संबंधित नियमों को लागू करके नियंत्रित करते हैं । नैसर्गिक न्याय ऐसी विधि का एक भाग है जिसका संबंध न्याय प्रशासन से है । नैसर्गिक न्याय के नियम वास्तव में न्याय और निष्पक्षता की महत्वपूर्ण प्रत्याभूतियां हैं । नैसर्गिक न्याय के नियमों का अंतर्निहित उद्देश्य नागरिकों की मूलभूत स्वाधीनता और उनके अधिकारों को सुनिश्चित करना है । इस प्रकार वे लोक हित की पूर्ति करते हैं । वह स्वर्णिम नियम जो दृढ़ता से साबित होता है, यह है कि नैसर्गिक न्याय का सिद्धांत केवल न्याय प्राप्त करने के लिए नहीं है बल्कि न्यायहानि रोकने के लिए है ।

23. परम्परागत आंग्ल विधि में नैसर्गिक न्याय के निम्नलिखित दो सिद्धांतों को मान्यता दी गई है :–

> (क) "Nemo debet esse judex in propria causa : कोई भी व्यक्ति अपने मामले का स्वयं निर्णायक नहीं हो सकता, या कोई भी व्यक्ति एक ही समय में दोनों - एक पक्षकार या वादकर्ता और दूसरे

निर्णायक - के रूप में कार्य नहीं कर सकता है, या विनिश्चय करने वाला प्राधिकारी निष्पक्ष और पूर्वाग्रह से रहित होना चाहिए; और

(ख) Audi alteram partem : दूसरे पक्ष को भी सुनो, या दोनों ओर के पक्षकारों की सुनवाई अवश्य ही की जानी चाहिए, या किसी भी व्यक्ति को बिना सुनवाई किए सिद्धदोष नहीं ठहराया जाना चाहिए, या विनिश्चय करने वाले प्राधिकारी की ओर से निष्पक्षता बरती जानी चाहिए ।

तथापि, विश्वभर के न्यायालयों ने वर्षों से नैसर्गिक न्याय के नियमों के नए पहलुओं की खोज की है और उन्हें न्यायिक, न्यायिककल्प और प्रशासनिक कार्यवाहियों/विनिश्चयों में भी लागू किया है । इसके साथ-साथ, न्यायालयों ने बारंबार इस बात पर जोर दिया है कि नैसर्गिक न्याय के नियम नम्य हैं और उनका लागू किया जाना मामले विशेष के तथ्यों और लागू कानूनी उपबंधों, यदि कोई हैं, प्रभावित होने वाले अधिकार की प्रकृति और उन परिणामों पर निर्भर करता है जो नैसर्गिक न्याय के नियमों का अतिक्रमण करने के कारण निकल सकते हैं ।

24. **रस्सल** बनाम **ड्यूक आफ नोरफाक**[1] वाले मामले में विद्वान् न्यायाधीश टकर ने इस प्रकार मत व्यक्त किया :–

"मेरी राय में, ऐसी कोई बात नहीं है जो प्रत्येक प्रकार की जांच और प्रत्येक किस्म के अंतर्देशीय अधिकरण को व्यापक रूप से लागू होती है । नैसर्गिक न्याय की अपेक्षाएं मामले की परिस्थितियों, जांच की प्रकृति, उन नियमों, जिनके अधीन अधिकरण कार्य कर रहा है, उस विषयवस्तु, जिसके संबंध में कार्यवाही की जा रही है, और ऐसी ही बातों पर निर्भर करनी चाहिएं ।"

बायर्ने बनाम **किनेमाटोग्राफ रेंटर्स सोसायटी लिमिटेड**[2] वाले मामले में लार्ड हरमन ने निम्नलिखित मताभिव्यक्तियां कीं :–

"तब इस किस्म के मामले में नैसर्गिक न्याय की अपेक्षाएं क्या हैं ? प्रथमतः, मैं यह समझता हूं कि अभियुक्त व्यक्ति को लगाए गए आरोप की जानकारी होनी चाहिए; द्वितीयतः, यह कि उसे अपना पक्षकथन करने का अवसर दिया जाना चाहिए; और तृतीयतः,

---

[1] (1949) 1 आल इंग्लैंड ला रिपोर्ट्स 108.

[2] (1958) 2 आल इंग्लैंड ला रिपोर्ट्स 579.

निस्संदेह अधिकरण को सद्भावपूर्वक कार्य करना चाहिए । मैं यह नहीं समझता हूं कि वास्तव में इससे अधिक कुछ और आवश्यक है।"

भारत संघ बनाम **पी. के. राय**[1] वाले मामले में न्यायमूर्ति रामास्वामी ने इस प्रकार मताभिव्यक्ति की :–

"नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत का विस्तार और उसका लागू किया जाना कठोर फार्मूले की सीमा के भीतर संकुचित नहीं किया जा सकता है । इस सिद्धांत का लागू किया जाना प्रशासनिक प्राधिकारी को प्रदत्त अधिकारिता की प्रकृति, प्रभावित व्यक्तियों के अधिकारों के स्वरूप, कानून की स्कीम और नीति और विशिष्ट मामले में प्रकट सुसंगत परिस्थितियों पर निर्भर करता है ।"

सुरेश कोशी जार्ज बनाम **केरल विश्वविद्यालय**[2] वाले मामले में न्यायमूर्ति के. एस. हेगड़े ने निम्न प्रकार मत व्यक्त किया था :–

"..... नैसर्गिक न्याय के नियम ऐसे नियम नहीं हैं जिन्हें कोई स्वरूप दिया जा सके । यह प्रश्न कि क्या किसी मामले में अपनाई गई प्रक्रिया द्वारा नैसर्गिक न्याय की अपेक्षाएं पूरी हुई हैं अथवा नहीं, काफी हद तक प्रश्नगत मामले के तथ्यों और उसकी परिस्थितियों, अधिकरण के गठन और उन नियमों पर निर्भर करना चाहिए जिनके अधीन वह कार्य करता है ।"

ए. के. केराइपक बनाम **भारत संघ**[3] वाला मामला प्रशासनिक विधि के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण निर्णय है । संविधान पीठ के विचारार्थ जो प्रश्न उत्पन्न हुआ था वह यह था कि नकीशबंद, जो कि अखिल भारतीय वन सेवा में नियुक्ति के लिए चयन की ईप्सा करने वाला अभ्यर्थी था, चयन बोर्ड का सदस्य होने के लिए अपात्र था अथवा नहीं । न्यायालय द्वारा जिन मुद्दों पर विचार किया गया था उनमें से एक यह था कि नैसर्गिक न्याय के नियम पूर्णतः प्रशासनिक कार्रवाई को लागू होते थे अथवा नहीं । न्यायालय ने इस विषय पर कुछ पूर्व-निर्णयों की अवेक्षा करने के पश्चात् इस प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

"प्रशासनिक शक्ति और न्यायिककल्प शक्ति के बीच की

---

[1] ए. आई. आर. 1968 एस. सी. 850.

[2] ए. आई. आर. 1969 एस. सी. 198.

[3] [1970] 2 उम. नि. प. 389 = (1969) 2 एस. सी. सी. 262.

विभाजन रेखा बहुत ही क्षीण है और वह भी धीरे-धीरे समाप्त हो रही है । यह अवधारित करने के लिए कि कोई शक्ति प्रशासनिक शक्ति है या न्यायिककल्प शक्ति, मनुष्य को चाहिए कि वह प्रदत्त शक्ति की प्रकृति पर, उस व्यक्ति या उन व्यक्तियों पर, जिसे या जिन्हें वह प्रदत्त की गई है, उस शक्ति को प्रदान करने वाली विधि की संरचना पर, उस शक्ति के प्रयोग से होने वाले परिणामों और उस रीति पर ध्यान दे जिस रीति से उस शक्ति को प्रयोग में लाया जाना प्रत्याशित है । हमारे संविधान में विधि शासन का ही विधान है । हमारे जैसे कल्याणकारी राज्य में यह अनिवार्य है कि हमारे संविधान के अधीन राज्य के अंगों को विधि शासन द्वारा विनियमित और नियंत्रित किया जाए । हमारे जैसे कल्याणकारी राज्य में प्रशासनिक निकायों की अधिकारिता का तेजी से बढ़ते रहना अपरिहार्य है । विधि शासन की कल्पना ही समाप्त हो जाएगी यदि राज्य में माध्यमों को ऋजु और न्यायोचित रीति से अपने कृत्यों का निर्वहन करने का कर्तव्य नहीं सौंपा जाता । न्यायिक रूप से कार्य करने का अर्थ है सारतः न्यायोचित ढंग से और ऋजुतः न कि मनमाने ढंग से या अस्थिरता के साथ कार्य करना । न्यायिक शक्ति के प्रयोग में जो प्रक्रियाएं अंतर्निहित समझी जाती हैं वे केवल वही प्रक्रियाएं हैं जो न्यायोचित और ऋजु विनिश्चय तक पहुंचने में सहायक होती हैं भले ही वे ऐसे विनिश्चय को सुनिश्चित न करती हों । हाल ही के कुछ वर्षों से न्यायिककल्प शक्ति की कल्पना में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं । कुछ वर्ष पहले जो शक्ति प्रशासनिक शक्ति समझी जाती थी वह अब न्यायिककल्प शक्ति समझी जाती है ।"

इसके बाद न्यायालय ने इस प्रश्न पर विचार किया कि क्या नैसर्गिक न्याय के नियम ऐसे मामले को लागू होते थे जिनमें किसी विशिष्ट सेवा में नियुक्ति के लिए चयन अंतर्वलित हो । विद्वान् महान्यायवादी ने यह तर्क दिया कि नैसर्गिक न्याय के नियम चयन की प्रक्रिया को लागू नहीं होते थे । संविधान पीठ ने **एच. के. (एक शिशु) वाला मामला**[1] वाले मामले में क्वीन्ज़ बैंच के निर्णय और **उड़ीसा राज्य** बनाम **डा. (सुश्री) बीना पाणि देई**[2] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय के प्रति निर्देश किया और निम्न प्रकार मत व्यक्त किया :–

---

[1] (1967) 2 क्यू. बी. 617.

[2] [1968] 2 उम. नि. प. 1113 = (1967) 2 एस. सी. सी. 625.

"नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का उद्देश्य न्याय प्राप्त करना अथवा यदि नकारात्मक ढंग से कहा जाए तो न्याय के दुरुपयोग को रोकना है । ये नियम केवल उन्हीं क्षेत्रों में प्रवर्तित हो सकते हैं जो विधितः बनाई गई किसी विधि के अंतर्गत नहीं आते । दूसरे शब्दों में, वे देश की विधि का मूलोच्छेदन नहीं करते अपितु वे उनके अनुपूरक हैं । पिछले कुछ वर्षों में नैसर्गिक न्याय की धारणा में बहुत कुछ परिवर्तन हुआ है । पहले ऐसे समझा जाता था कि इसके अंतर्गत केवल दो नियम आते हैं - अर्थात्, (1) कोई भी व्यक्ति अपने मामले का स्वयं निर्णायक नहीं हो सकता (Nemo debet ess judex propria causa), और (2) किसी पक्षकार के विरुद्ध कोई विनिश्चय तब तक नहीं दिया जाएगा जब तक उसकी युक्तियुक्त सुनवाई न कर ली जाए (audi alteram partem) । तत्पश्चात् शीघ्र ही एक तीसरे नियम की परिकल्पना की गई और वह यह है कि न्यायिककल्प जांच सद्भाव से और बिना पक्षपात के होनी चाहिए न कि मनमाने ढंग से अथवा अयुक्तियुक्त तरीके से । किन्तु कुछ वर्षों के दौरान बहुत से सहायक नियम भी नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों में जोड़ दिए गए । अभी हाल ही तक न्यायालयों की राय थी कि जब तक संबद्ध प्राधिकारी से उस विधि द्वारा, जिसके अधीन वह कृत्य कर रहा हो, न्यायिक रूप से कार्य करने की अपेक्षा न की जाए तब तक नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के लागू किए जाने की कोई गुंजाइश नहीं है । अब उस परिसीमा की वैधता पर आपत्ति की गई है । यदि नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का प्रयोजन न्याय के दुरुपयोग को रोकना है तो वे सिद्धांत प्रशासनिक जांच को क्यों लागू नहीं किए जाने चाहिएं । प्रायः यह आसान नहीं होता कि ऐसी कोई रेखा खींची जाए जो प्रशासनिक जांच को न्यायिककल्प जांच से अलग करती हो । जो जांच एक समय प्रशासनिक समझी जाती थी वही अब न्यायिककल्प प्रकृति की समझी जाती है । न्यायोचित विनिश्चय पर पहुंचना न्यायिककल्प जांच और प्रशासनिक जांच दोनों का ही लक्ष्य है । किसी प्रशासनिक जांच में किए गए किसी अन्यायपूर्ण विनिश्चय का असर किसी न्यायिककल्प जांच में किए गए विनिश्चय की अपेक्षा अधिक दूरगामी हो सकता है । जैसा कि सुरेश कोशी जार्ज **बनाम** केरल विश्वविद्यालय [1968] 2 उम. नि. प. 1113 = (1969) एस. सी. आर. 317 में इस न्यायालय ने कहा है कि नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत ऐसे सिद्धांत नहीं हैं जिन्हें कोई स्वरूप दिया जा सके । किसी मामले

> में नैसर्गिक न्याय का कौन-सा सिद्धांत लागू होना चाहिए यह बात अधिकतर उस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर, उस विधि की संरचना पर जिसके अधीन जांच की गई है और उस प्रयोजन के लिए नियुक्त अधिकरण या व्यक्ति-निकाय के गठन पर निर्भर है । जब कभी कोई परिवाद किसी न्यायालय के समक्ष यह कह कर दिया जाता है कि नैसर्गिक न्याय के किसी सिद्धांत का उल्लंघन हुआ है तो न्यायालय को यह विनिश्चय करना होता है कि क्या उस सिद्धांत का पालन उस मामले के तथ्यों और न्यायोचित विनिश्चय करने के लिए आवश्यक था ।"

मेनका गांधी बनाम **भारत संघ** (उपर्युक्त) वाले मामले में सात न्यायाधीशों की एक बृहत्तर न्यायपीठ ने इस प्रश्न पर विचार किया कि क्या याची को सूचना और सुनवाई का अवसर दिए बिना उसका पासपोर्ट ज़ब्त किया जा सकता था । न्यायमूर्ति भगवती ने स्वयं की ओर से और न्यायमूर्ति ऊंटवालिया और न्यायमूर्ति फज़ल अली की ओर से निर्णय सुनाते हुए 'दूसरे पक्ष को भी सुनो' के नियम को नया आयाम दिया और यह घोषित किया कि उस नियम का अतिक्रमण करके की गई प्रत्येक कार्रवाई संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 की अतिक्रमणकारी है । विद्वान् न्यायाधीश ने **रिज** बनाम **बाल्डविन**[1], **उड़ीसा राज्य** बनाम **डा. (सुश्री) बीना पाणि देई** (उपर्युक्त), **एच. के. (एक शिशु) वाला मामला** (उपर्युक्त) और **ए. के. केराइपक** बनाम **भारत संघ** (उपर्युक्त) वाले मामले के प्रति निर्देश किया और इस प्रकार मत व्यक्त किया :–

> "'दूसरे पक्ष को भी सुनो' वाला नियम विधि में न्याय निविष्ट करने के लिए आशयित है और यह न्याय के उद्देश्यों को विफल करने के लिए अथवा विधि को 'निर्जीव, बेतुका, निरर्थक, आत्मपराजयी अथवा स्थिति को सामान्य भाव के सहज प्रतिकूल' बनाने के लिए लागू नहीं किया जा सकता । चूंकि विधि का प्राण तर्क नहीं बल्कि अनुभव है और अंतिम विश्लेषण के तौर पर हर विधिक प्रस्थापना को व्यावहारिक वास्तविकता की कसौटी पर परखा जाना चाहिए, 'दूसरे पक्ष को भी सुनो' वाला नियम प्रयोगात्मक कसौटी द्वारा अपवर्जित हो जाएगा यदि सुनवाई के अधिकार को निविष्ट करने का प्रभाव प्रशासनिक प्रक्रिया को पंगु बनाना है अथवा शीघ्रता अथवा स्थिति की

---

[1] (1964) अपील केसेज़ 40.

अत्यावश्यकता ऐसी मांग करती है । साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिए कि यह प्रशासनिक विधि के क्षेत्र में अत्यंत महत्व का नियम है और इसे बहुत ही असाधारण परिस्थितियों को छोड़ते हुए त्याग नहीं देना चाहिए, जहां कि वैवश्यक आवश्यकता ऐसी मांग करती है । यह विधि के नियम प्राप्त करने के लिए परिकल्पित पूर्ण नियम है और न्यायालय को किसी विशेष मामले में इसे लागू करने से बचने के लिए बहुत उत्सुकतापूर्वक तैयार नहीं रहना चाहिए । यह सत्य है कि इस प्रकार के प्रश्नों में कट्टरवादी अथवा सैद्धांतिक दृष्टिकोण से बचना चाहिए किन्तु उसका यह अर्थ नहीं है कि मात्र इसलिए कि सुनवाई की प्ररूपिक परंपरागत पद्धति का प्रभाव कानूनी शक्ति के प्रयोग को निरर्थक बनाने वाला हो सकता है इसलिए 'दूसरे पक्ष को भी सुनो' वाला नियम पूर्णतया अपवर्जित कर दिया जाना चाहिए । न्यायालय को किसी विशेष मामले में इस प्रमुख नियम की रक्षा करने का अधिकतम अनुज्ञेय सीमा तक प्रयास करना चाहिए । यह नहीं भूलना चाहिए कि 'नैसर्गिक न्याय व्यावहारिक रूप से लचीला है और परिस्थितियों के वैवश्यक दबाव के अधीन इसमें फेरफार किए जा सकते हैं'। 'दूसरे पक्ष को भी सुनो' वाला नियम कठोर ढांचे में नहीं ढाला गया है और न्यायिक विनिश्चय यह सिद्ध करते हैं कि इसमें स्थिति के अनुसार उपांतरण किए जा सकते हैं । किन्तु इसका मर्म यह है कि प्रभावित व्यक्ति को सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर दिया जाना चाहिए और वह सुनवाई वास्तविक सुनवाई होनी चाहिए न की जनसंपर्क का थोथा प्रयोग ।

पासपोर्ट ज़ब्त करने का आदेश करने के तुरंत पश्चात् सुनवाई का एक उचित अवसर नैसर्गिक न्याय की आज्ञा की पूर्ति करेगा और संबद्ध व्यक्ति को ऐसे अवसर के दिए जाने की अपेक्षा करने वाला उपबंध पासपोर्ट अधिनियम, 1967 में विवक्षित रूप से समझा जा सकता है और समझा जाना चाहिए । यदि ऐसे उपबंध के बारे में यह माना जाए कि वह आवश्यक विवक्षा द्वारा उसमें समाविष्ट है जैसा कि हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि यह होनी चाहिए, पासपोर्ट ज़ब्त करने के लिए अधिनियम द्वारा विहित प्रक्रिया सही, निष्पक्ष और न्यायसंगत है और इसमें मनमानेपन अथवा अयुक्तियुक्तता का दोष नहीं है । अतः हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि पासपोर्ट ज़ब्त करने के लिए पासपोर्ट अधिनियम, 1967 द्वारा 'स्थापित' प्रक्रिया अनुच्छेद

21 की अपेक्षा के अनुरूप है और उस अनुच्छेद का अतिक्रमण नहीं करती है ।"

ओल्गा टेलिस बनाम **मुम्बई नगर निगम**[1] वाले मामले में संविधान पीठ ने इस प्रश्न पर विचार किया कि क्या पटरी और गन्दी बस्तियों में रहने वालों को सुने बिना बेदखल किया जा सकता था । न्यायमूर्ति चन्द्रचूड़ ने, इस विषय पर विभिन्न पूर्वनिर्णयों का उल्लेख करने के पश्चात् इस प्रकार मत व्यक्त किया :–

> "जिस प्रकार विधि की दृष्टि में असद्भावी कृत्य का कोई अस्तित्व नहीं होता ठीक उसी प्रकार अयुक्तियुक्तता विधि और प्रक्रिया को समान रूप से दूषित बना देती है । अतः यह अनिवार्य है कि किसी व्यक्ति को उसके मूल अधिकार, इस मामले में जीवन के प्रति अधिकार, से वंचित करने वाली विधि द्वारा स्थापित, न्याय और साम्यिक व्यवहार के मानदंडों के अनुरूप होनी चाहिए । ऐसी प्रक्रिया, जो किसी मामले की परिस्थितियों में अन्यायोचित अथवा अऋजु होती है, अयुक्तियुक्तता के दोष से ग्रस्त होती है, उसे विहित करने वाली विधि को दूषित बना देती है और उसके परिणामस्वरूप उसके अधीन की गई कार्रवाई दूषित हो जाती है । अतः, किसी ऐसे लोक प्राधिकारी द्वारा जिसमें कानूनी शक्ति निहित की गई है, की गई किसी कार्रवाई का परीक्षण इन दो मानकों को लागू करके किया जाना चाहिए - एक, कार्रवाई विधि द्वारा स्थापित प्राधिकारी की परिधि के अंतर्गत होनी चाहिए और दूसरे वह युक्तियुक्त होनी चाहिए । यदि विधि द्वारा प्रदत्त प्राधिकार की परिधि के अंतर्गत की गई कोई कार्रवाई अयुक्तियुक्त पाई जाती है तो इसका अभिप्राय यह होनी चाहिए कि विधि द्वारा स्थापित जिस प्रक्रिया के अधीन वह कार्रवाई की गई है वह प्रक्रिया ही अयुक्तियुक्त है । विधि का तत्व उस प्रक्रिया से पृथक् नहीं किया जा सकता जिसे वह विहित करता है क्योंकि यह बाद कि विधि कितनी युक्तियुक्त है इस पर निर्भर करती है कि उसके द्वारा विहित की जाने वाली प्रक्रिया कितनी ऋजु है । सर रेमंड एवरशेड ने कहा है, 'साधारण नागरिक के दृष्टिकोण से वह प्रक्रिया ही है जिससे उसे सबसे अधिक सामर्थ्य प्राप्त होगी । वह कानूनी मशीन को हरकत में लाकर अपनी जानकारी और अनुभव की

---

[1] [1986] 1 उम. नि. प. 269 = (1985) 3 एस. सी. सी. 545.

सहायता से विधिक तंत्र की उत्कृष्टता अथवा निष्कृष्ता की बाबत निर्णय करने के लिए प्रवृत्त होगा [दि इनफ्लुऐंस आफ रिमेडीज़ आन राइट्स (करेंट लीगल प्राबलम्स, 1953, वाल्यूम 6)]' अतः जो प्रक्रिया की तलवार लेती है वह उसी तलवार से नष्ट होता है ।"

25. इस मामले में, हमारा संबंध परम्परागत आंग्ल विधि द्वारा मान्यताप्राप्त नैसर्गिक न्याय के दो सिद्धांतों में से प्रथम सिद्धांत को लागू करने से है, अर्थात् कोई भी व्यक्ति अपने मामले का स्वयं निर्णायक नहीं हो सकता । इस सिद्धांत में पूर्वाग्रह या हित के विरुद्ध वाला नियम शामिल है और यह तीन सूत्रों पर आधारित है : (i) कोई भी व्यक्ति अपने मामले का स्वयं निर्णायक नहीं होगा; (ii) न्याय न केवल किया जाना चाहिए बल्कि स्पष्टतः और निसंदिग्ध रूप से किया गया दिखाई भी देना चाहिए; और (iii) न्यायाधीश, सीज़र की पत्नी की तरह संदेह से परे होने चाहिएं । नैसर्गिक न्याय की पहली अपेक्षा यह है कि न्यायाधीश निष्पक्ष और तटस्थ होना चाहिए और वह पूर्वाग्रह से मुक्त होना चाहिए । उसका संविवाद के पक्षकारों के प्रति तटस्थ होना आवश्यक है । वह किसी ऐसे वाद में न्यायाधीश के रूप में कार्य नहीं कर सकता है जिसमें उसका अपना धनीय या अन्यथा कोई हित है क्योंकि यह तटस्थता के विरुद्ध मजबूत आधार बनता है । वह न्यायिक रूप से कार्य करने और मामले का आत्मपरक रूप से विनिश्चय करने की स्थिति में होना चाहिए । न्यायाधीश कठोर प्रवृति का होना चाहिए । उसका मानसिक संतुलन सदैव दृढ़ और अनभिज्ञेय होना चाहिए । उसे विनिश्चय करते समय व्यक्तिगत पूर्वाग्रह को आड़े नहीं आने देना चाहिए । उद्देश्य मात्र यह नहीं है कि तराजू को संतुलित रूप में पकड़ना चाहिए बल्कि उसके पलड़े झुके हुए प्रतीत भी नहीं होने चाहिएं । यदि न्यायाधीश विवाद से संबंधित किसी पक्षकार के पक्ष या विरोध में पूर्वाग्रह से ग्रस्त है या ऐसी स्थिति में है कि पूर्वाग्रह का अनुमान लगाया जा सकता है तो वह न्यायाधीश के रूप में कार्य करने के लिए अपात्र है और कार्यवाहियां दूषित होंगीं । यह नियम ऐसे न्यायिक और प्रशासनिक प्राधिकारियों को लागू होता है जिनसे न्यायिक या न्यायिककल्प रूप से कार्य करने की अपेक्षा होती है ।

26. धनीय पूर्वाग्रह संबंधी हित, चाहे वह कितना ही छोटा क्यों न हो, किसी व्यक्ति को न्यायाधीश के रूप में कार्य करने के लिए अपात्र बनाता है । तथापि, अन्य प्रकार के पूर्वाग्रहों को यही आधार लागू नहीं होता और न्यायालयों ने समय-समय पर यह विनिश्चित करने के लिए भिन्न-भिन्न

नियम तैयार किए हैं कि क्या व्यक्तिगत या शासकीय पूर्वाग्रह या विषयवस्तु के प्रति पूर्वाग्रह या न्यायिक ज़िद के कारण अंतिम कार्रवाई/आदेश/विनिश्चय दूषित हो जाएगा ।

27. **क्वीन** बनाम **रैंड**[1] वाले मामले में क्वीन्स बैंच से इस प्रश्न पर विचार करने की अपेक्षा की गई थी कि क्या दो न्यायमूर्तियों के क्रमशः किसी अस्पताल और किसी हितकर सोसायटी के न्यासी होने संबंधी तथ्य के कारण, जिनमें से प्रत्येक ने ब्रेडफोर्ड कारपोरेशन को बंधपत्रों पर निगमित निधि पर प्रभारित धन उधार दिया था, वे उन कार्यवाहियों में भाग लेने से अपात्र थे, जिनके परिणामस्वरूप मिल मालिकों से अनुज्ञा लिए बिना कतिपय जलधाराओं से जल लेने के लिए कारपोरेशन के पक्ष में प्रमाणपत्र जारी किया गया था । न्यायमूर्ति ब्लैकबर्न ने इस प्रश्न का उत्तर नकारात्मक रूप में देते हुए निम्नलिखित नियम विरचित किया :–

> "..... इस संबंध में कोई संदेह नहीं है कि किसी प्रत्यक्ष धनीय हित से, चाहे वह जांच की विषय को ध्यान में रखते हुए कितना ही छोटा क्यों न हो, किसी व्यक्ति को उस मामले में न्यायाधीश के रूप में कार्य करने से अपात्र बनाता है; और यदि किसी संभाव्यता के आधार पर ये महानुभाव, हालांकि वे मात्र न्यासी हैं, अपने इस रूप में होने के फलस्वरूप खर्चे या किसी अन्य धनीय हानि या अभिलाभ के लिए दायी हो सकते हैं तो हमें इस प्रश्न पर इससे भिन्न रूप में विचार करना चाहिए क्योंकि तब उसे एक हित अभिनिर्धारित किया जा सकेगा । किन्तु वह एकमात्र तरीका, जिसमें तथ्य उनकी निष्पक्षता को प्रभावित कर सकेंगे, यह होगा कि उनकी प्रवृत्ति उन व्यक्तियों का पक्ष लेने की हो सकती थी जिनके लिए वे न्यासी थे; और वह आक्षेप हित के स्वरूप का नहीं है बल्कि वह पक्षपात को दी गई चुनौती है । जहां कहीं भी इस बात की वास्तविक संभाव्यता होती है कि न्यायाधीश सदृश या किसी अन्य कारण से किसी एक पक्षकार के पक्ष में पूर्वाग्रह से ग्रस्त होगा वहां उसके लिए कार्य करना गलत होगा; और हमारे कहने का यह तात्पर्य नहीं लगाया जाना चाहिए कि जहां इस किस्म का वास्तविक पूर्वाग्रह होता है वहां यह न्यायालय हस्तक्षेप नहीं करेगा; किन्तु प्रस्तुत मामले में, इस संबंध में संदेह करने का कोई आधार नहीं है कि न्यायमूर्तियों ने पूर्णतया सद्भाविक रूप से

---

[1] (1866) एल. आर. 1 (क्यू. बी. डी.) 230.

कार्य किया और एकमात्र प्रश्न यह है कि इन परिस्थितियों में यथार्थ विधि के अनुसार इन न्यायमूर्तियों का प्रमाणपत्र शून्य है क्योंकि यह तब होगा यदि उनका कोई धनीय हित है; और हम यह समझते हैं कि रेज **बनाम** डीन ऑफ रोचेस्टर (1) वाला मामला इस संबंध में एक नजीर है कि वे परिस्थितियां, जिनसे पक्षपात का संदेह उत्पन्न हो सकता है, वही प्रभाव पैदा नहीं करतीं जो कि एक धनीय हित करता है ..... ।"

28. **रेक्स** बनाम **ससेक्स जस्टिसिज़, एक्सपार्टे मैकार्थी**[1] वाले मामले में मुख्य न्यायमूर्ति लार्ड हैवर्ट ने यह नियम विरचित किया था कि न्याय न केवल किया जाना चाहिए बल्कि वह प्रकट रूप से और निसंदिग्ध रूप से किया गया दिखाई भी देना चाहिए । उस मामले के तथ्य ये थे कि तारीख 21 अगस्त, 1923 को अपीलार्थी द्वारा चलाई जा रही एक मोटर साइकिल और व्हाइटवर्थ नामक व्यक्ति द्वारा चलाई जा रही मोटर साइकिल और साइड कार की टक्कर हो गई और यह अभिकथन किया गया कि पश्चात्वर्ती और उसकी पत्नी को उस टक्कर में क्षतियां कारित हुईं । उन क्षतियों की बाबत मैसर्स लंघम, सन एंड डगलस, सालिसिटर, हास्टिंग्स ने तारीख 28 अगस्त, 1923 के पत्र द्वारा व्हाइटवर्थ की ओर से आवेदक के विरुद्ध नुकसानी के लिए दावा किया और पुलिस ने टक्कर की परिस्थितियों के बारे में जांच करने के पश्चात् आवेदक के विरुद्ध सर्वसाधारण के लिए खतरनाक रीति में अपनी मोटर साइकिल चलाने के लिए समन का आवेदन किया और समन प्राप्त कर लिया । तारीख 22 सितम्बर, 1923 को उस समन की सुनवाई के समय आवेदक के सालिसिटर ने, जिसने अपने शपथपत्र में यह कथन किया था कि उसे न्यायालय के पदाधिकारियों के बारे में कोई जानकारी नहीं थी, इस संबंध में पूछताछ की कि क्या श्री एफ. जी. लंघम, जो कि न्यायमूर्तियों का लिपिक और लंघम, सन एंड डगलस की उक्त फर्म का सदस्य था, उस समय लिपिक के रूप में आसीन था और उसे यह सूचित किया गया था कि वह उस रूप में आसीन नहीं था बल्कि उस दिन के लिए एक सहायक नियुक्त किया गया था । तब मामले की सुनवाई की गई थी और साक्ष्य के पूरा होने पर न्यायमूर्ति अपने विनिश्चय पर विचार करने के लिए एकांत में चले गए और सहायक लिपिक भी उनके साथ एकांत में चला गया । जब न्यायमूर्ति न्यायालय में वापस आए तो उन्होंने यह सूचित किया कि उन्होंने

---

[1] (1924) 1 के. बी. 256.

आवेदक को सिद्धदोष ठहराने का विनिश्चय किया है और उन्होंने 10 लाख रुपए का जुर्माना और खर्चे अधिरोपित किए । इस पर, आवेदक के सालिसिटर ने न्यायमूर्तियों की जानकारी में वह तथ्य लाया जिसके बारे में, उसने यह कहा कि उसे तब पता चला जब न्यायमूर्ति एकांत में चले गए थे कि सहायक लिपिक श्री एफ. जी. लंघम का भाई था और वह स्वयं लंघम, सन एंड डगलस फर्म में एक भागीदार था और इसलिए उस टक्कर के कारण उद्‌भूत होने वाली सिविल कार्यवाहियों में, जिनकी बाबत उन्होंने आवेदक को सिद्धदोष ठहराया था, व्हाइटवर्थ की ओर से सालिसिटर के रूप में हितबद्ध था । सालिसिटर ने अपने शपथपत्र में यह कथन किया कि यदि उसे उपरोक्त तथ्यों की जानकारी होती तो वह मामला आरंभ होने से पूर्व इसके बारे में आक्षेप करता । यह आदेश इसके पश्चात् इस आधार पर अभिप्राप्त किया गया था कि इन परिस्थितियों में सहायक लिपिक के लिए न्यायमूर्तियों के साथ तब एकांत में जाना गलत था जब वे अपने विनिश्चय के लिए विचार कर रहे थे । किंग्स बैंच ने पूर्वाग्रह के आधार पर दोषसिद्धि को अभिखंडित कर दिया । मुख्य न्यायमूर्ति लार्ड हेवर्ट ने निम्नलिखित प्रश्न उठाए :–

> "..... अतः प्रश्न यह नहीं है कि क्या इस मामले में सहायक लिपिक ने ऐसी कोई मताभिव्यक्ति या टीका-टिप्पणी की जो कि उसे उचित रूप से नहीं करनी चाहिए थी; प्रश्न यह है कि क्या वह मामले के सिविल पहलू की दृष्टि से उससे इतना संबद्ध था कि वह दांडिक मामले में न्यायमूर्तियों के लिपिक के रूप में कार्य करने के लिए अयोग्य था ।"

इसके बाद उसने यह मताभिव्यक्ति की –

> ".....उस प्रश्न का उत्तर इस बात पर निर्भर नहीं करता है कि वास्तव में क्या किया गया था बल्कि इस बात पर निर्भर करता है कि क्या किया गया प्रतीत हो सकता है । ऐसा कुछ भी नहीं किया जाना चाहिए जिससे यह शंका मात्र उत्पन्न होती हो कि न्याय के मार्ग में अनुचित हस्तक्षेप किया गया है । अपनी ओर से निर्णय सुनाते हुए मैं न्यायमूर्तियों के शपथपत्र में अंतर्विष्ट कथनों को स्वीकार करता हूं किन्तु इनसे स्पष्ट रूप से यह दर्शित होता है कि सहायक लिपिक इस मामले से ऐसी हैसियत में सहबद्ध था जिससे यह कहना सही था कि उसे ईमानदारी से किसी भी प्रकार से इस मामले के प्रति निर्देश करने से विरत रहना चाहिए था यद्यपि वह न्यायमूर्तियों के साथ

एकांत में गया; दूसरे शब्दों में, उसकी एक स्थिति ऐसी थी कि यदि उससे ऐसे कर्तव्यों का निर्वहन करने की अपेक्षा की जाती जो कि उसकी दूसरी स्थिति में अंतर्वलित थे तो वह उनका निर्वहन नहीं कर सकता था । उसकी दोहरी स्थिति प्रकटतः विरोधाभासी थी । उन परिस्थितियों में, मेरा यह समाधान हो गया है कि यह दोषसिद्धि अवश्य ही अभिखंडित की जानी चाहिए जब तक कि यह दर्शित नहीं किया जा सकता है कि आवेदक या उसके सालिसिटर को उस मुद्दे का पता था जो कि उठाया जा सकता था किन्तु वे उस मुद्दे को उठाने से विरत रहे और उन्होंने तथ्यों के आधार पर दोषमुक्त कराने के अपने अवसर का उपभोग किया और इसके बाद दोषसिद्धि अभिलिखित किए जाने पर इस मुद्दे को उठाने का विनिश्चय किया..... ।"

29. **रेगिना** बनाम **कैम्बोर्न जस्टिसिज़ एक्सपार्टे पियर्स**[1] वाले मामले में क्वींस बैंच डिवीजन के खंड न्यायालय ने अनेक नजीरों का पुनर्विलोकन करने के पश्चात्, जिसमें **रैक्स** बनाम **ससेक्स जस्टिसिज़, एक्सपार्टे मैकार्थी** (उपर्युक्त) वाला मामला भी है, यह अभिनिर्धारित किया कि "वास्तविक संभाव्यता उचित परीक्षण था और पक्षपात की वास्तविक संभाव्यता न केवल शिकायत करने वाले पक्षकार द्वारा वास्तव में अभिनिश्चित सामग्री से बल्कि ऐसे अतिरिक्त तथ्यों से भी प्रकट होनी चाहिए थी जिन्हें वह आसानी से अभिनिश्चित करता और अपनी जांचों के दौरान उन्हें सुगमता से सत्यापित कर लेता ।" उस मामले में जो प्रश्न विचारार्थ उद्भूत हुआ था वह यह था कि क्या हैनरी पियर्स की दोषसिद्धि चार आधारों पर दूषित थी जिसमें यह आधार भी था कि पूरी सुनवाई के दौरान श्री डोनाल्ड वुडरॉफ थॉमस, सालिसिटर ने न्यायमूर्तियों के लिपिक के रूप में कार्य किया और उसे उनके प्राइवेट कक्ष में उन्हें परामर्श देने के प्रयोजनार्थ बुलाया गया था हालांकि उस समय वह परिषद् का पार्षद सदस्य था । उस मामले के तथ्य निम्न प्रकार थे :–

"तारीख 27 जनवरी, 1948 को परिषद् की लोक स्वास्थ्य और आवासन समिति ने (जिसे बाद में स्वास्थ्य समिति के रूप में जाना जाता था) यह सिफारिश की कि परिषद् के नमूना अधिकारियों को फूड एंड ड्रग्स ऐक्ट, 1938 के अधीन कार्यवाहियां संस्थित करने का

---

[1] (1955) 1 क्यू. बी. 41.

प्राधिकार दिया जाना चाहिए । उस तारीख तक परिषद् के प्रत्येक नमूना अधिकारी को, जिसमें रंडल भी था, समय-समय पर परिषद् की मुद्रा के अधीन प्राधिकार दिए गए थे और उन्हें खाद्य और औषधि अधिनियमों के अधीन परिषद् के निरीक्षकों और प्राधिकृत अधिकारियों के रूप में नियुक्त किया गया था और उन्हें परिषद् की ओर से संक्षिप्त अधिकारिता वाले किसी भी न्यायालय के समक्ष इन अधिनियमों के अधीन कार्यवाहियां संस्थित करने के लिए अभिव्यक्त रूप से प्राधिकृत किया गया था । तारीख 20 जून, 1952 को रंडल और अन्य नमूना अधिकारियों को एक नया मुद्राबंद प्राधिकार दिया गया था जो कि पूर्ववर्ती प्राधिकारों का एक विस्तारण था और यह मुद्राबंद प्राधिकार सभी तात्विक समयों पर प्रवर्तन में था । इस प्राधिकार द्वारा नमूना अधिकारियों को अन्य बातों के साथ-साथ खाद्य और औषधि अधिनियमों के अधीन अपने विवेकानुसार और ऐसा करने के लिए परिषद् से कोई विनिर्दिष्ट प्राधिकार की ईप्सा किए बिना कार्यवाहियां संस्थित करने के लिए सशक्त किया गया था और मुख्य नमूना अधिकारी के लिए स्वास्थ्य समिति को उस कार्यवाही के बारे में, जो उसके अधीनस्थों ने वास्तव में की थी, रिपोर्ट करना एक पद्धति बन गई थी । तारीख 4 जनवरी, 1954 को रंडल ने आवेदक के विरुद्ध दो जानकारियां फाइल कीं । तारीख 19 जनवरी, 1954 को मुख्य नमूना अधिकारी ने स्वास्थ्य समिति को यह रिपोर्ट की कि आवेदक के विरुद्ध ऐसी कार्यवाहियां लंबित थीं ।

परिषद् ने 23 फरवरी, 1954 को अपनी स्वास्थ्य समिति की तारीख 19 जनवरी, 1954 की रिपोर्ट प्राप्त की और उसे अंगीकार की । तारीख 13 अप्रैल, 1954 को मुख्य नमूना अधिकारी ने स्वास्थ्य समिति को आवेदक के विरुद्ध चल रही कार्यवाहियों के परिणाम की रिपोर्ट दी । तारीख 11 मई, 1954 को परिषद् ने अपनी स्वास्थ्य समिति की तारीख 13 अप्रैल, 1954 की रिपोर्ट प्राप्त की और उसे अंगीकार किया । ऊपर उल्लिखित चार बैठकों में से किसी भी बैठक में श्री थॉमस उपस्थित नहीं थे और वह वास्तव में स्वास्थ्य समिति या उसकी पूर्ववर्ती लोक स्वास्थ्य और आवासन समिति का कभी भी सदस्य नहीं था । रंडल ने अपने विवेक का प्रयोग करते हुए और अपने मुद्राबंद प्राधिकार द्वारा उसे प्रदत्त शक्ति के अनुसरण में अपने उत्तरदायित्व का निर्वहन करते हुए दो जानकारियां प्रस्तुत कीं । श्री

थॉमस को तारीख 30 दिसम्बर, 1931 को ईस्ट पेनविथ डिवीजन ऑफ कार्नवाल के लिए न्यायमूर्तियों का लिपिक नियुक्त किया गया था । उसे तारीख 22 अप्रैल, 1937 को कार्नवाल काउंटी परिषद् का सदस्य निर्वाचित किया गया था । उसने कैम्बोर्न मजिस्ट्रेट के न्यायालय में जानकारी के आधार पर आवेदक के विचारण के दौरान 26 जनवरी, 1954 को न्यायमूर्तियों के लिपिक के रूप में कार्य किया । वह न्यायमूर्तियों के साथ उस समय एकांत में नहीं गया जब वे अपने निर्णय के संबंध में विचार कर रहे थे किन्तु बाद में अध्यक्ष ने उसे वहां भेजा और उसे विधि के किसी मुद्दे पर न्यायमूर्तियों को परामर्श देने के लिए कहा । उस अल्प अवधि के दौरान जब तक वह न्यायमूर्तियों के साथ था, उन्होंने मामले के तथ्यों के बारे में बिल्कुल भी चर्चा नहीं की और विधि के मुद्दे के संबंध में अपना परामर्श देने के पश्चात् वह न्यायालय में वापस आ गया । कुछ समय पश्चात् न्यायमूर्ति वापस आ गए और उन्होंने अपना विनिश्चय किया । आवेदक ने सुनवाई के दौरान 'दोषी न होने' का अभिवाक् किया । कार्नवाल काउंटी परिषद् के पूर्णकालिक नियोजन वाले सालिसिटर द्वारा अभियोजन का संचालन किया गया । आवेदक का प्रतिनिधित्व काउन्सेल ने किया जिसे उसके सालिसिटर, मैसर्स स्टीफन्स एंड स्काउन ऑफ सेंट अस्टैल द्वारा अनुदेश दिए गए । श्री फिलिप स्टीफन्स, आबद्ध लिपिक ने (जिसका फर्म के किसी भागीदार से कोई संबंध नहीं है) सुनवाई के समय उस फर्म की ओर से काउन्सेल की सहायता की । उस समय न तो आवेदक न ही काउन्सेल और न ही आबद्ध लिपिक को इस बात का पता था कि न्यायमूर्तियों का लिपिक कार्नवाल काउंटी परिषद् का सदस्य था यद्यपि इस तथ्य का फर्म के भागीदार श्री विल्लियम गारफील्ड स्काउन को, जिसने आवेदक की प्रतिरक्षा का संचालन किया था, भलीभांति पता था ।

1948 से 1953 तक छह वर्षों के दौरान कार्नवाल काउंटी परिषद् द्वारा कुल 660 अभियोजनों की सुनवाई की गई थी और ईस्ट पेनविथ मजिस्ट्रेट के न्यायालय द्वारा उनका अवधारण किया गया था जिनमें या तो श्री थॉमस ने या न्यायमूर्तियों के सहायक लिपिक श्री गारफील्ड उरेन ने न्यायमूर्तियों के लिपिक के रूप में कार्य किया था फिर भी जहां तक ज्ञात था इससे पूर्व कभी भी कोई आक्षेप नहीं किया गया था क्योंकि श्री थॉमस ने कार्नवाल काउंटी परिषद् द्वारा या

> उसकी ओर से दी गई सूचना की सुनवाई के दौरान न्यायमूर्तियों के लिपिक के रूप में कार्य किया था । इस संबंध में कोई अभिकथन नहीं किया गया था कि श्री थॉमस ने न्यायमूर्तियों को तारीख 26 जनवरी, 1954 को अपने विनिश्चय पर पहुंचने में प्रभावित करने के लिए किसी भी प्रकार से अनुचित रूप में प्रयास किया था ।"

उस मामले में जो प्रश्न उठाया गया था वह यह था कि "किसी न्यायिक या न्यायिककल्प कार्यवाही में किसी व्यक्ति को पूर्वाग्रह या पूर्वाग्रह के आभास के आधार पर न्यायनिर्णयन करने या न्यायनिर्णयन में सहायता करने से अक्षम बनाने के लिए किस हित को विधि के अनुसार पर्याप्त माना गया है ।" निस्संदेह, यह सही है कि किसी कार्यवाही की विषयवस्तु में कोई भी प्रत्यक्ष धनीय या स्वामित्व संबंधी हित, चाहे वह कितना ही कम क्यों न हो, स्वतः निरर्हता के रूप में प्रवर्तित होता है । ऐसी दशा में विधि में पूर्वाग्रह की कल्पना की जाती है । इससे कम कौन सा हित पर्याप्त होगा ? खंड न्यायालय ने **क्वीन** बनाम **रैंड** (उपर्युक्त) वाले मामले में न्यायमूर्ति ब्लैकबर्न के निर्णय, जिसमें पूर्वाग्रह की वास्तविक संभाव्यता की परीक्षा विकसित हुई थी, **एकरसले** बनाम **मर्सी डाक्स एंड हार्बर बोड**[1], **रेक्स** बनाम **काउंटी कार्क के न्यायमूर्ति**[2], **रेक्स** बनाम **ससेक्स जस्टिसिज़, एक्सपार्टे मैकार्थी** (उपर्युक्त), **फ्रोम यूनाइटेड ब्रेवरीज़ कंपनी** बनाम **बाथ जस्टिसिज़**[3], **रेक्स** बनाम **एसेक्स जस्टिसिज़, एक्सपार्टे पेरकिन्स**[4] वाले मामलों में लार्ड ईशर, एम. आर. के निर्णयों के प्रति निर्देश किया और इस प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

> "इस न्यायालय के निर्णयानुसार, सही परीक्षा वही है जो न्यायमूर्ति ब्लैकबर्न द्वारा विहित की गई है, अर्थात्, यह कि किसी व्यक्ति को कार्यवाही की विषयवस्तु में हित (धनीय या स्वामित्व संबंधी हित से भिन्न) के आधार पर किसी न्यायिक या न्यायिककल्प हैसियत में कार्य करने से अपात्र बनाने के लिए पूर्वाग्रह की वास्तविक संभाव्यता अवश्य ही दर्शाई जानी चाहिए । इस न्यायालय की यह राय भी है कि पूर्वाग्रह की वास्तविक संभाव्यता न केवल शिकायत करने वाले पक्षकार द्वारा वास्तव में अभिनिश्चित सामग्री से प्रकट की जानी

---

[1] (1894) 2 क्यू. बी. 667.

[2] (1910) 2 आई. आर. 271.

[3] (1926) अपील केसेज़ 586.

[4] (1927) 2 के. बी. 475.

चाहिए थी बल्कि ऐसे अतिरिक्त तथ्यों से भी प्रकट की जानी थी जो कि वह अपनी जांचों के अनुक्रम में आसानी से अभिनिश्चित और सत्यापित कर सकता था ।

प्रस्तुत मामले में, उदाहरणार्थ, आर. एस. सी., अध्यादेश 59, नियम 3(2) के अधीन आवेदक के कथन में अवलंब लिए गए तथ्यों से इस न्यायालय द्वारा पाए गए उन पूर्ण तथ्यों के मुकाबले अधिक अनर्थकारी धारणा सृजित हो सकती है, जो सभी या अधिकांश आवेदक को उपलब्ध हो सकते थे यदि उसने यह जानने पर कि श्री थॉमस कार्नवल काउंटी परिषद् का सदस्य था, अपनी जांचों का अनुसरण किया होता और इन अतिरिक्त तथ्यों में से किसी भी तथ्य के संबंध में इस समावेदन की सुनवाई के समय विवाद नहीं किया गया था ।

हाल ही में न्यायालयों के समक्ष जिस तेजी से पक्षपात के अभिकथन किए गए हैं उससे यह संकेत प्रतीत होता है कि ससेक्स जस्टिसिज़ वाले मामले में लार्ड हेवर्ट की इस चेतावनी पर कि यह आधारभूत रूप से महत्वपूर्ण है कि न्याय न केवल किया जाना चाहिए बल्कि प्रकटतः और निसंदिग्ध रूप से किया गया दिखाई भी देना चाहिए, पूर्णतः असारवान् आधारों पर और वस्तुतः कुछ मामलों में पक्षपात के सारहीन बहानों के आधार पर दोषसिद्धियों को अभिखंडित करने या आदेशों को अविधिमान्य बनाने के लिए आज्ञा के रूप में जोर दिया जा रहा है । लार्ड हेवर्ट द्वारा बलपूर्वक दोहराए गए सिद्धांत की अक्षुण्णता बनाए रखते हुए यह न्यायालय यह महसूस करता है कि इसे ऐसे मामलों में लगातार उद्धृत करने के परिणामस्वरूप, जिन्हें यह लागू नहीं होता है, यह भ्रामक धारणा उत्पन्न हो सकती है कि यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि न्याय किया गया प्रतीत होना चाहिए बजाए इसके कि वह वास्तव में किया जाना चाहिए ।" (जोर देने के लिए रेखांकित)

30. **मैट्रोपोलिटन प्रापर्टीज़ (एफ.जी.सी.) लिमिटेड** बनाम **लेन्नन**[1] वाले मामले में अपील न्यायालय ने संदेह की कसौटी लागू की और प्रभावी सिद्धांत के रूप में "न्याय आवश्यक रूप से किया गया दिखाई देना चाहिए" पर जोर दिया ।

---

[1] (1969) 1 क्यू. बी. 577.

31. **आर.** बनाम **गफ**[1] वाले मामले में हाउस ऑफ लार्ड्स ने 'वास्तविक खतरा' अभिव्यक्ति का प्रयोग करके 'वास्तविक संभाव्यता' की कसौटी लागू की । लार्ड गौफ द्वारा दिए गए महत्वपूर्ण भाषण के दो प्रभागों को नीचे उद्धृत किया जाता है :–

> "मेरी राय में, यदि (न्यायालय द्वारा यथा-अभिनिश्चित) मामले की परिस्थितियों से यह प्रकट होता है कि किसी अवर अधिकरण के न्यायमूर्ति या किसी अन्य सदस्य की ओर से वास्तविक संभावना के आशय से पक्षपात करने की वास्तविक संभाव्यता थी तो न्याय की दृष्टि से यह अपेक्षित है कि विनिश्चय को कायम नहीं रहने देना चाहिए । मैं किसी भी प्रकार से इस बात से सहमत नहीं हूं कि मूल रूप में वास्तविक संभाव्यता की कसौटी के लिए यह अपेक्षित था कि कोई और कठोर मापदंड अपनाया जाना चाहिए । इसके अलावा, इस प्रकार कथित कसौटी प्रकट पक्षपात के मामलों में इस सिद्धांत को पर्याप्त प्रभाव प्रदान करती है कि न्याय प्रकट रूप से किया गया दिखाई देना चाहिए और मेरी राय में मात्र संदेह या उस प्रयोजनार्थ युक्तियुक्त संदेह पर आधारित कसौटी का अवलंब लेना अनावश्यक है ।"

> "मैं निष्कर्ष के तौर पर विधि के संबंध में अपने बोध को निम्नलिखित रूप में अभिव्यक्त करना चाहता हूं । मैं यह संभव और वांछनीय समझता हूं कि प्रकट पक्षपात के सभी मामलों में एक ही कसौटी लागू की जानी चाहिए चाहे उसका संबंध न्यायमूर्तियों या अन्य अवर अधिकरणों के सदस्यों या जूरी के सदस्यों या मध्यस्थों से हो । इसी प्रकार, मैं यह समझता हूं कि जूरी के सदस्यों से संबंधित मामलों में, उस न्यायाधीश द्वारा जिसका ध्यान विचारण के अनुक्रम में किसी जूरी सदस्य की ओर से पक्षपात किए जाने की संभाव्यता की ओर आकृष्ट किया गया था और अपील न्यायालय द्वारा, जब वह अपील में इस प्रकार पर विचार करता है, यही कसौटी अपनाई जानी चाहिए । इसके अलावा, मैं ऐसी कोई समुचित कसौटी तैयार करना अनावश्यक समझता हूं जिसमें यह अपेक्षित हो कि न्यायालय को मामले का परिशीलन किसी युक्तियुक्त व्यक्ति की दृष्टि से करना चाहिए क्योंकि न्यायालय ऐसे मामलों में युक्तियुक्त व्यक्ति को

---

[1] (1993) अपील केसेज़ 646.

साकार करता है; और न्यायालय को हर हालत में सबसे पहले उपलब्ध साक्ष्य से सुसंगत परिस्थितियों का और उस जानकारी का पता लगाना होता है जो सुसंगत समय पर किसी प्रेक्षक को उपलब्ध होनी आवश्यक नहीं है । अंततः, शंका के परिवर्जन के लिए, मैं यह सुनिश्चित करने के लिए कि न्यायालय पक्षपात की संभावना न कि अधिसंभाव्यता के अनुसार विचार कर रहा है, कसौटी का वर्णन वास्तविक संभाव्यता की बजाय वास्तविक खतरे के अनुसार करना चाहता हूं । तदनुसार, सुसंगत परिस्थितियों का पता लगाने के पश्चात्, न्यायालय को इस बात पर विचार करना चाहिए कि क्या उन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, प्रश्नगत अधिकरण के संबद्ध सदस्य की ओर से इस आशय से पक्षपात बरतने का वास्तविक खतरा था कि वह उसके विचाराधीन आने वाले विषय के पक्षकार के मामले में अनुचित रूप से पक्षपात कर सकता है (या अनुचित रूप से ध्यान रखा है) या अननुकूल विचार कर सकता है । (जोर देने के लिए रेखांकित)

32. **आर.** बनाम **बो स्ट्रीट मैट्रोपोलिटन स्टाइपेंडरी मजिस्ट्रेट और अन्य एक्सपार्टे पिनोचेट उगार्टे (सं. 2)** (उपर्युक्त) वाले मामले में हाउस ऑफ लाड्र्स ने इस प्रश्न पर विचार किया कि क्या इस तथ्य के आधार पर कि हाउस आफ लाड्र्स का एक सदस्य, जो अमनेस्टी इंटननेशनल चैरिटी लिमिटेड का निदेशक और अध्यक्ष था, उस अपील में की कार्यवाहियों में पक्षकार बनने के लिए अपात्र था जिसमें अमनेस्टी इंटरनेशनल को मध्यक्षेप करने की इजाजत प्रदान की गई थी । उस मामले में, सीनेटर अगस्तो पिनोचेट उगार्टे ने हाउस ऑफ लाड्र्स के उस विनिश्चय को अपास्त करने के लिए आवेदन किया था जिसके द्वारा मैट्रोपोलिस के पुलिस आयुक्त और स्पेन सरकार की अपील मंजूर की गई थी और क्वीन्स बेंच खंड न्यायलय के उस विनिश्चय को अपास्त कर दिया गया था जिसके द्वारा याची की गिरफ्तारी के लिए जारी किया गया अनंतिम वारंट अभिखंडित कर दिया गया था । जिस आधार पर विनिश्चय का पुनर्विलोकन करने की ईप्सा की गई थी वह यह था कि लार्ड हाफमैन जिससे हाउस ऑफ लाड्र्स का बहुमत गठित हुआ था, पक्षपातपूर्ण था क्योंकि वह अमनेस्टी इंटरनेशनल चैरिटी लिमिटेड का निदेशक और अध्यक्ष था । लार्ड ब्राउने विल्किन्सन ने, जिससे न्यायपीठ के अन्य सदस्य सहमत थे, यह उल्लेख किया कि न तो सीनेटर पिनोचेट और न ही उसके विधिक सलाहकारों को मुख्य मामले में

तारीख 25 नवम्बर, 1998 को निर्णय सुनाए जाने और क्वीन्स बैंच खंड न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई अपील तीन-दो के बहुमत द्वारा मंजूर किए जाने तक लार्ड हाफमैन और अमेनस्टी इंटरनेशनल के बीच किसी संबंध की जानकारी थी । निर्णय के पश्चात् लार्ड हाफमैन और उसकी पत्नी का अमनेस्टी इंटरनेशनल और उसके संघटकों के साथ संबंध प्रकट हुआ था । लार्ड ब्राउने विल्किन्सन ने यह उल्लेख किया कि इस संबंध में कोई अभिकथन नहीं किया गया था कि इस बात का वास्तविक खतरा या युक्तियुक्त आशंका या संदेह था कि लार्ड हाफमैन पूर्वाग्रह से ग्रस्त हो सकते थे और इस प्रकार मत व्यक्त किया :–

> "मूल सिद्धांत यह है कि कोई व्यक्ति अपने ही मामले में स्वयं निर्णायक नहीं हो सकता है । न्यायालयों द्वारा यथा-विकसित इस सिद्धांत की दो काफी समरूप किन्तु असमान विवक्षाएं हैं । प्रथमतः इसे अक्षरशः लागू किया जा सकता है: यदि कोई न्यायाधीश वास्तव में मुकदमेबाजी में पक्षकार है या उस मुकदमेबाजी के निर्णय में उसका वित्तीय या सांपत्तिक हित है तो वह वास्तव में अपने ही मामले में न्यायाधीश के रूप में आसीन होता है । उस दशा में, मात्र यह तथ्य कि वह कार्रवाई में पक्षकार है या उसके परिणाम में उसका कोई वित्तीय या सांपत्तिक हित है, उसकी स्वतः निरर्हता कारित करने के लिए पर्याप्त है । इस सिद्धांत का दूसरा उपयोजन यह है कि जहां कोई न्यायाधीश वाद में पक्षकार नहीं है और उसके परिणाम में उसका कोई वित्तीय हित नहीं है किन्तु किसी और तरीके से उसके आचरण या व्यवहार से, उदाहरणार्थ, किसी पक्षकार के साथ उसकी मित्रता होने के कारण यह संदेह उत्पन्न हो सकता है कि वह निष्पक्ष नहीं है । यह दूसरे प्रकार की स्थिति यथार्थ रूप से इस सिद्धांत को लागू करना नहीं है कि कोई व्यक्ति स्वयं अपने मामले में निर्णायक नहीं होना चाहिए चूंकि इसमें न्यायाधीश सामान्य रूप से स्वयं को फायदा नहीं पहुंचा रहा होगा बल्कि निष्पक्ष न होकर किसी अन्य व्यक्ति को फायदा पहुंचा रहा होगा ।
>
> मेरे निर्णयानुसार, यह मामला मामले के प्रथम प्रवर्ग के अंतर्गत आता है, अर्थात्, जहां न्यायाधीश इसलिए अपात्र हो जाता है क्योंकि वह स्वयं अपने मामले में निर्णायक है । ऐसी दशा में, जब यह दर्शित कर दिया जाता है कि न्यायाधीश स्वयं मामले में पक्षकार है या उसकी विषयवस्तु में उसका सुसंगत हित है तो इस संबंध में कोई

जांच किए बिना वह अपात्र हो जाता है कि क्या पक्षपात की कोई संभावना या संदेह है अथवा नहीं । उसके हित से संबंधित मात्र तथ्य ही उसे अपात्र बनाने के लिए तब तक पर्याप्त है जब तक कि उसने पर्याप्त प्रकटन न किया हो । देखिए शेट्रीट जजेज़ ऑन ट्रायल (1976) पृ. 303 और डि स्मिथ, वूल्फ एंड जोवैल ज्युडिशियल रिव्यू ऑफ एडमिनिस्ट्रेटिव एक्शन (पांचवा संस्करण 1995) पृ. 525. मैं इसे 'स्वतः निरर्हता' कहूंगा ।

* * * *

प्रस्तुत मामले में इस मुद्दे का यही महत्व है । न तो ए. आई. और न ही ए. आई. सी. एल. का इस मुकदमेबाजी के परिणाम में कोई वित्तीय हित है । इस मामले में हमें एक नई स्थिति का सामना करना पड़ रहा है, जैसी कि लार्ड हाफमैन के समक्ष थी, जहां कि मुकदमेबाजी के परिणाम से किसी को भी वित्तीय फायदा नहीं पहुंचा था । मुकदमेबाजी में ए. आई. का हित वित्तीय नहीं था; उसका हित सीनेटर पिनोचेट की मुकदमा चलाने और मानवता के विरुद्ध अपराधों के लिए संभावित दोषसिद्धि में था ।

इस अपील में हस्तक्षेप करने की ईप्सा करके और इस प्रकार हस्तक्षेप करने की अनुज्ञा दिए जाने के कारण ए. आई. व्यावाहारिक रूप से इस अपील में एक पक्षकार बना । अतः, यदि इन परिस्थितियों में लार्ड हाफमैन को ए. आई. का परिपूर्ण अनुकल्प और इसलिए स्वयं अपने मामले में न्यायाधीश मानना सही है तो उसे इन आधारों पर स्वतः हट जाना चाहिए था कि वह अपील में एक पक्षकार है । अनुकल्पतः, भले ही यह कहना सही न हो कि लार्ड हाफमैन अपील में इस प्रकार एक पक्षकार था, तब प्रश्न यह उद्‌भूत होता है कि क्या गैर-वित्तीय मुकदमेबाजी में परिणाम के तौर पर वित्तीय या सांपत्तिक हित से भिन्न कोई बात किसी व्यक्ति को उस मामले में न्यायाधीश के रूप में आसीन होने से स्वतः हट जाने के लिए पर्याप्त है ।

क्या तथ्य ऐसे हैं कि जो यह अपेक्षा करते हैं कि लार्ड हाफमैन को इस अपील में स्वयं पक्षकार के रूप में माना जाए ? तथ्य आश्चर्यजनक तथा अप्रायिक हैं । इस अपील में एक पक्षकार अनिगमित एसोसिएशन, ए. आई. है । उस अनिगमित एसोसिएशन के संघटकों में से एक संघटक ए. आई. सी. एल. है । ए. आई. सी. एल. की स्थापना ए. आई. के कृत्यों के उस भाग को कार्यान्वित

करने के लिए - वे भाग जो कि पूर्त थे - जो कि इससे पूर्व स्वयं ए. आई. द्वारा या ए. आई. एल. द्वारा किए जाते थे, कर प्रयोजनों के लिए की गई थी । लार्ड हाफमैन ए. आई. सी. एल. का निदेशक और अध्यक्ष है, जिस पर ए. आई. का संपूर्ण नियंत्रण है क्योंकि उसके सभी सदस्य (जो कि अंततोगत्वा उसका नियंत्रण करते हैं) ए. आई. की अंतरराष्ट्रीय कार्यपालक समिति के सदस्य हैं । ए. आई. के कार्य का एक बड़ा भाग, यथार्थ विधि की दृष्टि से, ए. आई. सी. एल. द्वारा किया जाता है जो कि ए. आई. एल. को उसकी ओर से कार्य करने के अनुदेश देती है । वास्तव में, ए. आई., ए. आई. सी. एल. और ए. आई. एल. परस्पर-जुड़ा हुआ एक ऐसा समूह है जो कि ए. आई. के कार्य करता है ।

तथापि, ये संबंध जितने घनिष्ठ हैं उनसे मैं यह नहीं समझता हूं कि लार्ड हाफमैन को व्यक्तिगत रूप से इस अपील में एक पक्षकार समझना सही है । वह ए. आई. के साथ निकट से जुड़ा हुआ अवश्य है किन्तु वास्तव में वह ए. आई. नहीं है । यद्यपि, यह एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें विधिक बारीकियों से विशेष रूप से बचा जाना चाहिए तथापि, इस बात को अनदेखा नहीं किया जा सकता है कि लार्ड हाफमैन ने ए. आई. को चलाने में कोई भूमिका नहीं निभाई । लार्ड हाफमैन, ए. आई. सी. एल. और ए. आई. की कार्यपालक समिति विधि की दृष्टि से पृथक्-पृथक् हैं ।

तब क्या यह ऐसा मामला है जिसमें यह कहा जा सकता है कि लार्ड हाफमैन का ऐसा 'हित' था जिसके परिणामस्वरूप उसकी स्वतः निरर्हता हो जानी चाहिए ? अब तक केवल धनीय और सांपत्तिक हितों के परिणामस्वरूप स्वतः निरर्हता हुई है । किन्तु, जैसा कि मैंने उपदर्शित किया है, यह मुकदमेबाजी काफी अप्रायिक है । यह सिविल मुकदमेबाजी नहीं है बल्कि दांडिक मुकदमेबाजी है । ए. आई. को मध्यक्षेप करने के लिए अनुज्ञात करने पर अत्यधिक अप्रायिक रूप से दांडिक वाद या मामले में एक ऐसा पक्षकार है जो कि न तो अभियोजक है और न ही अभियुक्त । उस पक्षकार, ए. आई. का, स्पेन और सी. पी. एस. की सरकार के बीच वित्तीय हित नहीं है बल्कि यह स्थापित करने का हित है कि मानवता के विरुद्ध अपराधों के संबंध में राज्य के भूतपूर्व अध्यक्षों को उन्मुक्ति प्राप्त न हो । इन पक्षों का हित सीनेटर पिनोचेट का प्रत्यर्पण और विचारण सुनिश्चित

करना है - जो कि एक गैर-धनीय हित है । जहां तक ए. आई. सी. एल. का संबंध है, ज्ञापन के खंड (ग) में यह उपबंध है कि उसके उद्देश्यों में से एक उद्देश्य यंत्रणा, न्यायेतर निष्पादन और लोप का उत्सादन उपाप्त करना है । ए. आई. के अन्य उद्देश्यों के साथ-साथ वही उद्देश्य हैं । यद्यपि ए. आई. सी. एल., पूर्त कार्य के रूप में विधि में परिवर्तन करने का अभियान नहीं चला सकती, उसका संबंध अन्य माध्यमों से मानवता के विरुद्ध इन अपराधों का उत्सादन उपाप्त करना है । अतः, हमारी राय में, ए. आई. सी. एल. का यह सिद्ध करने संबंधी एक गैर-धनीय हित था कि सीनेटर पिनोचेट उन्मुक्त नहीं था ।

इस स्थिति को देखते हुए प्रश्न यह है कि क्या इस मामले की अत्यंत अप्रायिक परिस्थितियों में कोई विशिष्ट परिणाम प्राप्त करने के लिए गैर-धनीय हित स्वतः हट जाने के लिए पर्याप्त है और यदि ऐसा है तो क्या इस तथ्य से कि ए. आई. सी. एल. का ऐसा कोई हित था, आवश्यक रूप से यह निष्कर्ष निकलता है कि ए. आई. सी. एल. के निदेशक के रूप में लार्ड हाफमैन अपील की सुनवाई करने से स्वतः हट गए थे ? मेरे निर्णयानुसार, यद्यपि इन मामलों में धनीय हित के आधारों पर स्वतः निरर्हता के संबंध में विचार किया गया है तथापि, सिद्धांततः स्वतः निरर्हता को इस प्रकार सीमित करने का कोई उचित कारण नहीं है । संपूर्ण नियम का तर्काधार यह है कि कोई व्यक्ति स्वयं अपने वाद में निर्णायक नहीं हो सकता है । सिविल मुकदमेबाजी में, विवादग्रस्त मामलों में सामान्यतया कोई आर्थिक प्रभाव अवश्य होगा इसलिए कोई न्यायाधीश तब स्वतः अपात्र हो जाता है यदि उस मामले में स्वयं अपने ही विनिश्चय के परिणामस्वरूप उसे कोई वित्तीय लाभ होता है । किन्तु, जैसा कि प्रस्तुत मामले में है, यदि विवादग्रस्त विषय का संबंध धन या आर्थिक लाभ से नहीं है किन्तु वह हेतुक के संवर्धन से संबंधित है तो किसी न्यायाधीश को अपात्र करने का तर्काधार केवल तभी लागू होता है यदि न्यायाधीश के विनिश्चय के परिणामस्वरूप किसी ऐसे हेतुक का संवर्धन होता है जिसमें किसी एक पक्षकार सहित वह न्यायाधीश भी अंतर्वलित है । इस प्रकार, मेरी राय में, यदि लार्ड हाफमैन ए. आई. का सदस्य होता तो वह यह साबित करने संबंधी अपने गैर-धनीय हित के कारण स्वतः अपात्र हो जाता कि सीनेटर पिनोचेट उन्मुक्ति का हकदार नहीं था । वास्तव में, जितना मैंने समझा है उसे श्री डफी ने

स्वीकार कर लिया है ।

क्या इससे कोई अंतर पड़ सकता है कि लार्ड हाफमैन सीधे ए. आई. का सदस्य होने की बजाय ए. आई. सी. एल. का, अर्थात् ऐसी कंपनी का निदेशक है जो कि संपूर्णतः ए. आई. के नियंत्रणाधीन है और उसका अधिकांश कार्य कर रही है ? निश्चित रूप से इससे कोई अंतर नहीं पड़ता है । मामले का सार यह है कि ए. आई., ए. आई. एल. और ए. आई. सी. एल. सभी एक ऐसी इकाई या आंदोलन के विभिन्न अंग हैं जो एकसमान उद्देश्यों के लिए भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में कार्य कर रहे हैं । यदि न्यायपालिका की पूर्ण निष्पक्षता को बनाए रखना है तो ऐसा नियम अवश्य ही होना चाहिए जो किसी ऐसे न्यायाधीश को स्वतः अपात्र बना देता है, जो व्यक्तिगत रूप से या किसी कंपनी के निदेशक के रूप में उसी संगठन में एकसमान हेतुकों का संवर्धन करने में अंतर्वलित है जैसे कि वाद में का कोई पक्षकार होता है । यदि मुख्य न्यायमूर्ति लार्ड हेवर्ट की प्रसिद्ध उक्ति का अवलोकन किया जाता है तो सूक्ष्म विभेद करने की कोई गुंजाइश नहीं रहती है : मूलभूत रूप से यह महत्वपूर्ण है कि न्याय न केवल किया जाना चाहिए बल्कि वह प्रकटतः और निसंदिग्ध रूप से किया गया दिखाई भी देना चाहिए । (जोर देने के लिए रेखांकित)

33. **मेडिकामेंट्स एंड रिलेटेड क्लासिज़ ऑफ गुड्स (सं. 2)** (उपर्युक्त) वाले मामले में अपील न्यायालय ने निम्नलिखित मताभिव्यक्तियां करते हुए अवरोधक व्यवहार न्यायालय के विनिश्चय को पक्षपात के वास्तविक खतरे के आधार पर अपास्त कर दिया :–

"..... न्यायालय को सर्वप्रथम उन सभी परिस्थितियों का पता लगाना था जिनका संबंध इस सुझाव से था कि न्यायाधीश पक्षपातपूर्ण था और उसके बाद यह पता लगाना चाहिए था कि क्या उन परिस्थितियों के परिणामस्वरूप कोई युक्तिमान और जानकार प्रेक्षक यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि इस बात की वास्तविक संभावना या कोई वास्तविक खतरा था, जो कि दोनों एक ही हैं, कि न्यायाधीश पक्षपाती था; यह कि तात्विक परिस्थितियों में आक्षेपित न्यायाधीश द्वारा उसे उन परिस्थितियों की जानकारी होने या उनका अधिमूल्यन करने के बारे में दिया गया कोई स्पष्टीकरण शामिल था और जहां ऐसे किसी स्पष्टीकरण के बारे में विवाद किया गया था वहां पुनर्विलोकन न्यायालय को यह आदेश नहीं करना था कि वह स्पष्टीकरण स्वीकार

किया जाए या अस्वीकार कर दिया जाए किन्तु इसके विपरीत यह विनिश्चित करना था कि युक्तिमान प्रेक्षक यह समझेगा कि दिए गए स्पष्टीकरण के होते हुए भी पक्षपात का वास्तविक खतरा था; यह कि न्यायालय को यह अवधारण करने की बजाय कि क्या 'आर' का कथन सही था, इस बात पर विचार करना चाहिए था कि उसके आचरण का, जिसमें उसके लिए उसका स्पष्टीकरण भी शामिल है, किसी युक्तिमान प्रेक्षक पर क्या असर होगा; यह कि ऐसे प्रेक्षक को इस बात पर विश्वास नहीं करना चाहिए था कि 'आर' के भविष्य में किसी समय फर्म के लिए कार्य करने की सभी संभावनाएं नष्ट हो गई थीं या यह कि उसे सम्यक् अनुक्रम में उनके लिए कार्य करने की अभी कोई आशा नहीं हो सकती थी; यह कि उन परिस्थितियों में, युक्तिमान प्रेक्षक यह आशंका करेगा कि इस बात का वास्तविक खतरा था कि 'आर' फर्म द्वारा न्यायालय के समक्ष रखे गए विशेषज्ञीकृत साक्ष्य का वस्तुनिष्ठ और निष्पक्ष मूल्यांकन करने में असमर्थ होगी; और यह कि तदनुसार, 'आर' को अपने आप को हटा लेना चाहिए था और न्यायालय के अन्य सदस्यों को हट जाना चाहिए ।"

34. इस प्रकार, यह सुव्यक्त है कि आंग्ल न्यायालयों ने इस बात का विनिश्चय करने के लिए भिन्न-भिन्न मापदंड लागू किए कि क्या गैर-धनीय पक्षपात से न्यायिक या न्यायिककल्प विनिश्चय दूषित हो जाएंगे । अनेक न्यायाधीशों ने यह अभिनिर्धारित करते हुए वास्तविक संभाव्यता के फार्मूले को अधिकथित और लागू किया है कि निरर्हता के लिए कसौटी यह है कि क्या न्यायालय द्वारा यथा-निर्धारित तथ्यों से पक्षपात की वास्तविक संभाव्यता उद्भूत होती है । अन्य न्यायाधीशों ने इस बात पर जोर देते हुए 'युक्तियुक्त संदेह' की कसौटी लागू की है कि न्याय किया गया अवश्य प्रकट होना चाहिए और किसी व्यक्ति को किसी भी प्रकार से तब न्यायनिर्णयन नहीं करना चाहिए यदि युक्तियुक्त रूप से यह सोचा जा सकता है कि किसी व्यक्तिगत हित के कारण उसे कार्य नहीं करना चाहिए । दक्षिणी अफ्रीका की संविधान पीठ ने **प्रेज़ीडेंट आफ दि रिपब्लिक आफ साउथ अफ्रीका** बनाम **साउथ अफ्रीकन रगबी फुटबाल यूनियन**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित करते समय कि यह सिद्ध करने का भार अपीलार्थी पर था कि न्यायालय के सदस्यों द्वारा मामले से हट जाने के

[1] (1999) 4 एस. ए. 147.

लिए आधार था, निम्नलिखित महत्वपूर्ण मताभिव्यक्तियां कीं :–

> ".....प्रश्न यह है कि क्या कोई युक्तिसंगत, वस्तुनिष्ठ और जानकार व्यक्ति सही तथ्यों के आधार पर युक्तियुक्त रूप से यह आशंका करेगा कि न्यायाधीश ने मामले का न्यायनिर्णयन करते समय निष्पक्ष भाव से विचार नहीं किया है या वह ऐसा नहीं करेगा, अर्थात्, ऐसा भाव जो साक्ष्य और काउन्सेल की दलीलों से प्रतीति कराने वाला है । आशंका की युक्तियुक्तता का निर्धारण न्यायाधीशों द्वारा भय या पक्षपात के बिना न्याय करने के संबंध में ली गई पद की शपथ और उनके प्रशिक्षण और अनुभव के आधार पर उस शपथ का पालन करने संबंधी उनकी सक्षमता को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए । यह धारणा अवश्य की जानी चाहिए कि वे किसी असंगत व्यक्तिगत विश्वास या प्रवृत्ति के कारण अपने भाव को भ्रमित कर सकते हैं । उन्हें इस तथ्य को अवश्य ही ध्यान में रखना चाहिए कि किसी ऐसे मामले पर विचार-विमर्श करना उनका कर्तव्य है जिसमें वे स्वयं अपात्र होने के लिए बाध्य नहीं हैं । इसके साथ-साथ, यह भी सर्वथा नहीं भूलना चाहिए कि ऋजु विचारण के लिए निष्पक्ष न्यायाधीश का होना एक मूलभूत पूर्वापेक्षा है और किसी न्यायिक अधिकारी को स्वयं हटने से हिचकिचाना नहीं चाहिए यदि किसी मुकदमेबाज की ओर से यह आशंका करने के युक्तियुक्त आधार हैं कि वह न्यायिक अधिकारी, किन्हीं भी कारणों से निष्पक्ष नहीं था या नहीं होगा ।"

आस्ट्रेलिया के उच्च न्यायालय ने एक भिन्न दृष्टिकोण अपनाया है, जैसा कि **जॉनसन** बनाम **जॉनसन**[1] वाले मामले में सात न्यायाधीशों की न्यायपीठ के निर्णय से प्रकट होता है । अपील के पक्षकारों का विवाह नवम्बर, 1979 में हुआ था । उनका विवाह वर्ष 1996 में विघटित हो गया था । न्यायमूर्ति एंडरसन के समक्ष कार्यवाहियां ऐसे विघटन के परिणामस्वरूप किए जाने वाले वित्तीय इंतज़ामों के संबंध में उत्पन्न विवाद से उद्भूत हुईं । उसमें पर्याप्त धनराशि दांव पर थी । यह अभिनिर्धारित किया गया था कि उस मामले में, जैसा कि पूर्ण न्यायालय द्वारा वर्णित किया गया था, एक आस्ति पूल था जिसका मूल्य लगभग 30 मिलियन डालर था । न्यायमूर्ति एंडरसन ने यह विनिश्चित किया कि प्रत्यर्थी (पत्नी) को उस पूल का 40 प्रतिशत

---

[1] (2000) 174 आस्ट्रेलियन ला रिपोर्ट्स 655.

मिलना चाहिए । विचारण में, जो कि 66 दिनों तक चला, विवाद के प्रमुख क्षेत्रों में से एक क्षेत्र का संबंध अपीलार्थी की आस्तियों की सीमा से था, विशेषकर इस संबंध में था कि क्या वह अन्य व्यक्तियों और इकाइयों के स्वामित्वाधीन अपतट आस्तियों में लाभप्रद रूप से हितबद्ध था । उस विवाद की विस्तार से चर्चा करना अनावश्यक है । जो कुछ महत्वपूर्ण है वह यह है कि विचारण में प्रत्यर्थी इस बात पर जोर दे रही थी और अपीलार्थी उससे इनकार कर रहा था कि अपीलार्थी विभिन्न आस्तियों में लाभप्रद रूप से हितबद्ध था और तथ्य संबंधी उस विवाद की छानबीन करने में सुनवाई का काफी समय लग गया । सुनवाई के बीसवें दिन, न्यायमूर्ति एंडरसन ने एक टिप्पणी की जिसके परिणामस्वरूप अपीलार्थी के काउन्सेल द्वारा यह आवेदन फाइल किया गया कि उसे स्वयं को हटा लेना चाहिए । न्यायमूर्ति एंडरसन ने उस आवेदन से इनकार कर दिया । कुटुम्ब न्यायालय के पूर्ण न्यायालय ने उसके विनिश्चय को कायम रखा । न्यायपीठ के पांच सदस्यों ने मुख्य न्यायमूर्ति ग्लीसन के माध्यम से निर्णय सुनाते हुए आस्ट्रेलिया में यह अवधारित करने के लिए लागू की गई कसौटी के प्रति निर्देश किया कि क्या कोई न्यायाधीश पक्षपातपूर्ण होने के आभास के कारण अपात्र था, अर्थात्, क्या कोई निष्पक्ष साधारण प्रेक्षक युक्तियुक्त रूप से यह आशंका कर सकता है कि न्यायाधीश उस प्रश्न के समाधान के लिए, जिसे विनिश्चित किया जाना अपेक्षित है, निष्पक्ष और पूर्वाग्रह-रहित मन से विचार नहीं करे और इंग्लैंड में लागू की गई कसौटी से विचलन करने के लिए निम्नलिखित कारण दिए :–

> "वह कसौटी भिन्न रूप से अभिव्यक्त इंग्लैंड में अपनाई गई कसौटी के मुकाबले वरीयता देते हुए इस कारण अपनाई गई है कि यह इस मूल सिद्धांत को सम्यक् मान्यता देती है कि न्याय अवश्य ही किया जाना चाहिए और किया गया दिखाई भी देना चाहिए । यह न्याय प्रशासन में लोक विश्वास की आवश्यकता पर आधारित है । 'यदि निष्पक्ष व्यक्ति युक्तियुक्त रूप से यह आशंका या संदेह करते हैं कि अधिकरण ने मामले का पूर्वनिर्णय कर लिया है तो उन्हें उसके विनिश्चय में विश्वास नहीं हो सकता है ।' इस बात पर जोर देने के लिए कि कसौटी वस्तुनिष्ठ है, यह पूर्वधारणा की जाती है कि न्यायाधीश के आचरण का परिकल्पित युक्तियुक्त अवलोकन किया जाए और यह न्यायपालिका में लोक विश्वास की आवश्यकता पर आधारित है न कि पूर्णतः कुछ न्यायाधीशों द्वारा अपने सहकर्मियों की

क्षमता या उनके कार्यप्रदर्शन का अवधारण करने पर आधारित है । इसके साथ-साथ दो बातों को ध्यान में रखने की आवश्यकता है : प्रेक्षक युक्तिसंगत है और प्रेक्षणाधीन व्यक्ति 'एक वृत्तिक न्यायाधीश है जिसके प्रशिक्षण, परम्परा और शपथ या प्रतिज्ञान के आधार पर उससे (न्यायाधीश से) यह अपेक्षा की जाती है कि वह असंगत, अतात्विक और प्रतिकूल बातों का त्याग करे ।'

न्यायमूर्ति किर्बी ने अपनी पृथक् राय में **आर.** बनाम **गफ** (उपर्युक्त) वाले मामले तथा **आर.** बनाम **स्ट्रीट मैट्रोपोलिटन स्टाइपेंडरी मजिस्ट्रेट और अन्य, एक्सपार्टे पिनोचेट उगार्टे (सं. 2)** (उपर्युक्त) वाले मामले के निर्णयों के प्रति भी निर्देश किया और निम्न प्रकार मत व्यक्त किया :–

"यह नैसर्गिक न्याय का 'मूल नियम' और 'हमारी विधिक पद्धति का स्थायी परिमाण' है कि प्रत्येक न्यायनिर्णायक पक्षपात से मुक्त होना चाहिए । इसी सिद्धांत को मानवाधिकारों की अंतरराष्ट्रीय विधि में स्वीकार किया गया है जो इस न्यायालय द्वारा इस संभावना के प्रति अपनाए गए चौकस दृष्टिकोण का समर्थन करती है कि कोई न्यायनिर्णायक निष्पक्ष नहीं हो सकता है । इस प्रकार अंतरराष्ट्रीय सिविल और राजनैतिक अधिकार प्रसंविदा के अनुच्छेद 14.1 में, जो कि अंतरराष्ट्रीय विधि की सुसंगत अपेक्षाओं पर विचार करने का आरंभिक बिन्दु है, यह कहा गया है :–

न्यायालयों और अधिकरणों के समक्ष सभी व्यक्ति समान होंगे । प्रत्येक व्यक्ति, अपने विरुद्ध किसी दांडिक आरोप का या विधि संबंधी किसी वाद में उसके अधिकारों और उसकी बाध्यताओं का अवधारण करने के लिए विधि द्वारा स्थापित सक्षम, स्वतंत्र और निष्पक्ष अधिकरण द्वारा निष्पक्ष और लोक सुनवाई का हकदार होगा ।

करत्तुनेन **बनाम** फिनलैंड वाले मामले में उस अनुच्छेद को स्पष्ट करते हुए संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार समिति ने यह निष्कर्ष निकाला कि किसी न्यायालय की निष्पक्षता से –

..... यह विवक्षित होता है कि न्यायाधीशों को अपने समक्ष रखे गए मामले के बारे में पूर्वधारणाएं नहीं बनानी चाहिए ... उन्हें ऐसे तरीकों से कार्य नहीं करना चाहिए जिससे किसी एक पक्षकार के हित का संवर्धन होता हो... ऐसा विचारण, जो किसी ऐसे न्यायाधीश के भाग लेने के कारण दोषपूर्ण है, जिसे देशी कानूनों के अधीन

अपात्र करार कर दिया जाना चाहिए था, सामान्यतया अनुच्छेद 14 के अर्थान्तर्गत ऋजु और निष्कर्ष नहीं समझा जा सकता है ।

न्याय का प्रकटीकरण - ऐसा अपेक्षाकृत कड़ा दृष्टिकोण अपनाने के लिए, जिसे हाल ही के वर्षों में इस न्यायालय में समर्थन मिला है, सामान्य रूप से दिया जाने वाला कारण यह है कि इससे न केवल न्याय की वास्तविकता (अर्थात्, न्यायनिर्णायक ने वास्तव में उस मामले में के विवाद्यकों के संबंध में पूर्णनिर्णय कर लिया था अथवा नहीं) बल्कि पक्षकारों और समुदाय दोनों को निष्पक्षता का आभास कराने के लिए विधि द्वारा संलग्न महत्व को भी प्रतिबिंबित करता है । लोक नीति के दृष्टिकोण से अपेक्षाकृत कड़ा दृष्टिकोण अपनाने के लिए व्यावहारिक आधार अपील न्यायालय की न्याय प्रशासन की शुद्धता का प्रतिवाद करने संबंधी बाध्यता और उसके परिणामस्वरूप इस पद्धति में समुदाय के विश्वास को कायम रखने में अंतर्निहित होता है । लार्ड डेनिंग, एम. आर. के शब्दों में, 'न्याय की जड़ें विश्वास में होनी चाहिए ; और विश्वास तब ध्वस्त हो जाता है जब बुद्धिमान व्यक्ति यह सोचने लगते हैं : 'न्यायाधीश पक्षपातपूर्ण था'।" (जोर देने के लिए रेखांकित)

35. भारत में, न्यायालयों ने यह विनिश्चिय करने के लिए व्यापक रूप से वास्तविक संभाव्यता की कसौटी अपनाई है कि न्यायिक या न्यायिककल्प निकाय का कोई विशिष्ट विनिश्चय पक्षपात के कारण दूषित है अथवा नहीं । **मानक लाल** बनाम **डा. प्रेम चन्दर सिंघवी** (उपर्युक्त) वाले मामले में निम्न प्रकार मत व्यक्त किया गया था :–

"अधिकरण का प्रत्येक ऐसा सदस्य जो न्यायिक या न्यायिककल्प कार्यवाहियों में के विवाद्यकों का विचारण करता है, न्यायिक दृष्टि से कार्य करने में समर्थ होना चाहिए; और न्यायिक विनिश्चयों और न्यायिक प्रशासन का सार यह है कि न्यायाधीश निष्पक्षतापूर्वक वस्तुनिष्ठ रूप से और किसी पक्षपात के बिना कार्य करने में समर्थ होना चाहिए । ऐसे मामलों में कसौटी यह नहीं होती कि वास्तव में पक्षपात के कारण निर्णय प्रभावित हुआ है अथवा नहीं; कसौटी सदैव यह होती है और होनी चाहिए कि कोई मुकदमेबाज युक्तिसंगत रूप से यह आशंका कर सकता था अथवा नहीं कि अधिकरण के किसी सदस्य द्वारा किया जा सकने वाले पक्षपात अधिकरण के अंतिम विनिश्चय में उसके विरुद्ध प्रवर्तित हो सकता

था । इसी अर्थ में ही प्रायः यह कहा जाता है कि न्याय न केवल किया जाना चाहिए बल्कि किया गया प्रतीत भी होना चाहिए ।"

36. **ए. के. केराइपक** बनाम **भारत संघ** (उपर्युक्त) वाले मामले में भारतीय वन सेवा में नियुक्ति के लिए चयन के संदर्भ में पक्षपात के नियम पर कुछ विस्तार से चर्चा की गई थी । यद्यपि नकीशबन्द, जो कि अखिल भारतीय वन सेवा में चयन के लिए एक अभ्यर्थी था और चयन बोर्ड का एक सदस्य भी था, उस समय चयन बोर्ड में नहीं बैठा था जिस समय उसके नाम पर विचार किया गया था किन्तु उसने उसकी चर्चा में उस समय भाग लिया था जब अन्य अभ्यर्थियों के नामों पर, जो कि उसके प्रतिद्वंदी थी, विचार किया गया था । न्यायालय द्वारा जिन दो महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार किया गया था वे ये थे कि क्या ऐसे मामलों में जिनमें लोक प्राधिकारियों द्वारा प्रशासनिक शक्ति का प्रयोग करना अंतर्वलित होता है, नैसर्गिक न्याय के नियम लागू होते थे और क्या चयन पक्षपात के कारण दूषित था । न्यायालय ने दोनों प्रश्नों का उत्तर सकारात्मक दिया । न्यायालय ने दूसरे प्रश्न का उत्तर देते समय यह उल्लेख किया कि यद्यपि नकीशबन्द ने समिति की चर्चा में उस समय भाग नहीं लिया था जब उसके नाम पर विचार किया गया था किन्तु वह तब उपस्थित था जब उसके प्रतिद्वंदियों के दावों पर विचार किया गया था और निम्न प्रकार मत व्यक्त किया :–

> "चयन बोर्ड की चर्चाओं में भाग लेने के प्रत्येक प्रक्रम पर उसके हित और उसके कर्तव्य के बीच संघर्ष था । उन परिस्थितियों में, यह विश्वास करना कठिन है कि वह निष्पक्ष रह सकता था । वास्तविक प्रश्न यह है कि क्या वह पक्षग्राही थी । किसी व्यक्ति की मानसिक स्थिति को साबित करना कठिन होता है । इसलिए हमें यह देखना है कि क्या यह विश्वास करने का युक्तियुक्त आधार है कि उसका पक्षग्राही होना संभाव्य था । ... पक्षग्रहण का प्रश्न विनिश्चित करते समय हमें मानवीय अधिसंभाव्यता और मानव आचरण के साधारण क्रम पर भी विचार करना है ।"

37. **एस. पार्थसारथी** बनाम **आन्ध्र प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में न्यायमूर्ति मैथ्यु ने 'वास्तविक संभावना' की कसौटी लागू की और विचारण न्यायालय द्वारा पारित डिक्री को प्रत्यावर्तित किया जिसके कारण अपीलार्थी

---

[1] [1973] 3 उम. नि. प. 1256 = (1974) 3 एस. सी. सी. 459.

की दंडस्वरूप की गई अनिवार्य सेवानिवृत्ति अविधिमान्य हो गई । न्यायमूर्ति मैथ्यु ने निर्णय के पैरा 16 में निम्न प्रकार मत व्यक्त किया :–

> "..... हमारा यह विचार है कि पुनर्विलोकन करने वाले प्राधिकारी को अपने समक्ष के संपूर्ण साक्ष्य के आधार पर ही अवधारण करना चाहिए कि क्या कोई युक्तिमान व्यक्ति ऐसी परिस्थितियों में यह अनुमान लगाएगा कि पक्षपात की वास्तविक संभावना है । न्यायालय को उस प्रभाव को देखना चाहिए जो अन्य लोगों पर पड़ा हो । इस सिद्धांत का यह अर्थ हुआ कि न्याय केवल किया ही नहीं जाना चाहिए अपितु यह प्रतीत होना चाहिए कि न्याय किया गया है । यदि कोई युक्तिमान व्यक्ति यह सोचे कि जांच अधिकारी की ओर से पक्षपातपूर्ण व्यवहार करने की वास्तविक संभावना है तो उसे जांच नहीं करनी चाहिए तथापि, पक्षपात की वास्तविक संभावना अवश्य होनी चाहिए । केवल आशंका का अनुमान ही पर्याप्त नहीं होगा । ऐसी परिस्थितियां विद्यमान होनी चाहिएं जिन्हें युक्तिमान व्यक्ति अधिसंभाव्य या संभाव्य समझे कि जांच अधिकारी का अपराधी के प्रति पक्षपातपूर्ण व्यवहार होगा । न्यायालय यह जांच नहीं करेगा कि वास्तव में उसका व्यवहार पक्षपातपूर्ण था या नहीं । यदि विद्यमान परिस्थितियों के आधार पर कोई युक्तिमान व्यक्ति यह समझे कि अधिकारी का पक्षपातपूर्ण होना संभाव्य है तो यह विनिश्चय को अभिखंडित करने के लिए पर्याप्त होगा ।....."

38. **डॉक्टर जी. सरन** बनाम **लखनऊ विश्वविद्यालय** (उपर्युक्त) वाले मामले में न्यायालय ने **ए. के. केराइपक** बनाम **भारत संघ** (उपर्युक्त) और **एस. पार्थसारथी** बनाम **आन्ध्र प्रदेश राज्य** (उपर्युक्त) वाले निर्णयों के प्रति निर्देश किया और निम्न प्रकार मत व्यक्त किया :–

> "..... वास्तविक प्रश्न यह नहीं है कि क्या किसी प्रशासनिक बोर्ड का सदस्य न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करते समय अथवा न्यायिकवत् कृत्यों का निर्वहन करते समय पक्षपातपूर्ण था क्योंकि यह साबित करना कठिन है कि किसी व्यक्ति के मस्तिष्क में क्या है । यहां देखना यह है कि क्या यह विश्वास करने के लिए युक्तियुक्त आधार है कि उसके बारे में यह अधिसंभाव्य था कि वह पक्षपातपूर्ण रहा है । पक्षपात के प्रश्न का विनिश्चय करते समय मानविक अधिसंभाव्यताओं और साधारण अनुक्रम में मानव आचरण पर विचार-विमर्श करना होगा ।....."

39. **अशोक कुमार यादव** बनाम **हरियाणा राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने इस बात पर जोर देते समय कि **ए. के. केराइपक** (उपर्युक्त) वाला मामला प्रशासनिक विधि के विकास में एक महत्वपूर्ण निर्णय है और उसने विधिसम्मत शासन को मजबूत करने में व्यापक योगदान किया है, ऐसे मामलों में महत्वपूर्ण विचलन किया है जिनमें लोक सेवा आयोगों द्वारा चयन किया जाना अंतर्वलित है । यह सब निर्णय के पैरा 18 से स्पष्ट है, जिसे नीचे उद्धृत किया जाता है :–

> "निश्चय ही हमें तुरंत यह कहना चाहिए कि ए. के. केराइपक वाला मामला प्रशासनिक विधि के विकास में एक महत्वपूर्ण निर्णय है और इसने इस देश में विधिसम्मत शासन को सुदृढ़ बनाने में बहुत योगदान दिया है । हम इस विनिश्चय में अधिकथित महत्वपूर्ण सिद्धांत को किंचित भी खंडित करना नहीं चाहेंगे । इस विनिश्चय ने विधिशासन की जड़ें पक्की की हैं और विधिकता में न्याय एवं निष्पक्षता का समावेश किया है । इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि यदि योग्यता के आधार पर अभ्यर्थियों का चयन करने के लिए किसी चयन समिति का गठन किया जाए और चयन समिति का एक सदस्य चयन के लिए उपस्थित होने वाले किसी अभ्यर्थी का निकट संबंधी हो तो ऐसे सदस्य के लिए इतना ही काफी नहीं होगा कि वह अपने नातेदार अभ्यर्थी के साक्षात्कार में भाग न ले बल्कि उसे समस्त चयन कार्यवाही से पूर्णरूपेण अलग रहना होगा और चयन समिति पर अपने स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति को नामनिर्दिष्ट करने के लिए प्राधिकारियों से कहना होगा क्योंकि अन्यथा सभी चयन, चयन प्रक्रिया को प्रभावित करने वाली अभिनति की युक्तियुक्त संभावना के फलस्वरूप दूषित हो जाएंगे । किन्तु यहां की स्थिति कुछ भिन्न है क्योंकि हरियाणा सिविल सेवा (कार्यपालक) और संबद्ध सेवाओं में अभ्यर्थियों का चयन इस प्रयोजन के लिए गठित किसी चयन समिति द्वारा नहीं किया गया है बल्कि यह हरियाणा लोक सेवा आयोग द्वारा किया गया है जो कि संविधान के अनुच्छेद 316 के अधीन स्थापित आयोग है । यह एक ऐसा आयोग है, जिसमें अध्यक्ष और विनिर्दिष्ट संख्या में सदस्य हैं और एक सांविधानिक प्राधिकरण है । हम नहीं समझते कि इस सिद्धांत के अनुसार यह अपेक्षित है कि किसी चयन

---

[1] [1985] 3 उम. नि. प. 1061 = (1985) 4 एस. सी. सी. 417.

समिति के सदस्य को, जिसका निकट संबंधी चयन के लिए हाजिर हो रहा है, चयन समिति का सदस्य होने से इनकार कर देना चाहिए या अपने स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति को नामनिर्देशित करने के लिए नियुक्ति प्राधिकारी पर छोड़कर उससे अलग हट जाना चाहिए, केन्द्रीय या राज्य लोक सेवा आयोग जैसे सांविधानिक प्राधिकरण की स्थिति में लागू नहीं किया जाना चाहिए । यदि लोक सेवा आयोग का कोई सदस्य इस आधार पर चयन प्रक्रिया से पूर्णतः अलग हो जाए कि उसका कोई निकट संबंधी चयन के लिए हाजिर हो रहा है, तो उसके स्थान पर उस सदस्य के सिवाय कोई दूसरा व्यक्ति नहीं लिया जा सकता । कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है कि कोई अन्य सदस्य ऐसे सदस्य की जगह लेने के लिए उपलब्ध न हो और इससे लोक सेवा आयोग के काम पर प्रभाव पड़े । जब लोक सेवा आयोग के दो या अधिक सदस्य मौखिक परीक्षा लेते हैं तो वे व्यष्टिक हैसियत में कार्यवाही नहीं करते बल्कि लोक सेवा आयोग की हैसियत में कार्य करते हैं । निस्संदेह, हमें यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि जब लोक सेवा आयोग के किसी सदस्य का निकट संबंधी साक्षात्कार के लिए हाजिर हो तो ऐसा सदस्य उस अभ्यर्थी के साक्षात्कार में भाग न ले और उस अभ्यर्थी की योग्यता के संबंध में किसी भी चर्चा में भाग न ले बल्कि यहां तक कि उस अभ्यर्थी को दिए गए अंक या श्रेय भी उसके सामने प्रकट न किए जाएं ।" (जोर देने के लिए रेखांकित)

40. वास्तविक संभाव्यता की कसौटी पुनः **रणजीत ठाकुर** बनाम **भारत संघ** (उपर्युक्त) वाले मामले में लागू की गई थी । उस मामले में, अपीलार्थी ने अपनी सेवा से पदच्युति को इस आधार पर चुनौती दी थी कि इससे सेना अधिनियम, 1950 की धारा 130 में अंतर्विष्ट उपबंध का अतिक्रमण होता है । उस मामले के तथ्य ये थे कि अपीलार्थी के बारे में, जो कि पहले ही 28 दिन का कठोर कारावास भोग रहा था, यह कहा गया था कि उसने एक अन्य अपराध कारित किया है जिसके लिए उसे समरी सेना न्यायालय के समक्ष पेश किया गया और उसे सेवा से पदच्युत कर दिया गया था । प्रत्यर्थी सं. 4, जिसने अपीलार्थी को पहले दंडित किया था, सेना अधिनियम, 1950 की धारा 130 के निबंधनानुसार समरी सेना न्यायालय का एक सदस्य था । अपीलार्थी समरी सेना न्यायालय में प्रत्यर्थी सं. 4 की उपस्थिति के संबंध में आक्षेप करने का हकदार था किन्तु उसे यह अवसर प्रदान नहीं किया गया था । अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई रिट

याचिका उच्च न्यायालय द्वारा संक्षिप्त रूप से खारिज कर दी गई थी । इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि धारा 130 की आज्ञा का अतिक्रमण ऋजु विचारण की संकल्पना के प्रतिकूल है और उसे बदनाम करने वाला है । इसके बाद, न्यायालय ने इस प्रश्न पर विचार किया कि क्या प्रत्यर्थी सं. 4 अपीलार्थी के विरुद्ध पक्षपातपूर्ण हो सकता था और निम्न प्रकार मत व्यक्त किया :–

> "पूर्वाग्रह की वास्तविक संभावना की कसौटी यह है कि क्या सुसंगत सूचना का कब्जाधारी कोई युक्तिमान व्यक्ति यह सोचता कि पूर्वाग्रह की संभावना है और क्या ऐसी संभावना थी कि किसी विशेष रूप से ही मामले का विनिश्चय करने की ओर प्रत्यर्थी सं. 4 का रूझान है ।
>
> किसी निर्णय का सारतत्व यह है कि वह न्यायिक प्रक्रिया का सम्यक् पालन करने के पश्चात् किया जाए - यह कि उसे पारित करने वाला न्यायालय या अधिकरण कम से कम नैसर्गिक न्याय की न्यूनतम अपेक्षाओं का पालन करे और उसका गठन ऋजुतापूर्वक, पूर्वाग्रह से मुक्त होकर और सद्भाव से कार्य करने वाले निष्पक्ष व्यक्तियों से हुआ हो । कोई ऐसा निर्णय जो पूर्वाग्रह का परिणाम हो अथवा जिसमें निष्पक्षता का अभाव हो, अकृतता और अधिकारिता विहीन विचारण है ।
>
> पूर्वाग्रह की संभावना की कसौटियों की बाबत जो चीज़ सुसंगत है वह संबंधित पक्षकार के मस्तिष्क में उस बारे में होने वाली आशंका की युक्तियुक्तता है । न्यायाधीश के लिए, चाहे वह कितना ही ईमानदार क्यों न हो, अपने ही मस्तिष्क को देखना और स्वयं से यह पूछना कि क्या मैं पूर्वाग्रह से ग्रस्त हूं, उचित मार्ग नहीं है, बल्कि उसके लिए उचित मार्ग यह है कि वह अपने समक्ष आए पक्षकार के मस्तिष्क को देखें ।"

41. **सचिव, परिवहन विभाग, मद्रास सरकार, मद्रास** बनाम **मुन्नुस्वामी मुदलियार और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने इस प्रश्न पर विचार किया कि क्या माध्यस्थम् करार का कोई पक्षकार किसी नामित मध्यस्थ को इस आधार पर बदलने की ईप्सा कर सकता था कि मध्यस्थ

---

[1] [1989] 2 उम. नि. प. 207 = (1988) सप्ली. एस. सी. सी. 651.

राज्य सरकार का एक कर्मचारी होने के कारण वह विवाद का विनिश्चय पूर्वाग्रह के बिना करने में समर्थ नहीं होगा । इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय के उस निर्णय को उलटते हुए जिसके द्वारा नगर सिविल न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीश के उस आदेश को पुष्ट किया गया था जिसमें किसी अन्य व्यक्ति को मध्यस्थ के रूप में नियुक्त करने का निदेश दिया गया था, निम्न प्रकार मत व्यक्त किया :–

> "किसी युक्तिमान व्यक्ति के मन में युक्तियुक्त आशंका मध्यस्थ को हटाए जाने का आधार हो सकती है । एक पक्षकार के पक्ष में अथवा उसके विरुद्ध विनिश्चय करने की पूर्वानुकूलता (प्रवणता) जिसमें विवाद के सही गुणागुण पर समुचित रूप से विचार न किया जाए, पक्षपात है । उस प्रवणता की युक्तियुक्त आशंका अवश्य होनी चाहिए । युक्तियुक्त आशंका अकाट्य सामग्री पर आधारित होनी चाहिए । इस संबंध में मस्टिल एंड बायड कृत, कमर्शियल आर्बिट्रेशन, 1982 संस्करण, पृष्ठ 214 पर उनकी मताभिव्यक्तियों का अवलोकन करें । हाल्सबरीज़ लॉज़ ऑफ इंग्लैंड, चौथा संस्करण, जिल्द 2, पैरा 551, पृष्ठ 282 पर यह उल्लेख है कि पक्षपात के लिए कसौटी यह है कि क्या ऐसा कोई युक्तियुक्त रूप से बुद्धिमान व्यक्ति, जिसे सभी परिस्थितियों का पूर्ण ज्ञान हो, पक्षपात की गंभीर आशंका महसूस करेगा ।" (जोर देने के लिए रेखांकित)

42. **बिहार राज्य खनिज विकास निगम** बनाम **एनकॉन बिल्डर्स (इंडिया) (प्राइवेट) लिमिटेड**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने करार के ऐसे उपबंध के संदर्भ में पक्षपात के नियम को लागू किया जिसके द्वारा अपीलार्थी के प्रबंध निदेशक को करार को समाप्त करने और मध्यस्थ के रूप में कार्य करने के लिए सशक्त किया गया था । इस न्यायालय ने इस नियम को लागू किया कि कोई व्यक्ति स्वयं अपने मामले में निर्णायक नहीं हो सकता है और निम्न प्रकार मत व्यक्त किया :–

> "वास्तविक पक्षपात के परिणामस्वरूप स्वतः निरर्हता उद्भूत हो जाएगी जहां विनिश्चय करने वाले के बारे में यह दर्शित होता है कि उसका मामले के परिणाम में हित है । वास्तविक पक्षपात ऐसे मध्यस्थ को द्योतित करता है जो पक्षपात या पूर्वाग्रह द्वारा विनिश्चय को प्रभावित होने देता है और इसके परिणामस्वरूप मुकदमेबाज़ को किसी

---

[1] [2003] 7 एस. सी. सी. 418.

निष्पक्ष अधिकरण द्वारा ऋजु विचारण किए जाने संबंधी उसके मूल अधिकार से वंचित करता है ।"

43. पूर्वोक्त विनिश्चयों से जो सिद्धांत उद्भूत होते हैं वे ये हैं कि कोई भी व्यक्ति स्वयं अपने मामले में निर्णायक नहीं हो सकता है और न्याय न केवल किया जाना चाहिए बल्कि प्रकट रूप से किया गया दिखाई भी देना चाहिए । तराजू न केवल संतुलित होना चाहिए बल्कि वह झुका हुआ दिखाई भी नहीं देना चाहिए । किसी ऐसे व्यक्ति को, जिसका हेतुक की विषयवस्तु में हित है, न्यायाधीश के रूप में कार्य करने से प्रविरत किया गया है । मुकदमे की विषयवस्तु में हित होने के आधार पर किसी व्यक्ति को न्यायनिर्णयन करने से निरर्हित करने के लिए पक्षपात की वास्तविक संभाव्यता की कसौटी लागू की जानी है । दूसरे शब्दों में, इस बात का पता लगाया जाना चाहिए कि उस व्यक्ति की ओर से पक्षपात किए जाने का वास्तविक खतरा है जिसके विरुद्ध ऐसी आशंका इस आशय से व्यक्त की गई है कि वह किसी पक्षकार के पक्ष या विपक्ष में जा सकता है । प्रत्येक मामले में, न्यायालय को इस बात पर विचार करना होता है कि क्या कोई युक्तिमान और जानकार व्यक्ति समस्त तथ्यों पर विचार करने के पश्चात् युक्तियुक्त रूप से यह आशंका करेगा कि न्यायाधीश निष्पक्ष रूप से कार्य नहीं करेगा । दूसरे शब्दों में, कसौटी यह होगी कि क्या युक्तियुक्त रूप से बुद्धिमान ऐसे व्यक्ति को जो समस्त तथ्यों से पूर्णतः अवगत है, पक्षपात किए जाने की गंभीर आशंका होगी । गैर-धनीय पक्षपात के मामलों में, "युक्तियुक्त संदेह" की कसौटी के मुकाबले "वास्तविक संभाव्यता" की कसौटी को अधिमानता दी गई है और न्यायालयों ने निरन्तर यह अभिनिर्धारित किया है कि पक्षपात के प्रश्न का विनिश्चय करते समय मानवीय अधिसंभाव्यताओं और मानवीय आचरण के सामान्य अनुक्रम को विचार में रखना होता है । हम यह भी जोड़ना चाहते हैं कि पक्षपात की वास्तविक संभाव्यता न केवल शिकायतकर्ता-पक्षकार द्वारा अभिनिश्चित सामग्री से बल्कि ऐसे अन्य तथ्यों से भी प्रकट होनी चाहिए, जो वह आसानी से अभिनिश्चित कर सकता था और जिन्हें युक्तियुक्त जांच करके सत्यापित किया जा सकता था ।

44. हाल्सबरीज़ लाज़ ऑफ इंग्लैंड [जिल्द 29(2) चौथा संस्करण पुनर्निर्गमन 2002, पैरा 560 पृष्ठ 379] में प्रकट पक्षपात के कारण निरर्हता की कसौटी को निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट किया गया है :-

"560. **प्रकट पक्षपात के कारण निरर्हता की कसौटी** – प्रकट

पक्षपात के सभी मामलों में लागू कसौटी, चाहे उसका संबंध न्यायमूर्तियों, अवर अधिकरणों के सदस्यों, जूरी सदस्यों या मध्यस्थों से है, यह है कि क्या सुसंगत परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, प्रश्नगत अधिकरण के सुसंगत सदस्य की ओर से इस आशय से पक्षपात किए जाने की वास्तविक संभावना है कि वह अपने विचाराधीन विवाद के किसी एक पक्षकार के मामले का अनुचित रूप से पक्ष ले सकता है या उसके विपक्ष में जा सकता है । इस प्रश्न पर विचार करते समय उन सभी परिस्थितियों पर विचार किया जाना चाहिए जिनका संबंध इस सुझाव से है कि न्यायाधीश या न्यायमूर्ति पक्षपातपूर्ण है । प्रश्न यह है कि क्या युक्तिमान और जानकार प्रेक्षक तथ्यों पर विचार करने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुंचेगा कि इस बात की वास्तविक संभावना है कि अधिकरण पक्षपातपूर्ण था । ऐसे मामले पैदा हो सकते हैं जिनमें सभी न्यायमूर्ति पक्षपात के प्रकटीकरण से प्रभावित हों, उदाहरणार्थ, जहां साथी न्यायमूर्ति या न्यायमूर्ति के लिपिक किसी अपराध से आरोपित हों ; जहां ऐसा होता है वहां यह सिफारिश की गई है कि एक अन्य अधीनस्थ सत्र खंड में से न्यायमूर्तियों को उस मामले में कार्यवाही करनी चाहिए या यदि वह अपराध अभ्यारोपणीय है तो उसे किसी जूरी द्वारा विचारण करने के लिए सुपुर्द किया जाना चाहिए ।

अधिकांश मामलों में न्यायालय द्वारा इस बात की जांच न किए जाने के कारण कि वास्तविक पक्षपात विद्यमान है अथवा नहीं, यह उक्ति लागू की जाती है कि न्याय न केवल किया जाना चाहिए बल्कि वह किया गया दिखाई भी देना चाहिए और न्यायालय सभी उपलब्ध सामग्री की परीक्षा करके और इस संबंध में निष्कर्ष निकालकर कि पक्षपात की वास्तविक संभावना है अथवा नहीं, इस उक्ति को प्रभावी करता है ।....."

45. उपरोक्त को दृष्टिगत करते हुए अब हम इस बात पर विचार करेंगे कि क्या याची पूर्वाग्रह के नियम का अवलंब ले सकता और तारीख 24 अप्रैल, 2011 के आदेश को और समिति द्वारा आयोजित अन्य कार्यवाहियों को इस आधार पर अविधिमान्य करार करने की ईप्सा कर सकता है कि प्रत्यर्थी सं. 3 उसके विरुद्ध पक्षपातपूर्ण और पूर्वाग्रह से ग्रस्त है और इसलिए उसे अधिनियम की धारा 3(2) के अधीन समिति का सदस्य नहीं बनाया जा सकता था । इस संबंध में कोई विवाद नहीं है कि

प्रत्यर्थी सं. 3 ने बार एसोसिएशन ऑफ इंडिया द्वारा आयोजित सेमीनार में भाग लिया, जिसका वह उपाध्यक्ष था । उसने याची के इस न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में प्रोन्नयन से पूर्व उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों के संबंध में सार्वजनिक जांच करने की मांग की थी । इस सेमीनार के दौरान अनेक प्रख्यात अधिवक्ताओं ने इस आधार पर याची के प्रस्तावित प्रोन्नयन के विरुद्ध भाषण दिया कि उसके विरुद्ध गंभीर अभिकथन लगाए गए थे । इसके पश्चात्, प्रत्यर्थी सं. 3 ने याची के इस न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में प्रोन्नयन का विरोध करते हुए एक संकल्प का प्रारूप तैयार किया । वह अन्य प्रख्यात वकीलों के साथ भारत के तत्कालीन मुख्य न्यायमूर्ति से मिला । इन तथ्यों से किसी बुद्धिमान व्यक्ति के मन में यह आशंका उत्पन्न हो सकती है कि प्रत्यर्थी सं. 3 के पक्षपातपूर्ण होने की संभावना थी । एक युक्तिमान, वस्तुनिष्ठ और जानकार व्यक्ति यह कह सकता है कि प्रत्यर्थी सं. 3 को याची के प्रोन्नयन का विरोध न किया होता यदि उसका यह समाधान न हो गया होता कि उसके विरुद्ध लगाए गए अभिकथनों में कुछ सार है । यह सही है कि न्यायाधीशों और वकीलों को वस्तुनिष्ठ बनने और भूसी में से अन्न, झूठ में से सच निकालने की क्षमता रखने का प्रशिक्षण दिया जाता है और हमें इस संबंध में कोई संदेह नहीं है कि प्रत्यर्थी सं. 3 के पास ये योग्यताएं हैं । हम समिति से भी इस बारे में सहमत हैं कि दोनों ओर से किया गया आक्षेप संभवतः किसी और बात के अलावा, "एकमात्र रूप से उसकी निष्पक्षता पुष्ट करने के लिए पर्याप्त है" । तथापि, प्रत्यर्थी सं. 3 के पक्षपातपूर्ण होने संबंधी विवाद को इस न्यायालय या उस विषय में समिति के दृष्टिकोण से नहीं देखा जाना है । इसे एक युक्तिमान, वस्तुनिष्ठ और जानकार व्यक्ति के दृष्टिकोण से देखा जाना है । वह कौन-सी राय बनाएगा । उसकी आशंका ही सर्वोपरि रूप से महत्वपूर्ण है । निर्णय के पूर्ववर्ती भाग में वर्णित तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रत्यर्थी सं. 3 के विरुद्ध पक्षपात की संभाव्यता संबंधी याची की आशंका युक्तियुक्त है न कि काल्पनिक हालांकि वास्तव में वह पक्षपातपूर्ण नहीं भी हो सकता है ।

46. अगला प्रश्न जिस पर विचार किए जाने की आवश्यकता है, यह है कि समिति द्वारा तारीख 24 अप्रैल, 2011 को पारित आदेश प्रत्यर्थी सं. 3 के पक्षपातपूर्ण होने की युक्तियुक्त संभाव्यता के आधार पर अभिखंडित किया जाना चाहिए । इस विवाद्यक को विनिश्चित करते समय हमें यह ध्यान में रखना होगा कि याची कोई साधारण व्यक्ति नहीं है । वह

विधि में निपुण है और वह विधिक रूप से प्रशिक्षित विवेक रखता है । इसके अलावा, याची ने पिछले 15 वर्षों से न्यायाधीश और उसके बाद उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति के सांविधानिक पद धारण किए हैं । याची ने यह अभिवचन नहीं किया था कि उसे बार एसोसिएशन ऑफ इंडिया द्वारा आयोजित सेमीनार के बारे में जानकारी नहीं थी जिसमें प्रख्यात अधिवक्ताओं ने भाग लिया था, जिनमें दो पूर्ववर्ती महाधिवक्ता भी थे और जिसमें प्रत्यर्थी सं. 3 ने इस न्यायालय में उसके प्रोन्नयन का विरोध करते हुए भाषण दिया था और उक्त प्रयोजनार्थ संकल्प का प्रारूप भी तैयार किया था । उस सेमीनार की कार्यवाहियों का प्रिंट और इलेक्ट्रानिक मीडिया में व्यापक प्रचार हुआ । अतः, यह कहा जा सकता है कि याची को समिति के गठन से बहुत पहले इस तथ्य का पता चल गया था कि प्रत्यर्थी सं. 3, जिसने याची के अपने कथनानुसार, न्यायालय में उसके कार्य की सराहना की थी और जब कालेजिम द्वारा इस न्यायालय में प्रोन्नयन के लिए उसके नाम को मंजूरी दी गई थी, उसे बधाई संदेश भी भेजा था, उस सेमीनार में भाग लिया था और उसके प्रोन्नयन का विरोध करते हुए भाषण दिया था और उक्त प्रयोजनार्थ संकल्प का प्रारूप भी तैयार किया था । सभापति ने प्रत्यर्थी सं. 3 के प्रख्यात अधिवक्ता के रूप में लंबे अनुभव और सांविधानिक विधि के क्षेत्र में उसकी विशेषज्ञता को ध्यान में रखते हुए उसे समिति का सदस्य नियुक्त किया था । समिति का गठन तारीख 15 जनवरी, 2010 के शासकीय राजपत्र में अधिसूचित किया गया था और लगभग सभी समाचारपत्रों द्वारा इसका व्यापक रूप से प्रचार किया गया था । अतः, युक्तियुक्त रूप से यह धारणा की जा सकती है कि याची को जनवरी, 2010 मास में उस समिति के गठन के बारे में पता चल गया था, जिसमें प्रत्यर्थी सं. 3 भी शामिल था । उसने तारीख 12 मई, 2010 के अपने अभ्यावेदन में यह दावा किया था कि समिति के गठन और संरचना के बारे में उसे प्रिंट और इलेक्ट्रानिक मीडिया के माध्यम से पता चला । इस प्रकार, कम से कम तारीख 12 मई, 2010 को उसे इस बात की पूरी तरह जानकारी थी कि प्रत्यर्थी सं. 3 को समिति के सदस्य के रूप में नियुक्त किया गया था । इस बात के होते हुए भी उसने प्रकटतः इस कारण कोई आक्षेप नहीं उठाया था क्योंकि तारीख 6 दिसम्बर., 2009 को प्रत्यर्थी सं. 3 से मिलने के पश्चात् याची ने इस संबंध में संतुष्ट अनुभव किया कि उक्त प्रत्यर्थी उसके विरोध में नहीं है । अतः, याची द्वारा किया गया यह विलंबित अभिवाक् स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है कि बार एसोसिएशन ऑफ इंडिया द्वारा आयोजित बैठक में उसकी सक्रिय भागीदारी

के कारण प्रत्यर्थी सं. 3 के बारे में यह समझा जाएगा कि वह उसके विरुद्ध पक्षपातपूर्ण है । यह उल्लेख करना भी महत्वपूर्ण है कि प्रत्यर्थी सं. 3 का याची से व्यक्तिगत रूप से कोई विरोध नहीं है । उसने उस सेमीनार में एसोसिएशन के उपाध्यक्ष के रूप में भाग लिया । विधिज्ञ-वर्ग के ज्येष्ठ सदस्यों द्वारा, जिसमें प्रत्यर्थी सं. 3 भी है, याची के प्रोन्नयन के मामले में, जिसके बारे में यह अभिकथित किया गया है कि उसने न्यायाधीश के रूप में और उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति के रूप में अपनी हैसियत का धनीय लाभ के लिए दुरुपयोग किया था, दर्शाई गई चिन्ता परवर्ती हेतुक से प्रेरित नहीं थी । उन्होंने वास्तव में यह महसूस किया कि याची के विरुद्ध लगाए गए अभिकथनों की जांच की जानी आवश्यक है । यह दर्शित नहीं होता है कि प्रत्यर्थी सं. 3 ने सेमीनार के पश्चात् ऐसा कुछ किया जिससे युक्तियुक्त प्रज्ञा वाले किसी भी व्यक्ति को किंचित भी यह आभास हो सकता हो कि वह याची का विरोधी था । इसके विपरीत, याची के अपने कथनानुसार, वह प्रत्यर्थी सं. 3 से उसके निवास-स्थान पर तारीख 6 दिसम्बर, 2009 को मिला और उसे इस बात का विश्वास हो गया था कि प्रत्यर्थी सं. 3 उसके बिल्कुल भी विरोध में नहीं है । इस स्थिति के कारण याची के इस अभिवाक् को ग्रहण करना संभव नहीं है कि समिति के गठन को इस आधार पर अकृत किया जाना चाहिए कि प्रत्यर्थी सं. 3 उसके विरुद्ध पक्षपातपूर्ण है और तारीख 24 अप्रैल, 2011 का आदेश अभिखंडित किया जाना चाहिए ।

47. इस विवाद्यक पर एक अन्य दृष्टिकोण से विचार करने की आवश्यकता है । स्वीकृततः, याची ने पक्षपात का अभिवाक् तारीख 16 मार्च, 2011 की सूचना, जिसके साथ आरोपों का कथन और दस्तावेज़ों और साक्षियों की सूची संलग्न थी, प्राप्त करने के पश्चात् ही उठाया । याची का इस संबंध में लगभग दस मास की अवधि तक जानबूझकर चुप रहना प्रत्यर्थी सं. 3 की समिति के सदस्य के रूप में नियुक्ति संबंधी उसके आक्षेप की सद्भाविकता के विरुद्ध जाता है । याची जैसी हैसियत वाले किसी व्यक्ति से यह उपधारणा की जा सकती है कि उसे आक्षेप करने संबंधी अपने अधिकार की जानकारी है । यदि याची को किंचित भी यह आशंका थी कि प्रत्यर्थी सं. 3 ने उसकी दोषिता के बारे में पहले से निर्णय बना लिया था या वह अन्यथा पक्षपातपूर्ण था तो वह सर्वप्रथम उपलब्ध अवसर पर समिति के सदस्य के रूप में उसकी नियुक्ति के बारे में आक्षेप करता । याची तारीख 15 जनवरी, 2010 की अधिसूचना के प्रकाशन होने

के ठीक पश्चात् ऐसा कर सकता था । वह सभापति को यह अभ्यावेदन कर सकता था कि ऐसी समिति द्वारा, जिसमें प्रत्यर्थी सं. 3 एक सदस्य है, किया जाने वाले अन्वेषण ऋजु और निष्पक्ष नहीं होगा क्योंकि प्रत्यर्थी सं. 3 ने उसे पहले ही दोषी उपधारित कर लिया था । हम अभ्यावेदन के परिणाम की भविष्यवाणी नहीं कर सकते हैं किन्तु ऐसे अभ्यावेदन से सभापति को याची द्वारा की जाने वाली शिकायत पर विचार करने और उचित विनिश्चय करने का अवसर मिला होता, जैसा कि उसने मार्च, 2010 में किया था जब प्रत्यर्थी सं. 3 ने विधिज्ञ-वर्ग के एक भाग द्वारा की गई मांग के फलस्वरूप समिति से स्वयं को हटाने की ईप्सा की थी जिससे गलती से यह उपधारणा की गई थी कि याची ने प्रत्यर्थी सं. 3 से परामर्श किया था । तथापि, वस्तुस्थिति यह है कि याची ने यह कभी नहीं सोचा था कि प्रत्यर्थी सं. 3 उसके विरुद्ध पूर्वाग्रह से ग्रस्त है या विरोधी है और यही कारण है कि उसने अप्रैल, 2011 तक प्रत्यर्थी सं. 3 को समिति में शामिल किए जाने के विरुद्ध कोई आक्षेप नहीं किया था । इसके परिणामस्वरूप यह अप्रतिरोध्य निष्कर्ष निकलता है कि याची ने प्रत्यर्थी सं. 3 की समिति के सदस्य के रूप में नियुक्ति के संबंध में आक्षेप करने संबंधी अपने अधिकार का अधित्यजन कर दिया था । याची को समिति में प्रत्यर्थी सं. 3 की नियुक्ति के संबंध में आक्षेप करने के लिए उपलब्ध अधिकार उसका व्यक्तिगत अधिकार था और वह कभी भी उसका अधित्यजन कर सकता था ।

48. **लच्छू मल** बनाम **राधे श्याम**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने इस प्रश्न पर विचार किया कि मकान मालिक उत्तर प्रदेश (अस्थायी) किराया नियंत्रण और बेदखली अधिनियम, 1947 के अधीन उसे उपलब्ध छूट को करार द्वारा अधित्यक्त कर सकता है अथवा नहीं । उस मामले में, मकान मालिक ने अधिनियम के अधीन उसे उपलब्ध छूट को अधित्यक्त करने के लिए एक करार किया था । अधित्यजन के मुद्दे पर विचार करते समय, इस न्यायालय ने निम्न प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

> "सामान्य नियम यह है कि हर व्यक्ति को अपनी प्रसुविधा और संरक्षण के लिए बनाई गई विधि या नियम के फायदे को अपनी प्राइवेट हैसियत में अधित्यक्त करने या अधित्यक्त करने के लिए करार करने का अधिकार है और वह उसे किसी लोक अधिकार या

[1] [1971] 2 उम. नि. प. 199 = ए. आई. आर. 1971 एस. सी. 2213.

लोक नीति का अतिलंघन किए बिना छोड़ सकता है । इस प्रकार वह सिद्धांत वाक्य जिसमें कानूनी उपबंध के अननुपालन की मंजूरी दी गई है, कुइलिबेट लाइसेट रिनिन्सियेर जूरी प्रो सी इंट्रोडक्टो (हर व्यक्ति अपने पक्ष में सृजित अधिकार का परित्याग करने का हकदार है) है (मैक्सवेल ऑन इंटरप्रट्रेशन ऑफ स्टेट्यूट्स. 11वां संस्करण, पृष्ठ 375, 376 देखिए) । यदि उसमें संविदा करके किसी कानून से बाहर जाने के विरुद्ध कोई अभिव्यक्त प्रतिषेध हो तो किसी व्यक्ति के ऐसी संविदा करने का कोई प्रश्न नहीं उठता जो इस प्रकार प्रतिषिद्ध है किन्तु जहां ऐसा कोई प्रतिषेध नहीं है, वहां यह देखना होगा कि क्या किसी अधिनियम का आशय लोक नीति के मामले के रूप में अधिक विस्तृत प्रवर्तन रखना है । हाल्सबरी लॉज़ ऑफ इंग्लैंड, जिल्द 8, तृतीय संस्करण में पृष्ठ 143 में पैरा 248 में यह कहा गया है कि –

> "सामान्य नियम यह है कि कोई व्यक्ति पार्लियामेंट के किसी ऐक्ट द्वारा अपने को प्रदत्त अभिलाभों को अधित्यक्त करने के लिए आबद्धकारी संविदा कर सकता है अथवा यूं कहिए कि वह संविदा करके अपने को अधिनियम की परिधि से बाहर कर सकता है जब तक कि यह न दर्शित किया जा सके कि ऐसा करार विशिष्ट मामले की परिस्थितियों में लोक नीति के प्रतिकूल है । किन्तु कानूनी शर्तें ऐसी शब्दावली में अधिरोपित की जा सकती है कि वे करार द्वारा अधित्यक्त नहीं की जा सकतीं और कतिपय परिस्थितियों में विधानमंडल ने अभिव्यक्त रूप से उपबंध किया है कि ऐसा कोई करार शून्य होगा ।" (जोर देने के लिए रेखांकित)

49. **मानक लाल** बनाम **डा. प्रेम चन्द सिंघवी** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि अधिकरण का गठन पक्षपात के कारण दूषित था क्योंकि अधिकरण का अध्यक्ष किसी मामले में अपीलार्थी के विरुद्ध उपस्थित हुआ था किन्तु अधिकरण की सिफारिशों के आधार पर उसके विरुद्ध की गई कार्रवाई को अकृत करने से इस आधार पर इनकार कर दिया था कि उसके बारे में यह समझा जाएगा कि उसने पक्षपात के संबंध में आक्षेप करने संबंधी अपने अधिकार का अधित्यजन कर दिया है । उस मामले में की गई कुछ मताभिव्यक्तियां नीचे उद्धृत की जाती हैं :–

> ".....अधिकरण के किसी सदस्य का अभिकथित पूर्वाग्रह,

कार्यवाहियों को तब अविधिमान्य नहीं बना देता है यदि यह दर्शित कर दिया जाता है कि पक्षकार द्वारा प्रश्नगत सदस्य की उपस्थिति के विरुद्ध आक्षेप नहीं किया गया था हालांकि उस पक्षकार को उन परिस्थितियों की जानकारी थी, जिनके कारण अभिकथित पक्षपात के बारे में अभिकथन उद्भूत हुए थे और उसे अधिकरण में सदस्य की उपस्थिति को चुनौती देने संबंधी अपने अधिकार का भी पता था । यह सही है कि पक्षकार द्वारा मात्र आक्षेप करने में असफल हो जाने के कारण सदैव और प्रत्येक मामले में अधित्यजन का अनुमान नहीं लगाया जा सकता है । अधित्यजन के बारे में केवल तभी अनुमान लगाया जा सकता है यदि यह दर्शित कर दिया जाता है कि पक्षकार को सुसंगत तथ्यों की जानकारी थी और उसे प्रश्नगत आक्षेप करने संबंधी अपने अधिकार का पता था । जैसा कि सर जॉन रोमिल्ली, एम. आर. ने विवयन **बनाम** विवियन वाले मामले में मत व्यक्त किया है, "अधित्यजन या उपमति जैसे चयन, से यह पूर्वकल्पित होता है कि आबद्धकर व्यक्ति को अपने अधिकारों का पूर्ण संज्ञान था और ऐसा होते हुए वह उन्हें प्रवर्तित कराने में उपेक्षा बरतता है या एक फायदे की तुलना में दूसरे फायदे का, किन्तु उन दोनों फायदों का विकल्प नहीं करता है, जिनका वह दावा कर सकता है ।" यदि प्रस्तुत मामले में यह प्रतीत होता है कि अपीलार्थी को श्री छांगनी की अभिकथित निःशक्तता के बारे में सभी तथ्यों की जानकारी थी और उसे इस बात का भी पता था कि वह विद्वान मुख्य न्यायमूर्ति से प्रभावी रूप से यह अनुरोध कर सकता था कि वह श्री छांगनी की बजाय किसी अन्य सदस्य को नामनिर्दिष्ट करें और फिर भी उसने वह मार्ग नहीं अपनाया, तो हो सकता है कि उसने जानबूझकर यह अवसर लिया कि अधिकरण से अपने पक्ष में रिपोर्ट प्राप्त की जाए और जब उसे यह पता चला कि वह रिपोर्ट उसके विरुद्ध दी गई थी तो उसने अपने अधिकारों का प्रयोग करना बेहतर समझा और उच्च न्यायालय के समक्ष प्रथम बार यह मुद्दा उठाया । दूसरे शब्दों में, यद्यपि श्री दफ्तरी द्वारा अधिकरण की सक्षमता के विरुद्ध उठाया गया विधि संबंधी प्रश्न सही हो सकता है तथापि, हमारे लिए अब भी इस बात पर विचार करना आवश्यक है कि क्या अपीलार्थी को अधित्यजन या उपमति द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष यह मुद्दा उठाने से प्रविरत किया गया था ।

अभिलेख से यह स्पष्ट होता है कि अपीलार्थी ने अधिकरण के समक्ष यह मुद्दा कभी नहीं उठाया था और उसके द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष भी जिस रीति में यह मुद्दा उठाया गया था वह किंचित महत्वपूर्ण है । अपीलार्थी द्वारा अधिकरण की रिपोर्ट के विरुद्ध फाइल किए गए आक्षेप का पहला आधार यह था कि श्री छंगानी शिकायतकर्ता डा. प्रेम चन्द से धनीय और व्यक्तिगत रूप से हितबद्ध था । उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों ने यह निष्कर्ष निकाला कि प्रस्तुत कार्यवाहियों में श्री छंगानी के धनीय हित के बारे में किए गए अभिकथन पूर्णतः निराधार हैं और इस निष्कर्ष को हमारे समक्ष श्री दफ्तरी द्वारा चुनौती नहीं दी गई है । उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों ने यह निष्कर्ष भी निकाला कि अपीलार्थी द्वारा उनके समक्ष केवल नए सिरे से जांच के लिए और इस प्रकार समय लेने के लिए आदेश प्राप्त करने हेतु आक्षेप उठाया गया था । श्री दफ्तरी के पक्ष में यह स्वीकार किया जा सकता है कि वस्तुतः उच्च न्यायालय के निर्णय में अधित्यजन के आधार पर अपीलार्थी के विरुद्ध निष्कर्ष नहीं निकाला गया है हालांकि उनके निष्कर्ष के सार में कोई संदेह प्रतीत नहीं होता है । तथापि, हमने अधित्यजन के प्रश्न के संबंध में श्री दफ्तरी के पक्षकथन को सुना और हमें इस निष्कर्ष पर पहुंचने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि अपीलार्थी ने जानबूझकर अपने आक्षेप को अधित्यजन किया और उसे अब आक्षेप करने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है ।" (जोर देने के लिए रेखांकित)

50. **धीरेन्द्र नाथ गोरई** बनाम **सुधीर चन्द्र**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने इस प्रश्न पर विचार किया कि क्या बंगाल मनी लैंडर्स ऐक्ट, 1940 की संहिता की धारा 35 का अनुपालन किए बिना किया गया विक्रय अकृत था और क्या उस धारा के अतिक्रमण के संबंध में आक्षेप को अधित्यक्त किया जा सकता था । इस न्यायालय ने सुसंगत उपबंधों की परीक्षा करने के पश्चात्, निम्न प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

"अधित्यजन, किसी ज्ञात अधिकार का साशय त्यजन है किन्तु

[1] ए. आई. आर. 1964 एस. सी. 1300.

स्पष्टतः अधिकारिता संबंधी आक्षेप को अधित्यक्त नहीं किया जा सकता है, क्योंकि सम्मति किसी न्यायालय को वह अधिकारिता प्रदान नहीं कर सकती जो अधिकारिता उसे प्राप्त नहीं है । भले ही अंतर्निहित अधिकारिता विद्यमान हो, फिर भी कतिपय उपबंधों को अधित्यक्त नहीं किया जा सकता है । मैक्सवैल ने अपनी पुस्तक "ऑन द इंटरप्रट्रेशन ऑफ स्टेट्यूट्स", 11वां संस्करण, पृष्ठ 357 पर नियम को इस प्रकार वर्णित किया :–

> "एक अन्य उक्ति जो कानूनी उपबंध के अननुपालन की मंजूरी देती है, यह है कि कुइलिबेट लाइसेट रिनिन्सियेर जूरी प्रो सी इंट्रोडक्टो (हर व्यक्ति अपने पक्ष में सृजित अधिकार का परित्याग करने का हकदार है) । प्रत्येक व्यक्ति को अपनी प्रसुविधा और संरक्षण के लिए बनाई गई विधि या नियम के फायदे को अपनी प्राइवेट हैसियत में अधित्यक्त करने या अधित्यक्त करने के लिए करार करने का अधिकार है और वह उसे किसी लोक अधिकार या लोक नीति का अतिलंघन किए बिना छोड़ सकता है ।"

यही नियम क्रेज़ ऑन स्टेट्यूट लॉ, छठा संस्करण पृष्ठ 269 पर इस प्रकार दोहराया गया है :–

> "सामान्य नियम यह है कि कानूनों द्वारा अधिरोपित उन शर्तों को, जो विधिक कार्यवाहियों को प्राधिकृत करती हैं, न्यायालय को अधिकारिता देने के संबंध में अपरिहार्य माना जाए । किन्तु यदि यह प्रतीत होता है कि कानूनी शर्तें विधानमंडल द्वारा वाद में के पक्षकारों के अपने संरक्षण या प्रसुविधा के लिए अंतःस्थापित की गई थीं और यह कि उनमें कोई लोक हित अंतर्वलित नहीं हैं तो ऐसी शर्तों को अपरिहार्य नहीं समझा जाएगा और कोई भी पक्षकार न्यायालय की अधिकारिता को प्रभावित किए बिना उन्हें अधित्यक्त कर सकता है ।"

51. परिणामतः, हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि धारा 3(2) के अधीन समिति में प्रत्यर्थी सं. 3 को शामिल करने के विरुद्ध उठाए गए विलंबित आक्षेप के बारे में यह प्रतीत होता है कि वह याची की सोची-

समझी चाल है । वह एक बुद्धिमान व्यक्ति है और यह जानता है कि न्यायाधीश (जांच) नियम, 1969 के नियम 9(2)(ग) के निबंधनानुसार समिति के पीठासीन अधिकारी को, अधिनियम की धारा 3(3) के अधीन विरचित आरोपों की उस पर तामील करने की तारीख से तीन मास की अवधि के भीतर सभापति को रिपोर्ट भेजनी होती है । अतः, वह रिपोर्ट को भेजने में देरी करने के सभी संभावित तरीके अपनाना चाहता है जिससे कि समिति हर हालत में सभापति को नियम 9(2)(ग) के परन्तुक के निबंधनानुसार समय बढ़ाने का अनुरोध करने के लिए बाध्य हो जाए । यह न्यायालय या इस कारण कोई भी न्यायालय याची को जांच पूरी करने में विलंब करने के एकमात्र उद्देश्य से फाइल की गई याचिका में सहायता प्रदान नहीं कर सकता है ।

52. तथापि, हम पक्षपात के मुद्दे पर अपने निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए, सभापति से यह अनुरोध करेंगे कि वह प्रत्यर्थी सं. 3 के स्थान पर एक अन्य प्रख्यात विधिवेत्ता को नामनिर्दिष्ट करें । याची के विरुद्ध आरंभ की गई कार्यवाहियां केवल आरोप विरचित करने के प्रक्रम तक पहुंची हैं और समिति को अभी आरोपों के संबंध में अपने निष्कर्ष लेखबद्ध करने हैं और रिपोर्ट प्रस्तुत करनी है । अतः, किसी अन्य विधिवेत्ता के नामनिर्देशन से समिति की कार्यवाहियों में बाधा नहीं पड़ेगी और पुनर्गठित समिति याची के विरुद्ध पहले से विरचित किए गए आरोपों के आधार पर आगे कार्यवाही करने की हकदार होगी ।

53. परिणामस्वरूप, पूर्वोक्त मताभिव्यक्तियों के साथ रिट याचिका का निपटारा किया जाता है ।

रिट याचिका का निपटारा किया गया ।

ग्रो./अनू.

[2013] 1 उम. नि. प. 107

विष्णुपदा सरकार और एक अन्य

बनाम

पश्चिमी बंगाल राज्य

2 जुलाई, 2012

न्यायमूर्ति टी. एस. ठाकुर और न्यायमूर्ति श्रीमती ज्ञान सुधा मिश्रा

दंड संहिता, 1860 – धारा 304 भाग 1 और 34 – हत्या – कहा-सुनी के परिणामस्वरूप हुए झगड़े में मृतक की मृत्यु होना – हत्या पूर्व-नियोजित होना – एक अपीलार्थी की आयु 65 वर्ष होना – निचले न्यायालयों द्वारा की गई अभियुक्त-अपीलार्थी की दोषसिद्धि मान्य ठहराते हुए अधिनिर्णीत कारावास अवधि में कमी की गई ।

प्रस्तुत मामले में, यह अपील कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए तारीख 15 जुलाई, 2010 के उस निर्णय और आदेश के विरुद्ध की गई है जिसके अनुसार अपीलार्थियों द्वारा फाइल की गई 2006 की दांडिक अपील सं. 641 खारिज की गई है और भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 34 के साथ पठित धारा 304 भाग-1 के अधीन दंडनीय हत्या की कोटि में न आने वाले आपराधिक मानव वध के अपराध के लिए उनकी दोषसिद्धि और 10 वर्ष की अवधि के लिए कठोर कारावास के दंडादेश और जुर्माने को कायम रखा । अपील भागतः मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – पुलिस ने दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 304 के अधीन दंडनीय अपराध कारित किए जाने के लिए अन्वेषण पूर्ण करने के पश्चात् अपीलार्थियों के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया । विचारण किए जाने पर अभियोजन पक्ष ने आरोप साबित करने के लिए अन्वेषक अधिकारी सहित कुल मिलाकर 13 साक्षियों की परीक्षा की जबकि प्रतिरक्षा पक्ष ने कतिपय दस्तावेजों का अवलंब लेने के अतिरिक्त पर्वत कुमार परिया की परीक्षा की है । विचारण न्यायालय ने तारीख 30 अगस्त, 2006 के अपने आदेश के अनुसार यह निष्कर्ष निकाला है कि बिष्णु सरकार (अपीलार्थी सं. 1) द्वारा उकसाए जाने पर माधव सरकार (अपीलार्थी सं. 2) द्वारा पहुंचाई गई क्षतियों के कारण मृत्यु हुई है जो मानव वध है । दोनों अपीलार्थियों को दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 304 भाग-1 के अधीन तदनुसार दोषसिद्ध किया गया है और प्रत्येक को 5,000/- रुपए के जुर्माने के अतिरिक्त 10 वर्ष का कठोर कारावास भोगने का दंडादेश दिया गया है और जुर्माने के संदाय में

व्यतिक्रम किए जाने पर एक वर्ष का अतिरिक्त कारावास भोगने का भी दंडादेश दिया गया है । उच्च न्यायालय ने अपने उस आदेश के अनुसार, जो हमारे समक्ष आक्षेपित है, अपीलार्थियों द्वारा फाइल की गई अपील को खारिज करते हुए उक्त दोषसिद्धि और दंडादेश की पुष्टि की है । अपीलार्थियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री रंजन मुखर्जी ने यह दलील दी है कि अपीलार्थी बिष्णु सरकार ने अपीलार्थी को कोई भी क्षति नहीं पहुंचाई है और उसके विरुद्ध जो कुछ भी अभिकथित किया गया है वह यह है कि उसने माधव सरकार (अपीलार्थी सं. 2) को उकसाया था कि वह मृतक को सबक सिखाने के लिए उस पर हमला करे । यह भी दलील दी गई है कि अपीलार्थी बिष्णु सरकार की आयु 65 वर्ष से अधिक है और वह डेढ़ वर्ष से अधिक अवधि का कारावास पहले ही भोग चुका है । वह वृद्धावस्था में होने वाले अनेक रोगों से भी ग्रस्त है जिसके कारण उसके मामले में रियायत बरती जानी चाहिए । (पैरा 4 और 5)

जहां तक अपीलार्थी सं. 2 का संबंध है, श्री मुखर्जी ने यह दलील दी है कि इस घटना को 12 वर्ष से अधिक समय बीत गया है और लंबे समय से चल रहे विचारण और अपील की कार्यवाहियों से उक्त अपीलार्थी को पहले ही आर्थिक और शारीरिक हानि पहुंच चुकी है । श्री मुखर्जी ने यह दलील दी है कि अपने परिवार का खर्चा वहन करने वाला वह एकमात्र सदस्य है जो दंडादेश में कटौती किए जाने के योग्य है विशेषकर ऐसी स्थिति में जब मृतक की हत्या करने का उसका कोई भी आशय नहीं था और संपूर्ण घटना अचानक झगड़ा होने के कारण आवेश की तीव्रता में घटित हुई है जिसके परिणामस्वरूप मृतक की मृत्यु हुई है । इसके प्रतिकूल, प्रत्यर्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि मृतक को कारित हुई क्षतियों की प्रकृति और जिस रीति में घटना घटित हुई है उससे अपीलार्थियों को अधिनिर्णीत दंडादेश में कमी करना न्यायोचित नहीं है । (पैरा 6 और 7)

ऐसा कोई भी साक्ष्य नहीं है जिससे अपीलार्थियों द्वारा इस संबंध में पूर्व-चिंतन किया जाना साबित हो कि उन्हें मृतक पर हमला करना था, मात्र एक ही साक्ष्य शेष रहता है जिससे यह दर्शित होता है कि हमलावरों ने मृतक की हत्या करने का आशय किया था । पक्षकारों के बीच, जो एक ही मोहल्ले के निवासी हैं, पहले से कोई भी शत्रुता नहीं थी सिवाय इसके कि मृतक और सुधीर के बीच कहासुनी जैसी एक छोटी सी घटना घटित हुई । यहां तक कि अगले दिन अर्थात् 22 मई, 2001 को नाले के निकट जो घटना घटित हुई उसमें अपीलार्थी बिष्णु सरकार और मृतक का पुत्र

अर्थात् शिकायतकर्ता देबाब्रतो मजूमदार सम्मिलित थे । मृतक द्वारा घटना देखे जाने और शिकायतकर्ता को बचाने के लिए हस्तक्षेप किए जाने पर ही ऐसा हुआ कि माधव सरकार मृतक पर हमला करने लगा और उसने उसे क्षतियां पहुंचाईं जिनके परिणामस्वरूप मृतक की मृत्यु हुई । निःसंदेह, निचले दोनों न्यायालयों ने अभियोजन के पक्षकथन पर विश्वास किया है कि अपीलार्थी बिष्णु सरकार, अपीलार्थी माधव सरकार को मृतक पर हमला करने के लिए उकसा रहा था और इसीलिए उसे दंड संहिता, 1860 की धारा 34 के साथ पठित धारा 304 भाग-1 के अधीन दोषसिद्ध किया गया है । तथापि, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए अपीलार्थी बिष्णु सरकार जिसकी आयु 65 वर्ष से अधिक है को अधिनिर्णीत दंडादेश और अपीलार्थी माधव सरकार को अधिनिर्णीत दंडादेश के बीच अंतर होना चाहिए । ऊपरनिर्दिष्ट परिस्थितियों की संपूर्णता पर विचार करते हुए हमारा यह मत है कि बिष्णु सरकार (अपीलार्थी सं. 1) को तीन वर्ष का कठोर कारावास और माधव सरकार (अपीलार्थी सं. 2) को 7 वर्ष का कठोर कारावास अधिनिर्णीत किए जाने से न्याय होगा । (पैरा 8)

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2012 की दांडिक अपील सं. 876.

2006 की दांडिक पुनरीक्षण आवेदन सं. 641 में कलकत्ता उच्च न्यायालय के तारीख 15 जुलाई, 2010 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से	सर्वश्री रंजन मुखर्जी, मंगलजीत मुखर्जी, एस. भौमिक, एस. सी. घोष और सुश्री गरिमा बोस
प्रत्यर्थियों की ओर से	सर्वश्री चंद्र भूषण प्रसाद, कृपा शंकर प्रसाद, अनील सचदे, मोहित पौल और सुश्री शगुन मट्टा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति टी. एस. ठाकुर ने दिया ।

न्या. ठाकुर – इजाजत दी जाती है ।

2. यह अपील कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए तारीख 15 जुलाई, 2010 के उस निर्णय और आदेश के विरुद्ध की गई है जिसके अनुसार अपीलार्थियों द्वारा फाइल की गई 2006 की दांडिक अपील सं. 641 खारिज की गई है और भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 34 के साथ पठित धारा 304 भाग-1 के अधीन दंडनीय हत्या की कोटि में न आने वाले

आपराधिक मानव वध के अपराध के लिए उनकी दोषसिद्धि और 10 वर्ष की अवधि के लिए कठोर कारावास के दंडादेश और जुर्माने को कायम रखा ।

3. अपीलार्थी द्वारा कारित किए गए अपराध और परिणामस्वरूप की गई उनकी दोषसिद्धि से संबंधित तथ्यों का उल्लेख इस अपीलाधीन निर्णय में किया गया है जिन्हें दोहराने की आवश्यकता नहीं है । विशेषकर इस कारण से कि हमारे द्वारा इस अपील में अपीलार्थियों को अधिनिर्णीत दंडादेश की मात्रा के प्रश्न के संबंध में ही नोटिस जारी किया गया है । यह कहना पर्याप्त होगा कि उस दुर्भाग्यपूर्ण घटना में, जिसमें आयकर अधिकारी के रूप में कार्य करने वाले व्यक्ति अर्थात् मृतक श्यामलेन्दु पर हमला किया गया और उसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हुई, जबकि उसने अपने मकान के सामने हो रहे उपताप पर आक्षेप करने से अधिक कुछ नहीं किया था । अभियोजन पक्षकथन इस प्रकार है कि तारीख 21 मई, 2001 को लगभग 7.00 बजे अपराह्न में यह पाया गया कि उसी मोहल्ले के निवासी सुधीर ने मृतक के मकान के सामने खुले नाले पर झगड़ा किया है । ऐसा प्रतीत होता है कि मृतक ने लड़ाई-झगड़े पर आक्षेप किया था और इसके परिणामस्वरूप दोनों के बीच हुई कहासुनी हो गई । अगले दिन लगभग 11.30 बजे पूर्वाह्न में अपीलार्थी बिष्णु सरकार ने जो सुधीर का भतीजा है, मृतक के घर पर आकर उसे धमकी दी । मृतक ने अपीलार्थी बिष्णु सरकार को ये समझाने का प्रयास किया कि उसने झगड़े के विरुद्ध आपत्ति प्रकट करके कोई गलत कार्य नहीं किया है । उसी दिन लगभग 6.00 बजे अपराह्न में माधव सरकार (अपीलार्थी सं. 2) और बिष्णु सरकार का भाई (अभि. सा. 1) अर्थात् मृतक का पुत्र देबाब्रतो मजूमदार और इस मामले में का शिकायतकर्ता नाले के निकट बनी पट्टी पर आए और उसकी पिटाई करने लगे । मृतक ने, जो बाजार जा रहा था, देबाब्रतो मजूमदार को बचाने के लिए हस्तक्षेप किया । माधव सरकार ने शिकायतकर्ता को छोड़ दिया और मृतक की घूंसों से पिटाई करने लगा । अपीलार्थी बिष्णु सरकार अभिकथित रूप से निकट खड़ा हुआ था और उसे उकसा रहा था । शिकायतकर्ता सहायता के लिए चिल्लाया जिसके कारण कुछ स्थानीय व्यक्तियों का ध्यान उस ओर गया और वे घटनास्थल की ओर दौड़े और वे मृतक को क्षतिग्रस्त अवस्था में अस्पताल ले गए जहां पर माधव सरकार (अपीलार्थी सं. 2) द्वारा ईंट से पहुंचाई गई क्षतियों के कारण उसकी मृत्यु हो गई ।

4. पुलिस ने दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 304 के अधीन दंडनीय अपराध कारित किए जाने के लिए अन्वेषण पूर्ण करने के

पश्चात् अपीलार्थियों के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया । विचारण किए जाने पर अभियोजन पक्ष ने आरोप साबित करने के लिए अन्वेषक अधिकारी सहित कुल मिलाकर 13 साक्षियों की परीक्षा की जबकि प्रतिरक्षा पक्ष ने कतिपय दस्तावेजों का अवलंब लेने के अतिरिक्त पर्वत कुमार परिया की परीक्षा की है । विचारण न्यायालय ने तारीख 30 अगस्त, 2006 के अपने आदेश के अनुसार यह निष्कर्ष निकाला है कि बिष्णु सरकार (अपीलार्थी सं. 1) द्वारा उकसाए जाने पर माधव सरकार (अपीलार्थी सं. 2) द्वारा पहुंचाई गई क्षतियों के कारण मृत्यु हुई है जो मानव वध है । दोनों अपीलार्थियों को दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 304 भाग-1 के अधीन तदनुसार दोषसिद्ध किया गया है और प्रत्येक को 5,000/- रुपए के जुर्माने के अतिरिक्त 10 वर्ष का कठोर कारावास भोगने का दंडादेश दिया गया है और जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम किए जाने पर एक वर्ष का अतिरिक्त कारावास भोगने का भी दंडादेश दिया गया है । उच्च न्यायालय ने अपने उस आदेश के अनुसार, जो हमारे समक्ष आक्षेपित है, अपीलार्थियों द्वारा फाइल की गई अपील को खारिज करते हुए उक्त दोषसिद्धि और दंडादेश की पुष्टि की है ।

5. अपीलार्थियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री रंजन मुखर्जी ने यह दलील दी है कि अपीलार्थी बिष्णु सरकार ने अपीलार्थी को कोई भी क्षति नहीं पहुंचाई है और उसके विरुद्ध जो कुछ भी अभिकथित किया गया है वह यह है कि उसने माधव सरकार (अपीलार्थी सं. 2) को उकसाया था कि वह मृतक को सबक सिखाने के लिए उस पर हमला करे । यह भी दलील दी गई है कि अपीलार्थी बिष्णु सरकार की आयु 65 वर्ष से अधिक है और वह डेढ़ वर्ष से अधिक अवधि का कारावास पहले ही भोग चुका है । वह वृद्धावस्था में होने वाले अनेक रोगों से भी ग्रस्त है जिसके कारण उसके मामले में रियायत बरती जानी चाहिए ।

6. जहां तक अपीलार्थी सं. 2 का संबंध है, श्री मुखर्जी ने यह दलील दी है कि इस घटना को 12 वर्ष से अधिक समय बीत गया है और लंबे समय से चल रहे विचारण और अपील की कार्यवाहियों से उक्त अपीलार्थी को पहले ही आर्थिक और शारीरिक हानि पहुंच चुकी है । श्री मुखर्जी ने यह दलील दी है कि अपने परिवार का खर्चा वहन करने वाला वह एकमात्र सदस्य है जो दंडादेश में कटौती किए जाने के योग्य है विशेषकर ऐसी स्थिति में जब मृतक की हत्या करने का उसका कोई भी आशय नहीं था और संपूर्ण घटना अचानक झगड़ा होने के कारण आवेश की तीव्रता में घटित हुई है जिसके परिणामस्वरूप मृतक की मृत्यु हुई है ।

7. इसके प्रतिकूल, प्रत्यर्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि मृतक को कारित हुई क्षतियों की प्रकृति और जिस रीति में घटना घटित हुई है उससे अपीलार्थियों को अधिनिर्णीत दंडादेश में कमी करना न्यायोचित नहीं है ।

8. ऐसा कोई भी साक्ष्य नहीं है जिससे अपीलार्थियों द्वारा इस संबंध में पूर्व-चिंतन किया जाना साबित हो कि उन्हें मृतक पर हमला करना था, मात्र एक ही साक्ष्य शेष रहता है जिससे यह दर्शित होता है कि हमलावरों ने मृतक की हत्या करने का आशय किया था । पक्षकारों के बीच, जो एक ही मोहल्ले के निवासी हैं, पहले से कोई भी शत्रुता नहीं थी सिवाय इसके कि मृतक और सुधीर के बीच कहासुनी जैसी एक छोटी सी घटना घटित हुई । यहां तक कि अगले दिन अर्थात् 22 मई, 2001 को नाले के निकट जो घटना घटित हुई उसमें अपीलार्थी बिष्णु सरकार और मृतक का पुत्र अर्थात् शिकायतकर्ता देबाब्रतो मजूमदार सम्मिलित थे । मृतक द्वारा घटना देखे जाने और शिकायतकर्ता को बचाने के लिए हस्तक्षेप किए जाने पर ही ऐसा हुआ कि माधव सरकार मृतक पर हमला करने लगा और उसने उसे क्षतियां पहुंचाईं जिनके परिणामस्वरूप मृतक की मृत्यु हुई । निःसंदेह, निचले दोनों न्यायालयों ने अभियोजन के पक्षकथन पर विश्वास किया है कि अपीलार्थी बिष्णु सरकार, अपीलार्थी माधव सरकार को मृतक पर हमला करने के लिए उकसा रहा था और इसीलिए उसे दंड संहिता, 1860 की धारा 34 के साथ पठित धारा 304 भाग-1 के अधीन दोषसिद्ध किया गया है । तथापि, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए अपीलार्थी बिष्णु सरकार जिसकी आयु 65 वर्ष से अधिक है को अधिनिर्णीत दंडादेश और अपीलार्थी माधव सरकार को अधिनिर्णीत दंडादेश के बीच अंतर होना चाहिए । ऊपरनिर्दिष्ट परिस्थितियों की संपूर्णता पर विचार करते हुए हमारा यह मत है कि बिष्णु सरकार (अपीलार्थी सं. 1) को तीन वर्ष का कठोर कारावास और माधव सरकार (अपीलार्थी सं. 2) को 7 वर्ष का कठोर कारावास अधिनिर्णीत किए जाने से न्याय होगा । तथापि, जुर्माने और जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम किए जाने के संबंध में कोई परिवर्तन नहीं है । तदनुसार, हम अपील भागतः मंजूर करते हैं और ऊपर उपदर्शित सीमा तक निचले न्यायालयों द्वारा पारित किए गए आदेशों को उपांतरित करते हैं ।

अपील भागतः मंजूर की गई ।

अस./अनू.

[2013] 1 उम. नि. प. 113

आनंद मोहन

बनाम

बिहार राज्य

10 जुलाई, 2012

न्यायमूर्ति ए. के. पटनायक और न्यायमूर्ति स्वतंत्र कुमार

दंड संहिता, 1860 – धारा 302, 307, 427, 149, 147 – हत्या – अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा अन्य उपद्रवियों के साथ मिलकर जिला मजिस्ट्रेट की हत्या किया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्त-अपीलार्थी को मृत्यु दंडादेश तथा अन्य कुछ अभियुक्तों को भी दंडादिष्ट किया गया – मृत्यु दंडादेश निर्देश उच्च न्यायालय द्वारा खारिज किया गया तथा आजीवन कठोर कारावास में परिवर्तित किया – राज्य द्वारा भी उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अपील की गई – अभियुक्त-अपीलार्थी की अपील तथा राज्य द्वारा फाइल की गई अपीलें भी खारिज की गईं ।

प्रस्तुत मामले में, ये सभी अपीलें भारत के संविधान, 1950 के अनुच्छेद 136 के अधीन विशेष इजाजत द्वारा 2007 के मृत्यु निर्देश सं. 12 और 2007 की दांडिक अपील सं. 1282, 1308, 1318, 1327, 1345 और 1354 में पटना उच्च न्यायालय के एक ही निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है । अपीलें खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अभि. सा. 14 अभि. सा. 11 सहित अन्य अधिकारियों के साथ रात्रि में ही 2.00 बजे मुजफ्फरपुर पहुंच गया था । सदर पुलिस थाना, मुजफ्फरपुर पहुंचने के पश्चात् अभि. सा. 14 ने विस्तृत रूप से टाइप की हुई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को दर्ज करने में कुछ और समय लिया । अभि. सा. 14 ने यह कथन किया है कि सदर पुलिस थाना मुजफ्फरपुर में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने के लिए उसने वहां मौजूद सभी अधिकारियों से सहायता ली और वास्तव में उसने 4-5 अधिकारियों के कथन अभिलिखित किए । उसने यह कथन किया है कि उसने टाइप की हुई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट तैयार की और उसे कथनों को पूरा करने के लिए आधा घंटा लगा और प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने में एक घंटा लगा । अभिलेख पर प्रस्तुत संपूर्ण साक्ष्य के

आधार पर, उच्च न्यायालय ने अभियोजन पक्ष के इस वृत्तांत को स्वीकार नहीं किया है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट तारीख 5 दिसम्बर, 1994 को 10.10 बजे अपराह्न में सदर पुलिस थाना, मुजफ्फरपुर में दर्ज कराई गई थी और इसके बजाय न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि साक्ष्य से इस संबंध में युक्तियुक्त संदेह पैदा होता है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट तारीख पूर्व और समय पूर्व की है । हमें उच्च न्यायालय द्वारा निकाले गए इस निष्कर्ष में कोई त्रुटि नहीं दिखाई देती है । न्यायालय प्रतिरक्षा पक्ष की ओर से दी गई मुख्य दलील पर विचार करेगा कि जब एक बार उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित कर दिया था कि साक्ष्य से तारीख पूर्व और समय पूर्व होने के कारण प्रथम इत्तिला रिपोर्ट पर युक्तियुक्त संदेह हो गया है तब उच्च न्यायालय को अभियोजन वृत्तांत पूर्णतया त्यक्त कर देना चाहिए था । प्रतिरक्षा पक्ष द्वारा उद्धृत किए गए किसी भी मामले में हमने यह निष्कर्ष नहीं निकाला है कि इस न्यायालय ने मात्र इस आधार पर संपूर्ण अभियोजन वृत्तांत को त्यक्त कर दिया है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट तारीख पूर्व और समय पूर्व की है । (पैरा 29 और 30)

वर्तमान मामले में, तथ्य यह शेष रह जाता है कि तारीख 5 दिसम्बर, 1994 को लगभग 4.15 बजे अपराह्न में घटना के तत्काल पश्चात् घटनास्थल से जिला मुख्यालय, वाराणसी को सूचना भेज दी गई थी कि छोटन शुक्ला के शवदाह के लिए निकाले गए जुलूस में आए लोगों ने रिवाल्वर से मृतक को क्षतिग्रस्त कर दिया है और विभिन्न यानों से हाजीपुर की ओर भाग गए हैं । अभियोजन पक्षकथन का कम से कम यह भाग, जिसका 6 दिसम्बर, 1994 के प्रातःकाल में अभि. सा. 14 द्वारा दर्ज कराई गई पश्चात्वर्ती टाइप की हुई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में भी उल्लेख है, मिथ्या मानकर त्यक्त नहीं किया जा सकता और न्यायालय को साक्ष्य के आधार पर यह विनिश्चित करना होगा कि छोटन शुक्ला के शवदाह के लिए निकाले गए जुलूस में लोगों के बीच में ऐसे कौन-कौन से व्यक्ति हैं जो मृतक को क्षति कारित करने के लिए जिम्मेदार हैं । वास्तव में उच्च न्यायालय ने भी अभि. सा. 14 द्वारा दर्ज कराई गई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के संपूर्ण वृत्तांत को स्वीकार नहीं किया है और प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में उल्लिखित इस अभियोजन पक्षकथन को खारिज किया है कि विधिविरुद्ध जमाव गठित किया गया था और अभियुक्त सं. 1 से अभियुक्त सं. 7 उस विधिविरुद्ध जमाव के भागीदार हैं जिनका उद्देश्य मृतक की हत्या करना था । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय में यह अभिनिर्धारित किया है कि

मृतक की कार का जिस भीड़ ने घेराव किया था उसने पथराव करके कार को क्षतिग्रस्त किया और उसमें बैठे व्यक्तियों को कार से बाहर खींचकर क्षतियां कारित कीं और उस भीड़ ने विधिविरुद्ध जमाव का रूप ले लिया किंतु अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य और परिस्थितियों से यह सिद्ध नहीं होता है कि भीड़ में के ऐसे व्यक्तियों का भी सामान्य उद्देश्य मृतक की हत्या करना था । उच्च न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि जुलूस में आए ऐसे कुछ व्यक्ति जो घटनास्थल के निकट यानों में बैठे हुए थे, यह पता लगाने के लिए यानों से बाहर निकलकर आ सकते थे कि होहल्ला का क्या कारण है किंतु जब किसी भी व्यक्ति ने इस संबंध में ध्यान नहीं दिया कि मृतक इस मार्ग से गुजरेगा तो ये व्यक्ति विधिविरुद्ध जमाव के सदस्य नहीं हो सकते थे जिनका सामान्य आशय मृतक की हत्या करना था । उच्च न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि इस संबंध में कोई भी अभिकथन नहीं किया गया है कि जुलूस में आए व्यक्तियों के पास आयुध थे और घटनास्थल पर जमाव के वास्तविक व्यवहार के संबंध में अपर्याप्त साक्ष्य है । उच्च न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि मृतक के चालक और अंगरक्षक ने अपने साक्ष्य में यह कथन किया है कि सड़क के दोनों ओर अंत्येष्टि जुलूस के दौरान लोगों की भीड़ होने के कारण मृतक की कार सड़क के बाईं ओर से नहीं गुजर सकती थी और इससे यह दर्शित होता है कि मृतक की कार और उसमें बैठे व्यक्तियों पर उस भीड़ द्वारा अचानक हमला किया गया था जो खाबरा ग्राम के निकट अंत्येष्टि जुलूस को देखने के लिए इकट्ठा हुए थे । उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि मृतक के चालक और अंगरक्षक ने अपने साक्ष्य में ऐसा कुछ भी नहीं कहा है जिससे यह पता चल पाता कि भीड़ किस कारण क्रोधित हुई और आहतों ने ऐसी कोई भी गलती नहीं की थी जिस कारण मृतक की हत्या की गई । इस प्रकार उच्च न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि जुलूस में आए व्यक्तियों ने, जो शव के साथ-साथ मोटरयानों में चल रहे थे, विधिविरुद्ध जमाव गठित करने का उनका कोई भी सामान्य उद्देश्य नहीं था और इसलिए अभियुक्त सं. 1 से अभियुक्त सं. 7 को इस आधार पर दंड संहिता की धारा 302/149 के अधीन अपराध के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है कि वे उस विधिविरुद्ध जमाव के सदस्य हैं जिसका उद्देश्य मृतक या किसी अन्य व्यक्ति की हत्या करना था । हमारी सुविचारित राय में, उच्च न्यायालय ने अभियोजन पक्ष की इस दलील को ठीक ही खारिज किया है कि अभियुक्त सं. 1 से अभियुक्त सं. 7 दंड संहिता की धारा 302/149 के अधीन

दोषसिद्धि के लिए जिम्मेदार हैं । उच्च न्यायालय ने साक्षियों के साक्ष्य की सावधानीपूर्वक संवीक्षा करने के पश्चात् अभि. सा. 14 द्वारा दर्ज कराई गई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में उल्लिखित अभियोजन वृत्तांत को भी त्यक्त किया है कि अभियुक्त सं. 2, अभियुक्त सं. 3 और अभियुक्त सं. 4 ने मृतक की हत्या करने के लिए भटकन शुक्ला को उकसाया था । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि सिविल अधिकारी, चालक और अंगरक्षक अर्थात् अभि. सा. 12, अभि. सा. 13, अभि. सा. 17 और अभि. सा. 21 प्रत्यक्षदर्शी साक्षी हैं जिनका उल्लेख श्रेणी-II में किया गया है, इन साक्षियों में से किसी भी साक्षी ने अभियुक्त सं. 1 से अभियुक्त सं. 7 द्वारा उकसाये जाने के अभिकथन का समर्थन नहीं किया है और पुलिस कार्मिक अर्थात् अभि. सा. 5 और अभि. सा. 9 का उल्लेख श्रेणी-I में किया गया है और इन साक्षियों ने ऐसे किसी भी व्यक्ति को नहीं सुना है, जो मृतक की हत्या करने के लिए भटकन शुक्ला को उकसा रहा हो । उच्च न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि अभिकथित 17 प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों में से छह साक्षियों ने उकसाये जाने के बारे में नहीं कहा है और शेष ग्यारह अभियोजन साक्षियों में से छह साक्षियों ने अर्थात् अभि. सा. 1, अभि. सा. 3, अभि. सा. 4, अभि. सा. 9, अभि. सा. 10 और अभि. सा. 14, यह कथन किया है कि केवल अभियुक्त सं. 1 ने मृतक पर गोली चलाने के लिए भटकन शुक्ला को उकसाया था । तदनुसार, उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष अभिलिखित किया है कि केवल अभियुक्त सं. 1 ने मृतक की हत्या करने के लिए एकमात्र गोली चलाने वाले को उकसाया था और वह दंड संहिता की धारा 109 के अधीन दुष्प्रेरण के अपराध का दोषी है और दंड संहिता की धारा 302/109 के अधीन मृतक की हत्या का दंड पाने के लिए जिम्मेदार है और अभियुक्त सं. 2, अभियुक्त सं. 3 और अभियुक्त सं. 4 को दंड संहिता की धारा 302/109 के अधीन आरोपों से दोषमुक्त किया जाना चाहिए । (पैरा 31, 32 और 33)

न्यायालय ने साक्षियों के साक्ष्य का परिशीलन किया है और हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि उच्च न्यायालय का यह निष्कर्ष कि अभियुक्त सं. 2, अभियुक्त सं. 3 और अभियुक्त सं. 4 को दंड संहिता की धारा 302/109 के अधीन अपराधों का दोषी नहीं ठहराया जा सकता है, अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य के समुचित मूल्यांकन पर आधारित है । जुलूस के साथ चल रहे 14 साक्षियों में से केवल 4 साक्षियों ने, अर्थात् अभि. सा. 6, अभि. सा. 7, अभि. सा. 8 और अभि. सा. 11, यह कथन

किया है कि अभियुक्त सं. 2 ने अभियुक्त सं. 1 के साथ मिलकर मृतक पर गोली चलाने के लिए भटकन शुक्ला को उकसाया था । इसी प्रकार, जुलूस के साथ चल रहे 14 साक्षियों में से केवल अभि. सा. 7 और अभि. सा. 8 ने यह कथन किया है कि अभियुक्त सं. 3 ने मृतक पर गोली चलाने के लिए भटकन शुक्ला को उकसाया था और शेष 11 साक्षियों ने यह कथन नहीं किया है कि अभियुक्त सं. 3 ने भी मृतक पर गोली चलाने के लिए भटकन शुक्ला को उकसाया था । अभियोजन पक्ष द्वारा परीक्षा किए गए 14 साक्षियों में से मात्र अभि. सा. 7 और अभि. सा. 11 ने यह कथन किया है कि अभियुक्त सं. 4 ने भी मृतक पर गोली चलाने के लिए भटकन शुक्ला को उकसाया था किंतु शेष 12 साक्षियों ने यह कथन नहीं किया है कि अभियुक्त सं. 4 ने भी जिला मजिस्ट्रेट पर गोली चलाने के लिए भटकन शुक्ला को उकसाया था । इस न्यायालय ने जैनुल हक बनाम बिहार राज्य वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि उकसाए जाने का साक्ष्य स्वयं में एक कमजोर साक्ष्य है और प्रायः लोगों की प्रवृत्ति वास्तविक हमलावर के साथ-साथ अन्य व्यक्तियों को भी आलिप्त करने की भी होती है कि यह भी व्यक्ति आहत पर हमला करने के लिए हमलावरों को उकसा रहा था और जब तक कि इस संबंध में साक्ष्य स्पष्ट, तर्कसम्मत और विश्वसनीय न हो तब तक उस व्यक्ति के विरुद्ध दुष्प्रेरण के लिए दोषसिद्धि अभिलिखित नहीं की जा सकती है जिसके संबंध में वास्तविक हमलावर को उकसाए जाने का अभिकथन किया गया है । चूंकि जुलूस के साथ चल रहे 14 अभियोजन साक्षियों में से अधिकांश लोगों ने, जिनमें असैनिक और पुलिस कार्मिक दोनों हैं, अभियोजन के इस वृत्तांत का समर्थन नहीं किया है कि अभियुक्त सं. 2, अभियुक्त सं. 3 और अभियुक्त सं. 4 ने भी मृतक पर गोली चलाने के लिए भटकन शुक्ला को उकसाया था, इसलिए अभियुक्त सं. 2 अभियुक्त सं. 3 और अभियुक्त सं. 4 को मृतक की हत्या के दुष्प्रेरण के अपराध के लिए दोषसिद्ध करना उचित नहीं होगा । अतः हमारी राय में उच्च न्यायालय ने अभियुक्त सं. 2, अभियुक्त सं. 3 और अभियुक्त सं. 4 को दंड संहिता की धारा 302/109 के अधीन आरोप से दोषमुक्त करके ठीक ही किया है । न्यायालय ने प्रतिरक्षा पक्ष की ओर से दी गई दलीलों पर भी विचार किया है कि इन साक्षियों ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि मृतक पर भटकन शुक्ला द्वारा उस समय गोली चलाई गई थी जब वह जमीन पर क्षतिग्रस्त अवस्था में पड़ा हुआ था किन्तु चिकित्सीय साक्ष्य से यह सिद्ध होता है कि गोलियां उस समय चलाई गई थीं जब मृतक खड़ा हुआ था और इस आधार पर इन 10 साक्षियों का

साक्ष्य त्यक्त किया जाना चाहिए जिन्होंने मृतक पर गोली चलाने के लिए अभियुक्त सं. 1 द्वारा भटकन शुक्ला को उकसाए जाने के संबंध में अभिसाक्ष्य दिया है । अभि. सा. 16 के अभिसाक्ष्य से यह स्पष्ट हो गया है कि बंदूक की गोली व्यक्ति के खड़े रहने या लेटे रहने की स्थिति में भी शरीर में लग सकती है । अभि. सा. 16 ने यह कथन किया है कि क्षति सं. I कारित हो सकती है और उसके पश्चात् क्षति सं. II कारित हो सकती है । इसके अतिरिक्त क्षति सं. II से यह उपदर्शित होता है कि मृतक अपना चेहरा हिलाने की स्थिति में था । इस साक्षी ने यह भी कथन किया है कि शवपरीक्षण रिपोर्ट से यह भी प्रतीत होता है कि क्षति सं. II के कारित किए जाने के पश्चात् ही क्षति सं. III कारित हो सकती है । इस प्रकार, श्री रंजीत कुमार द्वारा दी गई यह दलील खारिज नहीं की जा सकती है कि मृतक के बाएं गाल पर क्षति सं. II कारित होने के पश्चात् मृतक ने अपना चेहरा घुमाया होगा और उसके पश्चात् उसके चेहरे के बाएं पार्श्व कपालीय भाग में क्षति कारित हो सकती है । अतः हम यह अभिनिर्धारित नहीं कर सकते हैं कि चिकित्सीय साक्ष्य ऐसा है कि उसके आधार पर अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य की इस सत्यता को नकारा जा सके कि मृतक पर उस समय गोली चलाई गई थी जब वह जमीन पर क्षतिग्रस्त अवस्था में पड़ा हुआ था । अब न्यायालय प्रतिरक्षा पक्ष की इस दलील पर विचार करेगा कि उच्च न्यायालय ने मृतक के चालक और अंगरक्षक क्रमशः अभि. सा. 17 और अभि. सा. 21 के साक्ष्य पर विचार नहीं किया है जिन्होंने अभियोजन पक्षकथन का समर्थन नहीं किया है । हमने अभि. सा. 17 (चालक) के साक्ष्य का परिशीलन किया है जिसने यह कथन किया है कि जिन लोगों ने जुलूस में भाग लिया था उन्होंने मृतक की कार का घेराव किया और वे "मारो-मारो" के नारे लगा रहे थे और उन्होंने मृतक और उसके अंगरक्षक की कार से बाहर खींचा और उसके पश्चात् उन पर हमला करने लगे किन्तु वह बच गया और यान के पीछे छुप गया और पांच-छः मिनट के पश्चात् जब वह वापस आया तब उसने देखा कि जुलूस वहां नहीं है किन्तु वहां पर पुलिस अपने यानों के साथ मौजूद थी और उसने देखा कि मृतक क्षतिग्रस्त अवस्था में सड़क पर पड़ा हुआ है और मृतक की कार उलटी हुई पड़ी है और इसके पश्चात् मृतक को पुलिस की गाड़ी से अस्पताल लाया गया और यह साक्षी भी इसी गाड़ी से अस्पताल गया और उसे बाद में यह पता चला कि मृतक की मृत्यु हो गई है । हमने अभि. सा. 21 (अंगरक्षक) के साक्ष्य का भी परिशीलन किया है जिसने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि भीड़ मारो-मारो कहकर चिल्ला रही

थी और उन्होंने उसकी, मृतक की और चालक की पिटाई की तथा उनकी गाड़ी को उलट दिया और उन्हें क्षतियां पहुंचीं और थोड़े समय पश्चात् पुलिस वहां पहुंची और भगदड़ मच गई और पुलिस ने मृतक और इस साक्षी को अस्पताल भेजा और तब उसे पता चला कि मृतक की मृत्यु हो गई है । अतः अभि. सा. 17 और अभि. सा. 21 ने मृतक पर गोली चलाने के लिए अभियुक्त सं. 1, अभियुक्त सं. 2, अभियुक्त सं. 3 और अभियुक्त सं. 4 द्वारा भटकन शुक्ला को उकसाने के संबंध में कुछ भी नहीं कहा है । यह प्रतीत होता है कि अभि. सा. 17 और अभि. सा. 21 गोली चलाने की घटना से बिल्कुल भी अवगत नहीं थे और उन्हें यह आभास था कि मृतक को कार से खींचने के पश्चात् भीड़ द्वारा हमला किए जाने पर मृतक क्षतिग्रस्त हुआ है । हमारी सुविचारित राय में ऐसा प्रतीत होता है कि अभि. सा. 17 और अभि. सा. 21 को यह मालूम नहीं था कि कार से बाहर खींचने और भीड़ द्वारा पिटाई किए जाने के पश्चात् वास्तव में क्या हुआ था । उनके साक्ष्य के आधार पर, न्यायालय अन्य 10 साक्षियों के इस साक्ष्य को त्यक्त नहीं कर सकता है कि भटकन शुक्ला को अभियुक्त सं. 1 के उकसाए जाने पर उसने अपने रिवाल्वर से मृतक पर गोली चलाई थी क्योंकि चिकित्सीय साक्ष्य से यह सिद्ध हो गया है कि मृतक की मृत्यु का कारण गोली से कारित की गई क्षति है न कि भीड़ द्वारा किया गया हमला । इसके अतिरिक्त, अभि. सा. 17 और अभि. सा. 21 ने अभियोजन पक्षकथन का समर्थन नहीं किया है किन्तु उनके साक्ष्य से भी अभियोजन पक्षकथन अविश्वसनीय नहीं ठहराया जा सकता कि मृतक पर भटकन शुक्ला द्वारा जो गोली चलाई गई थी वह अभियुक्त सं. 1 द्वारा उकसाए जाने पर चलाई गई थी । (पैरा 34, 36 और 37)

न्यायालय ने श्री जेठमलानी द्वारा दी गई इस दलील पर विचार करेगा कि चूंकि अभियुक्त सं. 1 कंटेसा कार में बैठा हुआ था जो जुलूस के सामने थी और मृतक की हत्या जुलूस के बीचोबीच हुई, इसलिए प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के साक्ष्य को असंभावी मानकर त्यक्त कर दिया जाना चाहिए । अभियोजन पक्ष ने अपने साक्षियों के माध्यम से साक्ष्य प्रस्तुत किया है कि मृतक पर गोली चलाए जाने के समय पर अभियुक्त सं. 1 घटनास्थल पर था और मृतक पर गोली चलाने के लिए भटकन शुक्ला को उकसा रहा था । यदि अभियुक्त सं. 1 न्यायालय को विश्वास दिलाना चाहता था कि घटना के समय पर वह जुलूस के सामने चल रही कंटेसा कार में था न कि घटनास्थल पर, तब उसे दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन अपने कथन में भी यह प्रतिरक्षा लेनी चाहिए थी और

इस प्रतिरक्षा के समर्थन में विश्वसनीय साक्ष्य भी प्रस्तुत करना चाहिए था । भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 103 में यह उपबंध किया गया है कि किसी विशिष्ट तथ्य के सबूत का भार उस व्यक्ति पर होता है जो न्यायालय से यह चाहता है कि उसके अस्तित्व में विश्वास करे, जब तक कि किसी विधि द्वारा यह उपबंधित न हो कि उस तथ्य के सबूत का भार किसी विशिष्ट व्यक्ति पर होगा । अभियोजन पक्ष ने अपने अनेक साक्षियों के माध्यम से प्रस्तुत किए गए साक्ष्य द्वारा यह सिद्ध किया है कि अभियुक्त सं. 1 घटनास्थल पर मौजूद था और उसने मृतक पर गोली चलाने के लिए भटकन शुक्ला को उकसाया था । यदि अभियुक्त सं. 1 यह चाहता था कि न्यायालय अभियोजन के इस वृत्तांत को संभावी न मानकर खारिज कर दे तब साक्ष्य प्रस्तुत करने का भार अभियुक्त पर पड़ता है कि वह घटनास्थल पर मौजूद नहीं था और उसने मृतक पर गोली चलाने के लिए भटकन शुक्ला को नहीं उकसाया था । चूंकि उसने इस भार का निर्वहन नहीं किया है, इसलिए उच्च न्यायालय ने अभियुक्त सं. 1 को दंड संहिता की धारा 302/109 के अधीन अपराध का दोषी अभिनिर्धारित करके ठीक किया है । दंडादेश के संबंध में, उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि यद्यपि मृतक जिला मजिस्ट्रेट था, उसकी हत्या कार में बैठे हुए एक अन्य जिले में अकस्मात भीड़ द्वारा और अभियुक्त सं. 1 द्वारा उकसाए जाने पर और भटकन शुक्ला द्वारा गोली चलाए जाने पर की गई है और अभियुक्त सं. 1 स्वयं में हमलावर नहीं है इसलिए आजीवन कठोर कारावास और मृत्यु दंडादेश समुचित दंड नहीं होगा । हम उच्च न्यायालय के इस मत से सहमत हैं और हमारी यह राय है कि यह ऐसा विरल से विरलतम मामला नहीं है जिसमें उच्च न्यायालय अभियुक्त सं. 1 पर मृत्यु दंडादेश की पुष्टि करे । हमारी सुविचारित राय में, अभियुक्त सं. 1 आजीवन कठोर कारावास के लिए जिम्मेदार है । परिणामतः, न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि न तो अभियुक्त सं. 1 द्वारा फाइल की गई अपील में और न ही राज्य द्वारा फाइल की गई अपीलों में कोई सार है । (पैरा 38, 39 और 40)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2011] (2011) 13 एस. सी. सी. 2006 :
भगलू लोध और एक अन्य बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ; 20

[2010] (2010) 10 एस. सी. सी. 259 :
अब्दुल सईद बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ; 16,17

[2010] (2010) 8 एस. सी. सी. 407 :
वीरेन्द्र सिंह बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ; 18

[2010] (2010) 7 एस. सी. सी. 477 :
सिकन्दर सिंह और अन्य बनाम **बिहार राज्य** ; 18

[2007] (2007) 7 एस. सी. सी. 625 :
गिरजा प्रसाद बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ; 17

[2006] (2006) 2 एस. सी. सी. 250 :
ओम प्रकाश बनाम **हरियाणा राज्य** ; 25

[2006] ए. आई. आर. 2006 एस. सी. 2500 :
बुद्ध सिंह बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ; 23

[2003] (2003) 10 एस. सी. सी. 414 :
मध्य प्रदेश राज्य बनाम **मानसिंह और अन्य** ; 30

[2003] (2003) 2 एस. सी. सी. 661 :
रिजान और अन्य बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य** ; 19

[2003] (2003) 2 एस. सी. सी. 518 :
अमर सिंह बनाम **बलविन्दर सिंह और अन्य** ; 15

[1997] (1997) 1 एस. सी. सी. 283 :
बिनय कुमार सिंह और अन्य बनाम **बिहार राज्य** ; 14, 17, 28

[1995] (1995) 3 एस. सी. सी. 392 :
शेख इसहाक और अन्य बनाम **बिहार राज्य** ; 28

[1991] (1991) 3 एस. सी. सी. 206 :
इरम संतोष रेड्डी और अन्य बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य** ; 15

[1988] ए. आई. आर. 1988 एस. सी. 1158 :
अवधेश बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ; 20, 23, 30

[1980] (1980) 4 एस. सी. सी. 425 :
मरुदानल अगस्ती बनाम **केरल राज्य** ; 20, 30

[1978] (1978) 4 एस. सी. सी. 371 :
गणेश भवन पटेल बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ; 20, 25, 30

[1974] ए. आई. आर. 1974 एस. सी. 45 :
जैनुल हक बनाम **बिहार राज्य** ; 22, 34

[1964] [1964] 8 एस. सी. आर. 133 :
मसलती बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** । 17,22,35

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : **2009 की दांडिक अपील सं. 1804-1805 के साथ 2009 की दांडिक अपील सं. 1536, 1537, 1538, 1539, 1540, 1541, 1542 और 1806 की भी सुनवाई की गई ।**

2007 की दांडिक अपील सं. 1345 में फाइल किए गए 2007 के मृत्यु निर्देश सं. 12 में पटना उच्च न्यायालय, पटना की खंड न्यायपीठ के तारीख 10 दिसंबर, 2008 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

पक्षकारों की ओर से सर्वश्री राम जेठमलानी, सुरिन्दर सिंह, नागेन्द्र राय, रणजीत कुमार (ज्येष्ठ अधिवक्तागण), अशोक कुमार सिंह, कुमार रंजन, शांतनु सागर, कृपाशंकर प्रसाद, एम. पी. झा, मोहित कुमार शाह, सुश्री शिल्पी शाह, तुंगेश, गोपाल सिंह, समीर अली खां, मनीष कुमार, अनंत शर्मा, दीपक प्रभाकरण, शेख चांद साहेब, विजेन्द्र कुमार, राम इकबाल राय, हर्षवर्धन झा, दिलीप पिल्लई, बबन कुमार शर्मा, सुश्री चंदन रामामूर्ति और हरि शंकर के.

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति ए. के. पटनायक ने दिया ।

न्या. पटनायक – ये सभी अपीलें भारत के संविधान, 1950 के अनुच्छेद 136 के अधीन विशेष इजाजत द्वारा 2007 के मृत्यु निर्देश सं. 12 और 2007 की दांडिक अपील सं. 1282, 1308, 1318, 1327, 1345 और 1354 में पटना उच्च न्यायालय के एक ही निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है ।

तथ्य :

2. मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि तारीख 5 दिसंबर, 1994 को 10.10 बजे अपराह्न में पुलिस थाना सदर जिला मुजफ्फरपुर (पूर्व) के पुलिस उपाधीक्षक श्री मोहन रजक (जिसे संक्षेप में "इत्तिलाकर्ता" कहा गया है) द्वारा टाइप की हुई रिपोर्ट दर्ज कराई गई जिसे प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के रूप में लिया गया । संक्षेप में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में अभियोजन पक्षकथन इस प्रकार है – तारीख 4 दिसंबर, 1994 की रात्रि में राष्ट्रीय राजमार्ग सं. 28 पर कुछ अज्ञात अपराधियों ने श्री कौशलेन्द्र कुमार शुक्ला **उर्फ** छोटन शुक्ला और उसके सहयोगियों की हत्या कर दी और तारीख 5 दिसंबर, 1994 को एस. के. एम. कालेज अस्पताल में छोटन शुक्ला और अन्य मृतकों का शवपरीक्षण किया गया । छोटन शुक्ला के समर्थक बिहार पीपुल्स पार्टी के कार्यकर्ता थे जो अस्पताल पर एक बड़ी संख्या में एकत्र हो गए थे । कानून और व्यवस्था भंग होने की संभावना पर विचार करते हुए, सिविल और पुलिस प्रशासन के अधिकारी सशस्त्र सेना और लाठीधारी सेना के साथ अस्पताल पर मौजूद रहे । शवपरीक्षण के पश्चात् शवों को जुलूस के रूप में छोटन शुक्ला के मकान पर ले गए । अर्जुन कुमार सिंह, रमेश ठाकुर, शशि शेखर ठाकुर, राम बाबू सिंह, हरेन्द्र सिंह, विजय कुमार शुक्ला **उर्फ** मुन्ना शुक्ला और अन्य व्यक्ति इस जुलूस का नेतृत्व कर रहे थे और सिविल और पुलिस प्रशासन के अधिकारी व्यवस्था बनाए हुए थे । जब यह जुलूस छोटन शुक्ला के मकान पर पहुंचा, श्री आनन्द मोहन (विधायक) और लवली आनन्द (संसद् सदस्य) और वहां मौजूद अन्य व्यक्तियों ने छोटन शुक्ला के शव पर फूल डाले । लगभग 3.30 बजे अपराह्न में छोटन शुक्ला का शव जुलूस के साथ उसके पैतृक गृह ग्राम जलालपुर, थाना लालगंज, जिला वैशाली ले गए जहां पर लगभग 5000 व्यक्ति एकत्र हो गए । इसके पश्चात्, आनन्द मोहन, लवली आनन्द, प्रोफेसर अरुण कुमार सिंह, अखलाक अहमद, हरेन्द्र कुमार, रामेश्वर विप्लवी और अन्य व्यक्तियों ने जुलूस का नेतृत्व किया और वे सभी अलग-अलग यानों में थे । आनन्द मोहन और लवली आनन्द अपनी कंटेसा कार में थे । जुलूस के आगे-आगे एक एम्बेसडर कार और एक सफेद रंग की जिप्सी चल रही थी । जब जुलूस भगवानपुर चौक पर पहुंचा छोटन शुक्ला का शव थोड़ी देर के लिए रख दिया गया और आनन्द मोहन, लवली आनन्द और प्रोफेसर अरुण कुमार ने छोटन शुक्ला और अन्य व्यक्तियों की हत्या का बदला लेने और यदि प्रशासन इस संबंध में कोई बाधा उत्पन्न करे

तो उसे सबक सिखाने के लिए भीड़ को उकसाते हुए भाषण दिया । भाषण सुनने के पश्चात्, लोग आक्रामक हो गए । इसके पश्चात् जुलूस भगवानपुर चौक की ओर से राष्ट्रीय राजमार्ग के रास्ते रामदयाल नगर की ओर चल दिया । लगभग 4.15 बजे अपराह्न में खबरा ग्राम के निकट राष्ट्रीय राजमार्ग पर आया, जुलूस के बीच "मारो-मारो" की आवाज सुनाई दी । जब इत्तिलाकर्ता अन्य अधिकारियों के साथ उस स्थान पर पहुंचा जहां से चिल्लाने की आवाज आ रही थी, उन्होंने देखा कि सड़क के दाईं ओर जी. कृष्णय्या, जिला मजिस्ट्रेट गोपालगंज की कार (जो सामने की ओर से आ रही थी) उलट गई और जिला मजिस्ट्रेट जमीन पर पड़ा हुआ था । उन्होंने आनन्द मोहन, लवली आनन्द, प्रोफेसर अरुण कुमार सिंह को भी देखा और कुछ अन्य व्यक्ति भुटकन शुक्ला (जो छोटन शुक्ला का भाई है) को जिला मजिस्ट्रेट की हत्या करने और बदला लेने के लिए उकसा रहे थे । इसके पश्चात् भुटकन शुक्ला ने अपनी कमर से रिवाल्वर निकाला और तीन फायर किए और इसके पश्चात् भीड़ में घुस गया । जिला मजिस्ट्रेट क्षतिग्रस्त हो गया था । स्थिति की गंभीरता को देखते हुए, उपखंड अधिकारी, मुजफ्फरपुर (पूर्व) ने लाठीचार्ज का आदेश दिया और पुलिस तथा अन्य अधिकारियों ने भीड़ पर लाठियां मारनी शुरू कर दीं । जिला मजिस्ट्रेट, गोपालगंज को उपचार के लिए जिप्सी से एस. के. एम. कालेज अस्पताल भेजा । जिला वैशाली के मुख्यालय को इस घटना के संबंध में वायरलैस के माध्यम से सूचना भेजी । इसी दौरान, हमलावर हाजीपुर भाग गए और इत्तिलाकर्ता तथा उपखंड अधिकारी मुजफ्फरपुर (पूर्व) ने हमलावरों को पीछा किया और वे हाजीपुर पहुंचे जहां पर आनन्द मोहन और लवली आनन्द सहित 15 व्यक्तियों को हाजीपुर पुलिस द्वारा पकड़ा गया । सभी 15 व्यक्तियों को गिरफ्तार किया गया और उनके यानों को अभिगृहीत किया गया । इत्तिलाकर्ता के मुजफ्फरपुर वापस आने के पश्चात्, उसे यह सूचना मिली कि जिला मजिस्ट्रेट गोपालगंज की मृत्यु एस. के. एम. कालेज अस्पताल में हो गई है ।

3. प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के अनुसरण में अन्वेषण किया गया और 36 अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया गया । विद्वान् मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, मुजफ्फरपुर ने मामला सेशन न्यायालय के सुपुर्द कर दिया । सेशन न्यायालय ने श्री जी. कृष्णय्या, जिला मजिस्ट्रेट, गोपालगंज (जिसे संक्षेप में "मृतक" कहा गया है) की हत्या कारित करने के सामान्य उद्देश्य के साथ विधिविरुद्ध जमाव का सदस्य होने के लिए सभी 36

अभियुक्तों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 302/149 और धारा 147 के अधीन आरोप विरचित किए तथा फोटोग्राफर, अंगरक्षक और मृतक के चालक की हत्या का प्रयास कारित करने के सामान्य आशय के साथ विधिविरुद्ध जमाव का सदस्य होने के लिए दंड संहिता की धारा 307/149 के अधीन आरोप विरचित किया । सभी 36 अभियुक्तों को मृतक की हत्या कारित किए जाने को दुष्प्रेरित करने के लिए 302/109 के अधीन अपराध के लिए भी आरोपित किया । आनंद मोहन, लवली आनंद और प्रोफेसर अरुण कुमार सिंह (क्रमशः अभियुक्त सं. 1, अभियुक्त सं. 2 और अभियुक्त सं. 3) को दंड संहिता की धारा 302/114 के अधीन भी आरोपित किया गया ।

4. विचारण के दौरान, अभियोजन पक्ष ने कुल मिलाकर 25 साक्षियों की परीक्षा की है । अभि. सा. 1 से अभि. सा. 14 पुलिस अधिकारी हैं जो घटना के घटित होने के समय तक जुलूस के साथ या जुलूस के पीछे चलते हुए बताए गए हैं । अभि. सा. 15, अभि. सा. 16 और अभि. सा. 23 चिकित्सक हैं जिन्होंने क्षति रिपोर्टें और शवपरीक्षण रिपोर्ट साबित किए हैं । अभि. सा. 17 और अभि. सा. 21 क्रमशः मृतक के चालक और अंगरक्षक हैं । अभि. सा. 18 और अभि. सा. 19 न्यायालयिक प्रयोगशाला, पटना के क्रमशः निदेशक और कर्मचारी हैं जिन्होंने रक्त-रंजित मिट्टी और कांच के टुकड़े घटनास्थल से एकत्र किए थे । अभि. सा. 20 कार्यपालक मजिस्ट्रेट है जो जुलूस के साथ था । अभि. सा. 22 सहायक उप निरीक्षक, जिला मुजफ्फरपुर है जिसने तारीख 14 दिसम्बर, 1994 से 16 दिसम्बर, 1994 तक अन्वेषण किया । अभि. सा. 25 अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक, मुजफ्फरपुर है, जिसने कुछ घंटों के लिए मामले का अन्वेषण किया है और अभि. सा. 24 द्वितीय अन्वेषक अधिकारी है । प्रतिरक्षा पक्ष ने भी विचारण के दौरान 12 साक्षियों की परीक्षा की है ।

5. अपर सेशन न्यायाधीश - I , पटना (संक्षेप में "विचारण न्यायालय" कहा गया है) ने आनंद मोहन, लवली आनंद, प्रोफेसर अरुण कुमार सिंह, अखलाक अहमद, विजय कुमार शुक्ला **उर्फ** मुन्ना शुक्ला, हरेन्द्र कुमार **उर्फ** हरेन्द्र प्रसाद साही और शशि शेखर ठाकुर (क्रमशः अभियुक्त सं. 1, अभियुक्त सं. 2, अभियुक्त सं. 3, अभियुक्त सं. 4, अभियुक्त सं. 5, अभियुक्त सं. 6 और अभियुक्त सं. 7) दंड संहिता की धारा 147, 302/149, 307/149 और 427/149 के अधीन दोषी पाया । विचारण न्यायालय ने भी आनंद मोहन, लवली आनंद, प्रोफेसर अरुण कुमार सिंह

और अखलाक अहमद (क्रमशः अभियुक्त सं. 1, अभियुक्त सं. 2, अभियुक्त सं. 3 और अभियुक्त सं. 4) को भी दंड संहिता की धारा 302/109 के अधीन हत्या का दुष्प्रेरण कारित करने के अपराध का दोषी अभिनिर्धारित किया है । विचारण न्यायालय ने शेष अभियुक्तों अर्थात् अभियुक्त सं. 8 से अभियुक्त सं. 36 को सभी आरोपों से दोषमुक्त कर दिया है । दंडादेश के प्रश्न पर सुनवाई किए जाने के पश्चात्, विचारण न्यायालय ने अभियुक्त सं. 1, अभियुक्त सं. 3 और अभियुक्त सं. 4 को दंड संहिता की धारा 302/149 और धारा 302/109 के अधीन अपराध कारित करने के लिए मृत्यु दंडादेश दिया और दंड संहिता की धारा 147 के अधीन अपराध कारित किए जाने के लिए एक वर्ष का कठोर कारावास, दंड संहिता की धारा 307/147 के अधीन पांच वर्ष का कठोर कारावास और दंड संहिता की धारा 427/149 के अधीन अपराध के लिए एक वर्ष का कठोर कारावास भोगने का दंडादेश दिया और सभी दंडादेशों के साथ-साथ चलने का निदेश दिया । तथापि, विचारण न्यायालय ने अभियुक्त सं. 2 को दंड संहिता की धारा 302/149 और धारा 302/109 के अधीन आजीवन कारावास और 25,000/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने, धारा 147 के अधीन अपराध कारित करने के लिए एक वर्ष का कठोर कारावास, दंड संहिता की धारा 307/149 के अधीन अपराध के लिए पांच वर्ष का कठोर कारावास और दंड संहिता की धारा 427/149 के अधीन अपराध के लिए एक वर्ष का कठोर कारावास भोगने का दंडादेश दिया और सभी दंडादेशों को साथ-साथ चलाए जाने का निदेश दिया और जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम किए जाने पर दो वर्ष की अवधि का साधारण कारावास भोगने का दंडादेश दिया । विचारण न्यायालय ने दंड संहिता की धारा 302/149 के अधीन अपराध के लिए अभियुक्त सं. 5, अभियुक्त सं. 6 और अभियुक्त सं. 7 को आजीवन कारावास का दंडादेश दिया और प्रत्येक को 25,000/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने का दंडादेश दिया, दंड संहिता की धारा 307/149 के अधीन अपराध के लिए पांच वर्ष का कठोर कारावास भोगने, दंड संहिता की धारा 147 के अधीन एक वर्ष का कठोर कारावास भोगने और दंड संहिता की धारा 427/149 के अधीन अपराध के लिए एक वर्ष का कठोर कारावास भोगने का दंडादेश दिया और जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम किए जाने पर दो वर्ष का साधारण कारावास भोगने का दंडादेश दिया और सभी दंडादेशों के साथ-साथ चलाए जाने का निदेश दिया ।

6. अभियुक्त सं. 1, अभियुक्त सं. 3 और अभियुक्त सं. 4 को दिया

गया मृत्यु दंडादेश उच्च न्यायालय को निर्दिष्ट किया गया । दोषसिद्ध किए गए व्यक्तियों द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष दांडिक अपीलें भी फाइल की गईं । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित एक ही निर्णय में यह अभिनिर्धारित किया है कि अभियोजन पक्ष ने मृतक या अन्य किसी व्यक्ति की मृत्यु कारित करने के सामान्य उद्देश्य के साथ विधिविरुद्ध जमाव के मामले को सिद्ध नहीं किया है और इस प्रकार दंड संहिता की धारा 147 और धारा 302/149 के अधीन कोई भी दोषसिद्धि नहीं की जा सकती है । तथापि, उच्च न्यायालय ने अभि. सा. 1, अभि. सा. 3, अभि. सा. 4, अभि. सा. 9, अभि. सा. 10 और अभि. सा. 14 के साक्ष्य के आधार पर यह अभिनिर्धारित किया है कि अभियुक्त सं. 1 ने गोली चलाने वाले अकेले व्यक्ति को मृतक की हत्या करने के लिए उकसाया है और केवल वही दंड संहिता की धारा 302/109 के अधीन हत्या के दुष्प्रेरण के अपराध का दोषी है । तदनुसार, उच्च न्यायालय ने अभियुक्त सं. 2 से अभियुक्त सं. 7 को सभी आरोपों से दोषमुक्त किया है और अभियुक्त सं. 1 की दोषसिद्धि को बनाए रखा है किन्तु अभियुक्त सं. 1 के मृत्यु दंडादेश को कठोर आजीवन कारावास में परिवर्तित कर दिया है ।

7. इस आदेश से व्यथित होकर, अभियुक्त सं. 1 ने 2009 की दांडिक अपील सं. 1804-1805 फाइल की जिनमें उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय को इसलिए चुनौती दी है कि उच्च न्यायालय ने दंड संहिता की धारा 302/109 के अधीन उसकी दोषसिद्धि को कायम रखा है और उस पर कठोर आजीवन कारावास का दंड अधिरोपित किया है । बिहार राज्य ने 2009 की दांडिक अपील सं. 1536, 1537, 1538, 1539, 1540, 1541, 1542 और 1806 फाइल की हैं जिनमें उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय को इसलिए चुनौती दी है कि उसने अभियुक्त सं. 2 से अभियुक्त सं. 7 की दोषमुक्ति की है और अभियुक्त सं. 1 को दिए गए मृत्यु दंडादेश को आजीवन कारावास में परिवर्तित किया है ।

दलीलें :

8. अभियुक्त सं. 1 की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री राम जेठमलानी ने यह दलील दी है कि यह घटना तारीख 5 दिसम्बर, 1994 को 4.15 बजे अपराह्न में घटित हुई है और इसके तत्काल पश्चात् सूचना जिला मुख्यालय, वैशाली को वायरलैस द्वारा भेजी गई थी और इस प्रकार यह सूचना वास्तविक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट है और इससे घटना का प्रथम वृत्तांत प्रकट होता है । काउंसेल ने दृढ़तापूर्वक यह

दलील दी है कि वायरलैस-संदेश जिला वैशाली के जिला मुख्यालय को घटना के तत्काल पश्चात् भेजा गया था जिसमें स्पष्ट रूप से यह कथन किया गया था कि जो व्यक्ति छोटन शुक्ला के दाह-संस्कार के जुलूस में शामिल हुए थे उन्होंने रिवाल्वर से मृतक पर गोलियां चलाकर उसे क्षतिग्रस्त किया था और वे विभिन्न यानों से हाजीपुर की ओर भाग गए थे और यही मामले की वास्तविक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट है किन्तु उच्च न्यायालय ने मामले की इस वास्तविक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट पर विचार नहीं किया है ।

9. काउंसेल ने यह दलील दी है कि इस वायरलैस संदेश के बजाय इत्तिलाकर्ता अभि. सा. 14 की टाइप की हुई रिपोर्ट को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट माना गया है । उन्होंने यह दलील दी है कि अभि. सा. 14 की टाइप की हुई रिपोर्ट जिसे प्रथम इत्तिला रिपोर्ट माना गया है, पुलिस थाना, सदर में तारीख 5 दिसम्बर, 1994 को 10.10 बजे अपराह्न में दर्ज कराई गई बताई गई है किन्तु अभि. सा. 11 के साक्ष्य से यह दर्शित होता है कि इत्तिलाकर्ता अभि. सा. 14 तारीख 6 दिसम्बर, 1994 को 2.00 बजे पूर्वाह्न के पश्चात् ही मुजफ्फरपुर को वापस चला गया था । उन्होंने यह दलील दी है कि उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय पर यह विचार किया है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में उप पुलिस अक्षीक्षक श्री धीरज कुमार के नाम का उल्लेख अन्वेषक अधिकारी के रूप में किया गया है जिसने छुट्टी से लौटने के पश्चात् तारीख 6 दिसम्बर, 2004 को कार्यभार संभाला था और इस मामले का अन्वेषण प्रथम अन्वेषक अधिकारी (अभि. सा. 25) से 8.15 बजे पूर्वाह्न में ग्रहण किया था । उन्होंने यह दलील दी है कि इन सभी तथ्यों से स्पष्ट रूप से यह सिद्ध होता है कि केवल प्रथम इत्तिला रिपोर्ट ही तारीख पूर्व और समय पूर्व अर्थात् 5 दिसम्बर, 1993, 10.10 बजे अपराह्न की नहीं है अपितु अभि. सा. 14 द्वारा अभियुक्त सं. 1 और उसकी राजनीतिक पार्टी के सदस्यों के विरुद्ध राजनीतिक उच्च अधिकारियों के कहने पर मिथ्या अभिकथन करके गढ़ी गई है । उन्होंने यह दलील दी है कि उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि यह संदेह करने के लिए साक्ष्य है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट तारीख पूर्व की और समय पूर्व की है जिससे यह निष्कर्ष निकलना चाहिए कि संपूर्ण अभियोजन पक्षकथन, जैसा कि अभि. सा. 14 द्वारा प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में कहा गया है, मिथ्या है ।

10. श्री जेठमलानी ने यह भी दलील दी है कि उच्च न्यायालय ने

अभियोजन का यह वृत्तांत ठीक ही खारिज किया है कि मृतक की हत्या के उद्देश्य के साथ विधिविरुद्ध जमाव गठित किया गया था, अतः दंड संहिता की धारा 147 और 302/149 के अधीन अपराध किसी भी अभियुक्त के विरुद्ध नहीं बनता है । उन्होंने यह दलील दी है कि इस निष्कर्ष पर पहुंचने पर, उच्च न्यायालय अभियुक्त सं. 1 को इस आधार पर दंड संहिता की धारा 302/109 के अधीन हत्या के दुष्प्रेरण के अपराध का दोषी ठहरा ही नहीं सकता था कि अभियुक्त सं. 1 ने हत्या कारित करने के लिए भटकन शुक्ला को उकसाया था । उन्होंने यह दलील दी है कि लगभग सभी अभियोजन साक्षियों ने यह अभिकथन किया है कि मृतक पर भटकन शुक्ला द्वारा गोली नहीं चलाई गई थी जब वह क्षतिग्रस्त अवस्था में जमीन पर पड़ा हुआ था किन्तु चिकित्सीय साक्ष्य से यह सिद्ध होता है कि उस पर उस समय गोली चलाई गई थी जब वह खड़ा हुआ था और इस प्रकार अभियोजन साक्षियों ने वास्तव में घटना नहीं देखी है और न ही उन्होंने अभियुक्त सं. 1 द्वारा मृतक की हत्या करने के लिए भटकन शुक्ला को किसी भी प्रकार से उकसाने वाली बात नहीं सुनी थी । उन्होंने यह दलील दी है कि उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाल कर कि अभि. सा. 11 मिथ्या साक्षी है, ऐसे अन्य साक्षियों पर विश्वास नहीं कर सकता था जिन्होंने उस बात का समर्थन किया है जो अभि. सा. 11 द्वारा उसके साक्ष्य में कही गई है । उन्होंने अभि. सा. 11 द्वारा तैयार की गई पुलिस थाने की डायरी प्रविष्टि सं. 92, 94, 97 और 102 का अवलंब लिया है जिससे यह दर्शित होता है कि अभि. सा. 11 छोटन शुक्ला की शव यात्रा में शामिल ही नहीं था अपितु वह किसी अन्वेषण के संबंध में विश्वविद्यालय गया हुआ था जहां पर वह पुलिस अधिकारी के रूप में तैनात था ।

11. उन्होंने यह दलील दी है कि उच्च न्यायालय इस पर विचार करने में असफल रहा है कि अभियुक्त सं. 1 सफेद रंग की कंटेसा कार में अपनी पत्नी अभियुक्त सं. 2 के साथ था जो जुलूस के लगभग आगे की ओर किन्तु पुलिस कार के पीछे चल रही थी और छोटन शुक्ला और एक अन्य व्यक्ति के शव को लेकर टाटा मैक्सी चल रही थी, जुलूस के पीछे की ओर से "मारो-मारो" की आवाज आई और सभी साक्षियों ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि जब वे वहां पहुंचे तब उन्होंने देखा कि कार उलटी हुई पड़ी है और मृतक जमीन पर क्षतिग्रस्त पड़ा हुआ है । उन्होंने यह दलील दी है कि अभियुक्त सं. 1 (आनंद मोहन) के अपनी कंटेसा कार से बाहर आकर घटनास्थल पर पहुंचने के पूर्व ही मृतक की मृत्यु हो चुकी थी

और अभियोजन का यह संपूर्ण वृत्तांत अवश्य ही मिथ्या होना चाहिए कि मृतक की हत्या करने के लिए अभियुक्त सं. 1 ने भटकन शुक्ला को उकसाया था ।

12. श्री जेठमलानी ने यह दलील थी कि उच्च न्यायालय निम्नलिखित परिस्थितियों का मूल्यांकन करने में असफल रहा है :–

(i) इस संबंध में कोई साक्ष्य नहीं है कि अभियुक्त सं. 1 मृतक को जानता था और इसलिए जब मृतक की कार विपरीत दिशा से आई और कंटेसा कार जिसमें अभियुक्त सं. 1 बैठा हुआ था, के आगे से गुजरी तब उसे यह पता नहीं था कि वह मृतक ही है जो कार में बैठा हुआ है और इस बात का कोई कारण नहीं है कि उसने मृतक की हत्या करने के लिए किसी भी व्यक्ति को उकसाया था ;

(ii) इस संबंध में कोई साक्ष्य नहीं है कि अभियुक्त सं. 1 अपनी कंटेसा कार से निकलकर बाहर आया जो जुलूस के आगे-आगे चल रही थी और मृतक की हत्या के उकसाने के लिए जुलूस की पीछे की ओर गया ;

(iii) अभियुक्त सं. 1 द्वारा प्रकोपनकारी भाषण भगवानपुर चौक पर दिया गया था और पुलिस अधिकारी ही ऐसे साक्षी हैं जिन्होंने अभियुक्त सं. 1 द्वारा दिए गए इस प्रकोपनकारी भाषण के संबंध में अभिसाक्ष्य दिया है और उनका यह अभिसाक्ष्य कि भाषण प्रकोपनकारी था यह केवल पुलिस अधिकारियों का अपना मत है और इस प्रकार उच्च न्यायालय ने अभियुक्त सं. 1 को दोषसिद्ध करने के लिए उसके प्रकोपनकारी भाषण का अवलंब न लेकर ठीक ही किया है ;

(iv) गोली चलाने के लिए भटकन शुक्ला को अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा उकसाए जाने के संबंध में दिए गए साक्षियों के साक्ष्य में विरोधाभास हैं और इस प्रकार उच्च न्यायालय को अभियोजन के इस वृत्तांत को अभिखंडित कर देना चाहिए था कि अभियुक्त सं. 1 ने मृतका की हत्या करने के लिए भटकन शुक्ला को उकसाया था ।

(v) अभियोजन का यह वृत्तांत कि जुलूस प्रशासन से बदला लेना चाहता था, स्वतंत्र साक्षी उपखंड अधिकारी श्री तारा रजक (अभि. सा. 12) द्वारा, जो जुलूस के साथ-साथ चल रहा था, मिथ्या ठहराया गया है ;

(vi) उच्च न्यायालय ने मृतक के चालक और अंगरक्षक क्रमशः अभि. सा. 17 और अभि. सा. 21 के साक्ष्य पर विचार नहीं किया है जिन्होंने अभियोजन पक्षकथन का समर्थन नहीं किया है ।

उन्होंने यह दलील दी है कि यदि उच्च न्यायालय ने इन परिस्थितियों पर विचार किया होता, तो वह अभियुक्त सं. 1 को सभी आरोपों से दोषमुक्त कर देता ।

13. बिहार राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री रंजीत कुमार ने यह दलील दी है कि न्यायालय को उन तथ्यों का मूल्यांकन करना चाहिए था जिनके कारण इस मामले की घटना घटित हुई है । उन्होंने यह दलील दी है कि छोटन शुक्ला बिहार पीपुल्स पार्टी की ओर से राज्य विधान सभा निर्वाचन में उम्मीदवार था और अभियुक्त सं. 1 तथा अभियुक्त सं. 2 इस पार्टी के नेता हैं और तारीख 4 दिसंबर, 1994 को छोटन शुक्ला और उसके चार सहयोगियों की मुजफ्फरपुर में कुछ अज्ञात व्यक्तियों द्वारा हत्या कर दी गई । उन्होंने यह दलील दी है कि तारीख 5 दिसंबर, 1994 को एस. के. एम. कालेज अस्पताल पर छोटन शुक्ला और अन्य व्यक्तियों के शव, शवपरीक्षण के लिए लाए गए थे और वहां पर जो भीड़ एकत्र हुई थी वह बिहार पीपुल्स पार्टी के लोग थे और जो जुलूस छोटन शुक्ला और अन्य व्यक्तियों के शवों के साथ निकाला गया था उसका उद्देश्य अभियुक्त सं. 1, अभियुक्त सं. 2 तथा उनके सहयोगियों द्वारा राजनैतिक शक्ति दर्शाना था । उन्होंने यह दलील दी है कि अभियुक्त सं. 1, अभियुक्त सं. 2 और बिहार पीपुल्स पार्टी के अन्य व्यक्तियों द्वारा भगवानपुर चौक पर दिए गए प्रकोपनकारी भाषण ने रक्तपात द्वारा बदला लेने के लिए लगभग 5000 व्यक्तियों की भीड़ की भावनाओं को भड़काया और सामने आ रही मृतक की कार पर हिंसा किए जाने का यही कारण था और उस समय जुलूस ग्राम खाबरा के निकट पहुंचा था । उन्होंने यह दलील दी है कि हिंसक भीड़ ने कार में बैठे व्यक्तियों को बाहर खींच लिया, उनकी पीटाई की, कार को उलट दिया और अंत में भटकन शुक्ला ने मृतक को अभियुक्त सं. 1 से अभियुक्त सं. 4 के उकसाए जाने पर गोली मार दी क्योंकि मृतक राज्य प्रशासन का प्रतिनिधित्व कर रहा था । उन्होंने यह दलील दी है कि उच्च न्यायालय ने इन पृष्ठभूमिक तथ्यों का मूल्यांकन नहीं किया है जिनके कारण मृतक की हत्या हुई और उच्च न्यायालय ने अभियुक्त सं. 2 से अभियुक्त सं. 7 को दोषमुक्त कर दिया है और केवल अभियुक्त सं. 1 को दंड संहिता की धारा 302/109 के अधीन

दोषसिद्ध किया है ।

14. श्री जेठमलानी ने यह दलील दी है कि वायरलैस-संदेश जिला मुख्यालय, वैशाली को तारीख 5 दिसंबर, 1994 को घटना के तत्काल पश्चात् भेजा गया था और वह संदेश वास्तविक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट है जिसका उत्तर देते हुए श्री रंजीत कुमार ने यह दलील दी है कि वायरलैस-संदेश अत्यंत अस्पष्ट था और उसे प्रथम इत्तिला रिपोर्ट नहीं माना जा सकता है । उन्होंने **बिनय कुमार सिंह और अन्य** बनाम **बिहार राज्य**[1] वाले मामले में किए गए इस न्यायालय के विनिश्चय को उद्धृत किया है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी किसी से प्राप्त की गई ऐसी किसी भी अस्पष्ट सूचना को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के रूप में स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं है जिससे कोई भी प्रामाणिक संज्ञेय अपराध कारित किया जाना प्रकट न होता हो और भारसाधक अधिकारी घटना से संबंधित और अधिक ब्यौरे, यदि उपलब्ध हों, प्राप्त करने के लिए स्वतंत्र है ताकि वह इस पर विचार कर सके कि क्या ऐसा कोई संज्ञेय अपराध कारित किया गया है या नहीं जिसमें अन्वेषण की आवश्यकता हो ।

15. प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने में हुए विलंब के संबंध में, उन्होंने इत्तिलाकर्ता (अभि. सा. 14) के साक्ष्य को निर्दिष्ट किया है जिससे यह दर्शित होता है कि सबसे पहले उसे मृतक को जिप्सी कार से उपचार के लिए एस. के. एम. कालेज अस्पताल भेजना पड़ा था और उसे अभियुक्त व्यक्तियों को गिरफ्तार करने के लिए हाजीपुर जाना पड़ा था और अभियुक्त व्यक्तियों को अभिरक्षा में हाजीपुर लाने के पश्चात् ही वह मुजफ्फरपुर वापस आया और उसने टाइप की हुई रिपोर्ट तैयार की तथा उसे प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के रूप में पुलिस थाना, सदर में रात्रि में ही लगभग 10.00 बजे अपराह्न में दर्ज कराई । उन्होंने यह दलील दी है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने में हुए विलंब के संबंध में पर्याप्त स्पष्टीकरण दिया गया है । उन्होंने **इरम संतोष रेड्डी और अन्य** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य**[2] वाले मामले को उद्धृत किया है जिसमें प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने में छह घंटों का विलंब हुआ है और अभियोजन पक्ष ने यह स्पष्ट किया है कि पुलिस को छापा मारना पड़ा था, बरामदगियां करनी

---

[1] 1997) 1 एस. सी. सी. 283.

[2] (1991) 3 एस. सी. सी. 206.

थीं और इसके पश्चात् संबद्ध पुलिस थाने में रिपोर्ट प्रस्तुत करनी थी और इन तथ्यों के आधार पर इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने में हुए विलंब के कारण कोई भी प्रतिकूल निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है । उन्होंने यह दलील दी है कि **अमर सिंह** बनाम **बलविन्दर सिंह और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने में घटना के समय से 26 घंटों का हुआ विलंब अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य से पूर्णतया स्पष्ट हो गया है, अतः अभियोजन पक्ष के विरुद्ध कोई भी प्रतिकूल निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है ।

16. श्री रंजीत कुमार ने यह दलील दी है कि चिकित्सीय साक्ष्य से संपूर्ण प्रत्यक्ष साक्ष्य असंभावी नहीं होता है । उन्होंने यह तर्क दिया है कि विभिन्न साक्षियों के प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य में यह उल्लेख है कि भटकन शुक्ला भीड़ से निकलकर बाहर आया और उसने तीन गोलियां चलाईं और अभि. सा. 16 ने, जिसने शव-परीक्षा की है, यह कथन किया है कि मृतक के शव में गोली से कारित की हुई तीन क्षतियां पाई गई हैं । उन्होंने यह दलील दी है कि पहली गोली लगने के पश्चात् मानव शरीर की क्या स्थिति होगी यह कोई भी अनुमान नहीं लगा सकता है और इसीलिए मृतक के शरीर में पाई गई ऐसी क्षतियों की प्रकृति से, जो निकट से गोली चलाकर कारित की गई थी, यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि मृतक के जमीन पर गिरने के पश्चात् उस पर गोली नहीं चलाई जा सकती थी, जैसा कि श्री जेठमलानी ने दलील दी है । उन्होंने **अब्दुल सईद** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय को उद्धृत किया है जिसमें यह प्रतिपादना की गई है कि प्रत्यक्षदर्शी परिसाक्ष्य चिकित्सीय साक्ष्य की तुलना में अधिक महत्व रखता है । उन्होंने यह दलील दी है कि वर्तमान मामले में प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य की सच्चाई को नकारने के लिए चिकित्सीय साक्ष्य का उपयोग नहीं किया जा सकता ।

17. उन्होंने यह दलील दी है कि इस मामले में मौखिक साक्ष्य इस संबंध में संगत है कि अभियुक्त सं. 1, अभियुक्त सं. 2, अभियुक्त सं. 3 और अभियुक्त सं. 4 ने न केवल प्रशासन के विरुद्ध प्रकोपनकारी भाषण दिए हैं और रक्तपात करने के लिए भीड़ की भावनाओं को भड़काया है

---

[1] (2003) 2 एस. सी. सी. 518.

[2] (2010) 10 एस. सी. सी. 259.

अपितु भटकन शुक्ला को मृतक पर जो राज्य प्रशासन का प्रतिनिधित्व कर रहा था, गोली चलाने के लिए भी उकसाया है । उन्होंने अभि. सा. 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 10, 11, 12, 13 और 14 के साक्ष्य को निर्दिष्ट किया है जिन्होंने प्रकोपनकारी भाषणों और अभियुक्त सं. 1 से अभियुक्त सं. 4 को उकसाए जाने के बारे में अभिसाक्ष्य दिया है । उन्होंने **मसलती** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले को उद्धृत किया है जिसमें इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है जब दांडिक न्यायालय को बड़ी संख्या में अपराधियों और आहतों से संबंधित अपराध कारित किए जाने के बारे में साक्ष्य पर विचार करना होता है तब आम तौर पर यह तरीका अपनाया जाता है कि दोषसिद्धि केवल तभी कायम रखी जा सकती है जब उसका ऐसे दो या तीन या उससे अधिक साक्षियों द्वारा समर्थन होता हो जिन्होंने घटना का संगत रूप से वर्णन किया है । उन्होंने **बिनय कुमार सिंह और अन्य** बनाम **बिहार राज्य** (उपरोक्त) और **अब्दुल सईद** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** (उपरोक्त) वाले मामले में किए गए इस न्यायालय के विनिश्चयों को भी निर्दिष्ट किया है जिनमें उस कसौटि को अपनाया गया है जिसे **मसलती** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** (उपरोक्त) वाले मामले में दोहराया गया है । उन्होंने यह दलील दी है कि दुर्भाग्यवश उच्च न्यायालय ने पुलिस साक्षियों को अविश्वसनीय ठहराया है और असैनिक अधिकारियों के ही साक्ष्य को वरियता दी है और अभियुक्त सं. 2 से अभियुक्त सं. 7 को सभी आरोपों से दोषमुक्त किया है और केवल अभियुक्त सं. 1 की दोषसिद्धि को कायम रखा है यद्यपि अभियुक्त सं. 2 से अभियुक्त सं. 7 के विरुद्ध पर्याप्त साक्ष्य है । उन्होंने **गिरजा प्रसाद** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[2] वाले मामले को उद्धृत किया है जिसमें इस न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि विधि के अनुसार ऐसा नहीं है कि पुलिस साक्षियों पर विश्वास न किया जाए और उनके साक्ष्य को तब तक स्वीकार न किया जब तक कि महत्वपूर्ण विशिष्टियों पर अन्य स्वतंत्र साक्षियों के साक्ष्य से उसकी संपुष्टि न हो जाए ।

18. उन्होंने यह दलील दी है कि उच्च न्यायालय ने भी अभियुक्त सं. 1 से अभियुक्त सं. 7 को इस आधार पर दंड संहिता की धारा 147 और 302/149 के अधीन आरोपों से दोषमुक्त किया है कि मृतक या अन्य किसी व्यक्ति की हत्या कारित करने के सामान्य उद्देश्य के साथ कोई भी

---

[1] [1964] 8 एस. सी. आर. 133.

[2] (2007) 7 एस. सी. सी. 625.

विधिविरुद्ध जमाव गठित नहीं किया गया था । उन्होंने **सिकन्दर सिंह और अन्य** बनाम **बिहार राज्य**[1] और **वीरेन्द्र सिंह** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[2] वाले मामले में किए गए विनिश्चयों को यह दलील देते हुए उद्धृत किया है कि अभियुक्त सं. 1 से अभियुक्त सं. 7 ने मृतक और कार में बैठे अन्य व्यक्तियों की अचानक हत्या के सामान्य आशय के साथ विधिविरुद्ध जमाव गठित किया है ।

19. उन्होंने **रिजान और अन्य** बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य**[3] वाले मामले में किए गए इस न्यायालय के विनिश्चय का अवलंब यह दलील देते हुए लिया है कि संप्रेक्षण की सामान्य गलतियां स्मरणशक्ति की सामान्य त्रुटियां समय बीतने के साथ-साथ हो जाती हैं और घटना के समय पहुंची मानसिक क्षति के कारण साधारण विरोधाभास साक्ष्य में आ ही जाते हैं किन्तु इन विरोधाभासों से किसी साक्षी का साक्ष्य असत्य नहीं हो जाता है और केवल सारभूत विरोधाभास के आधार पर ही किसी पक्षकार की विश्वसनीयता प्रभावित हो सकती है । उन्होंने यह दलील दी है कि ऐसे विभिन्न साक्षियों के साक्ष्य में, जिन्होंने घटना का वैसा ही वर्णन किया है जैसा कि उन्होंने घटना के समय विभिन्न स्थानों से घटना को देखा था, उच्च न्यायालय ने छोटे-मोटे और साधारण विरोधाभासों को अनदेखा किया होता तो यह निष्कर्ष निकलता कि दंड संहिता की धारा 302/149 और 302/109 के अधीन अपराध कारित करने में अभियुक्त सं. 1 से अभियुक्त सं. 7 के आलिप्त होने के संबंध में संगत साक्ष्य दिया है । उन्होंने यह दलील दी है कि इसीलिए उच्च न्यायालय विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्षों को अपास्त नहीं कर सकता था और वह अभियुक्त सं. 1, अभियुक्त सं. 3 और अभियुक्त सं. 4 को दिए गए मृत्यु दंडादेश को भी कायम रखना चाहिए था ।

20. 2009 की दांडिक अपील सं. 1536, 1537, 1538, 1540, 1541 और 1542 में प्रत्यर्थियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री सुरेन्द्र सिंह ने अपने उत्तर में यह दलील दी है कि यह तथ्य कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट घटना के तत्काल पश्चात् अर्थात् तारीख 5 दिसम्बर, 1994 को 4.15 बजे अपराह्न में दर्ज नहीं कराई गई है जिससे

---

[1] (2010) 7 एस. सी. सी. 477.

[2] (2010) 8 एस. सी. सी. 407.

[3] (2003) 2 एस. सी. सी. 661.

यह उपदर्शित होता है कि इत्तिलाकर्ता और अन्य सभी अधिकारियों का, जो जुलूस के साथ चल रहे थे, इस बात से किसी भी प्रकार का कोई संबंध नहीं था कि मृतक की हत्या किसने की । उन्होंने **भगलू लोध और एक अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय को उद्धृत किया है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि इत्तिलाकर्ता द्वारा घटना की तत्काल और समय से की गई विस्तृत रिपोर्ट से उसकी सत्यता सुनिश्चित हो जाती है और जहां बिना किसी स्पष्टीकरण के प्रथम इत्तिला रिपोर्ट विलंब से दर्ज कराई जाती है वहां यह उपधारण किया जा सकता है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में किए गए अभिकथन मिथ्या हैं और उसमें घटनाओं का जो वर्णन किया गया है वह बनावटी है । उन्होंने **अवधेश** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[2] वाले मामले का अवलंब लिया है जिसमें इस न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट विलंब से दर्ज कराई गई थी क्योंकि हमलावरों के नाम मालूम नहीं थे और प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने से पूर्व अत्यधिक सोच-विचार किया गया था और इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अभियोजन पक्ष संदेह के परे अपना पक्षकथन साबित करने में असफल रहा है । उन्होंने **गणेश भवन पटेल** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[3] वाले मामले को भी उद्धृत किया है जिसमें इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत किए जाने में असामान्य विलंब हुआ है और महत्वपूर्ण साक्षियों के कथन अभिलिखित किए जाने में भी विलंब हुआ है जिससे अभियोजन वृत्तांत के संपूर्ण सार की विश्वसनीयता संदिग्ध हो जाती है । उन्होंने यह दलील दी है कि **मरुदानल अगस्ती** बनाम **केरल राज्य**[4] वाले मामले में इस न्यायालय ने अभियुक्त को संदेह का लाभ दिया है और यह पाए जाने पर उसे दोषमुक्त किया है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट कूटरचित है और घटना के काफी समय बाद दर्ज कराई गई है ।

21. उन्होंने यह दलील दी है कि उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष ठीक ही निकाला है कि अभियुक्त सं. 1 से अभियुक्त सं. 7 के विरुद्ध विधिविरुद्ध जमाव का कोई भी मामला नहीं बनता है । उन्होंने यह दलील दी है कि भगवानपुर चौक पर दिए गए भाषण प्रकोपनकारी नहीं हैं अपितु

---

[1] (2011) 13 एस. सी. सी. 2006.

[2] ए. आई. आर. 1988 एस. सी. 1158.

[3] (1978) 4 एस. सी. सी. 371.

[4] (1980) 4 एस. सी. सी. 425.

आलंकारिक हैं और चूंकि कार्यपालक मजिस्ट्रेट जुलूस में पूरे समय मौजूद था इसलिए किसी भी स्थिति में न्यायालय इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता था कि अभियुक्त व्यक्तियों ने भगवानपुर चौक पर या खाबरा पर जहां घटना घटित हुई थी, विधिविरुद्ध जमाव गठित किया था ।

22. उन्होंने अभि. सा. 12 और अभि. सा. 13 के साक्ष्य को निर्दिष्ट किया है जो उपखंड अधिकारी हैं और अभि. सा. 21 जो मृतक का अंगरक्षक है, के साक्ष्यों से यह दर्शित होता है कि इन स्वतंत्र साक्षियों ने मृतक की हत्या करने के लिए भटकन को अभियुक्त सं. 1 से अभियुक्त सं. 7 द्वारा उकसाए जाने के बारे में कोई भी बात नहीं कही है । उन्होंने यह दलील दी है कि अभियोजन साक्षियों का साक्ष्य इस मुद्दे पर संगत नहीं है कि मृतक की हत्या करने के लिए भटकन शुक्ला को किसने उकसाया था, अतः **मसलती** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** (उपरोक्त) वाले मामले में किया गया इस न्यायालय का विनिश्चय वर्तमान मामले के तथ्यों को लागू नहीं होगा । उन्होंने यह दलील दी है कि **जैनुल हक** बनाम **बिहार राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि उकसाए जाने का साक्ष्य स्वयं में एक कमजोर साक्ष्य है और प्रायः लोगों की प्रवृत्ति वास्तविक हमलावर के साथ-साथ अन्य व्यक्तियों को भी आलिप्त करने की होती है कि यह व्यक्ति भी आहत पर हमला करने के लिए हमलावरों को उकसा रहा था और जब तक कि इस संबंध में साक्ष्य स्पष्ट, तर्कसम्मत और विश्वसनीय न हो तब तक उस व्यक्ति के विरुद्ध दुष्प्रेरण के लिए दोषसिद्धि अभिलिखित नहीं की जा सकती है जिसके संबंध में वास्तविक हमलावर को उकसाए जाने का अभिकथन किया गया है । उन्होंने यह दलील दी है कि इस विनिश्चय में अधिकथित विधि की प्रतिपादना और इस तथ्य पर विचार करते हुए कि इस संबंध में विरोधाभास हैं कि मृतक पर गोली चलाने के लिए भटकन शुक्ला को किसने उकसाया था इसलिए अभियुक्त सं. 1 से अभियुक्त सं. 7 की दोषसिद्धि अनुचित नहीं होगी ।

23. उन्होंने यह दलील दी है कि यदि, जैसाकि अभियोजन साक्षियों द्वारा अभिसाक्ष्य दिया गया है कि मृतक उस समय जमीन पर पड़ा हुआ था जब उस पर भटकन शुक्ला ने गोली चलाई थी, तब मृतक पर पहली क्षति किसी भी स्थिति में गोली से कारित नहीं हो सकती थी, अतः साक्षियों ने मिथ्या कथन दिया है । उन्होंने **अवधेश** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** (उपरोक्त)

---

[1] ए. आई. आर. 1974 एस. सी. 45.

वाले मामले को उद्धृत किया है जिसमें इस न्यायालय ने अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य पर चिकित्सक की राय के कारण विश्वास नहीं किया है कि जिस व्यक्ति ने मृतक को क्षतियां कारित की हैं वह मृतक की तुलना में अधिक ऊंचाई पर खड़ा हुआ था और यह चिकित्सीय राय प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के परिसाक्ष्य के साथ पूर्णतया असंगत है और चिकित्सा विशेषज्ञ की राय से अन्य परिस्थिति की संपुष्टि होती है जिससे यह उपदर्शित होता है कि प्रत्यक्षदर्शी साक्षी ने वास्तविक घटना नहीं देखी है । उन्होंने **बुद्ध सिंह** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले का अवलंब लिया है जिसमें न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि चिकित्सीय साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि क्षति की दिशा ऊपर से नीचे की ओर है और इससे अभियोजन साक्षियों के कथन मिथ्या हो जाते हैं कि अभियुक्त और मृतक खड़े हुए थे और एक दूसरे से लड़ रहे थे ।

24. उन्होंने अंतिमतः यह दलील दी है कि उच्च न्यायालय ने इस तथ्य को अनदेखा किया है कि यद्यपि जुलूस मुजफ्फरपुर से चला था और भाषण भगवानपुर चौक पर दिए गए थे फिर भी घटना खाबरा ग्राम में घटित हुई थी और कार पलट गई थी तथा मृतक को जुलूस में शामिल किसी भी व्यक्ति द्वारा गोली नहीं लग सकती थी किन्तु खाबरा ग्राम की भीड़ में से किसी भी व्यक्ति द्वारा गोली लग सकती थी जो जुलूस देखने के लिए शामिल हुआ था ।

25. 2009 की दांडिक अपील सं. 1539 (अभियुक्त सं. 4 अर्थात् अखलाक अहमद) में प्रत्यर्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री नागेन्द्र राय ने यह दलील दी है कि साक्ष्य में यह आया है कि बिहार का मुख्यमंत्री एस. के. एम. कॉलेज और अस्पताल, मुजफ्फरपुर में मौजूद था । काउंसेल ने **ओम प्रकाश** बनाम **हरियाणा राज्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय को उद्धृत किया है जिसमें इस न्यायालय ने घटनास्थल पर लगभग 3 घंटे तक पुलिस उपनिरीक्षक के मौजूद रहने पर विचार किया है और इस तथ्य पर भी विचार किया है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने में हुए लंबे विलंब के संबंध में कोई भी स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है और अभियुक्तों को संदेह का लाभ दिया है । उन्होंने **गणेश भवन पटेल** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** (उपरोक्त) वाले मामले का भी अवलंब

---

[1] ए. आई. आर. 2006 एस. सी. 2500.

[2] (2006) 2 एस. सी. सी. 250.

लिया है जिसमें इस न्यायालय ने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत किए जाने में हुए विलंब पर अभियुक्तों को आरोपों से दोषमुक्त करने के लिए परिस्थिति के रूप में विचार किया है ।

26. उन्होंने यह दलील दी है कि उच्च न्यायालय ने यह ठीक ही अभिनिर्धारित किया है कि मृतक या किसी अन्य व्यक्ति की हत्या के उद्देश्य के साथ कोई भी विधिविरुद्ध जमाव गठित नहीं किया गया था । उन्होंने यह दलील दी है कि अभियुक्त व्यक्ति मृतक की हत्या करने के लिए भटकन शुक्ला के उद्देश्य में भाग नहीं ले सकते थे, अतः ऐसा कोई भी 'सामान्य उद्देश्य' नहीं है जो विधिविरुद्ध जमाव का आवश्यक संघटक हो और इस प्रकार दंड संहिता की धारा 147 और 302/149 के अधीन अपराध अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध नहीं बनते हैं ।

27. उन्होंने अभि. सा. 12, अभि. सा. 13 और अभि. सा. 20 के साक्ष्यों को भी यह दर्शाने के लिए भी निर्दिष्ट किया है कि इन साक्षियों ने अभियोजन के इस पक्षकथन का समर्थन नहीं किया है कि उनके सामने मृतक की हत्या हुई है और उन्होंने अपने साक्ष्य में यह कथन किया है कि उनके घटनास्थल पर पहुंचने से पहले घटना घटित हो चुकी थी । उन्होंने यह दलील दी है कि अभि. सा. 1 ने भी यह कथन किया था कि घटनास्थल पर जहां गोली चलाई गई थी, कोई भी पुलिस कार्मिक नहीं पहुंचा था । उन्होंने यह दलील दी है कि अभि. सा. 21 जो कि मृतक का अंगरक्षक है, और अत्यंत महत्वपूर्ण साक्षी है, ने अभियोजन के पक्षकथन का इस संबंध में समर्थन नहीं किया है कि अभियुक्त सं. 1, अभियुक्त सं. 2, अभियुक्त सं. 3 और अभियुक्त सं. 4 ने मृतक पर गोली चलाने के लिए भटकन शुक्ला को उकसाया था । उन्होंने यह दलील दी है कि यह विश्वास करना कठिन होगा कि यदि मृतक की हत्या पुलिस कार्मिकों की मौजूदगी में होती तो वे उसे नहीं रोकते । उन्होंने अंतिम रूप से यह दलील दी है कि फोटोग्राफर की जो मृतक के साथ था, यद्यपि एक महत्वपूर्ण साक्षी है, न्यायालय में परीक्षा नहीं की गई है और अभियोजन पक्ष के विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए क्योंकि उन्होंने न्यायालय में साक्ष्य देने से फोटोग्राफर को रोका है ।

निष्कर्ष :

28. विनिश्चित किए जाने के लिए पहला प्रश्न यह है कि क्या तारीख 5 दिसम्बर, 1994 को घटना के तत्काल पश्चात् भेजा गया

वायरलैस संदेश वास्तविक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट है जैसा कि प्रतिरक्षा पक्ष की ओर से प्रतिवाद किया गया है या मुजफ्फरपुर सदर पुलिस थाने में अभि. सा. 14 द्वारा पश्चात्वर्ती रूप से दर्ज कराई गई टाइप की हुई रिपोर्ट प्रथम इत्तिला रिपोर्ट है या नहीं, जैसा कि अभियोजन पक्ष द्वारा प्रतिवाद किया गया है । दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 154 की उपधारा (1) जिसमें प्रथम इत्तिला रिपोर्ट का उपबंध किया गया है, निम्न प्रकार कोट की जा रही है :–

> "(1) संज्ञेय अपराध के किए जाने से संबंधित प्रत्येक इत्तिला, यदि पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को मौखिक दी गई है तो उसके द्वारा या उसके निदेशाधीन लेखबद्ध कर ली जाएगी और इत्तिला देने वाले को पढ़कर सुनाई जाएगी और प्रत्येक ऐसी इत्तिला पर, चाहे वह लिखित रूप में दी गई हो या पूर्वोक्त रूप में लेखबद्ध की गई हो, उस व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षर किए जाएंगे जो उसे दे और उसका सार ऐसी पुस्तक में, जो उस अधिकारी द्वारा ऐसे रूप में रखी जाएगी जिसे राज्य सरकार इस निमित्त विहित करे, प्रविष्ट किया जाएगा ।"

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 54 की उपधारा (1) की भाषा से यह स्पष्ट हो जाता है कि संज्ञेय अपराध कारित किए जाने के संबंध में दी गई प्रत्येक सूचना चाहे लिखित रूप में दी गई हो या उसे लिखकर संक्षिप्त किया गया हो, सूचना देने वाले व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षरित की जाएगी । इस प्रकार, वह व्यक्ति जो सूचना देता है और जिसने सूचना पर हस्ताक्षर किए हैं, को यह चुनना होता है कि संज्ञेय अपराध के कारित किए जाने के संबंध में किस विशिष्ट सूचना को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट माना जाए । वर्तमान मामले में, इत्तिलाकर्ता (अभि. सा. 14) ने वायरलैस संदेश को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के रूप में नहीं चुना है अपितु पश्चात्वर्ती टाइप की हुई सूचना को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट माना है और पुलिस ने भी वायरलैस संदेश को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट नहीं माना है अपितु पश्चात्वर्ती टाइप की हुई सूचना को ही प्रथम इत्तिला रिपोर्ट माना है । इसके अतिरिक्त, तारीख 5 दिसम्बर, 1994 को घटना के तत्काल पश्चात् भेजे गए वायरलैस संदेश में केवल यह कथन किया गया है कि छोटन शुक्ला के दाह-संस्कार के लिए निकाले गए जुलूस की भीड़ के साथ शामिल हुए लोगों ने रिवाल्वर से गोली चलाकर मृतक को क्षति पहुंचाई है और वे विभिन्न यानों से हाजीपुर की ओर भाग गए थे । यह वायरलैस संदेश अस्पष्ट था और कारित किए गए अपराध की

प्रकृति को पर्याप्त रूप से प्रकट नहीं करता था, अपराध कारित करने वाले व्यक्तियों की शनाख्त को तो प्रकट करता ही नहीं था । जब तक कि और अधिक सूचना प्राप्त न हो जाती कि मृतक की हत्या सही रूप में किस प्रकार की गई है, तब तक न तो अभि. सा. 14 के लिए प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के रूप में संदेश को दर्ज कराना आवश्यक था और न ही पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी के लिए यह आवश्यक था कि वह उस संदेश को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के रूप में स्वीकार करता । कुछ मामलों में इस न्यायालय द्वारा ऐसी अस्पष्ट सूचना को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट नहीं माना गया है । **शेख इसहाक और अन्य** बनाम **बिहार राज्य**[1] वाले मामले में गुलाबी पासवान ने पुलिस थाने में अस्पष्ट सूचना दी कि ग्राम में होहल्ला (लड़ाई-झगड़ा) हो गया है और गोलियां चल रही हैं और पथराव हो रहा है और इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि इस अस्पष्ट सूचना से संज्ञेय अपराध का कारित किया जाना प्रकट नहीं होता है और न ही इससे यह प्रकट होता है कि हमलावर कौन है और गुलाबी पासवान द्वारा दी गई ऐसी अस्पष्ट सूचना को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 154 के अर्थान्तर्गत प्रथम इत्तिला रिपोर्ट नहीं माना जा सकता है । इसी प्रकार, **बिनय कुमार सिंह और अन्य** बनाम **बिहार राज्य** (उपरोक्त) वाले मामले में रबीन्द्र भगत द्वारा पुलिस को सूचना (प्रदर्श 10/3) दी गई कि स्वर्गीय राम निरंजन शर्मा के पुत्रों ने उसके ग्राम में मकानों और भूसे के ढेरों में आग लगा दी है और गोलियां भी चलाई हैं । इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि प्रदर्श 10/3 स्पष्ट रूप से एक अस्पष्ट सूचना है और यह किसी भी संज्ञेय अपराध के कारित किए जाने की पुष्टि करने के संबंध में अपर्याप्त है । अतः हमारी सुविचारित राय में विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय ने अभि. सा. 14 द्वारा दर्ज कराई गई टाइप की हुई पश्चात्वर्ती सूचना को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट माना है न कि वायरलैस संदेश को ।

29. द्वितीय प्रश्न यह है कि हमें यह विनिश्चित करना होगा कि क्या अभि. सा. 14 की टाइप की हुई रिपोर्ट जिसे प्रथम इत्तिला रिपोर्ट माना गया है, तारीख 5 दिसम्बर, 1994 को 10.10 बजे अपराह्न में दर्ज कराई गई या नहीं जैसा कि अभियोजन पक्ष द्वारा दावा किया गया है या वास्तव में यह रिपोर्ट 16 दिसम्बर, 1994 को प्रातःकाल सदर पुलिस थाना मुजफ्फरपुर में दर्ज कराई गई थी जैसा कि प्रतिरक्षा पक्ष द्वारा प्रतिवाद किया गया है । हमने इत्तिलाकर्ता अभि. सा. 14 के साक्ष्य का परिशीलन

---

[1] (1995) 3 एस. सी. सी. 392.

किया है । इस साक्षी ने यह कथन किया है कि तारीख 5 दिसम्बर, 1994 को लगभग 4.15 बजे अपराह्न में किसी व्यक्ति द्वारा उसके रिवाल्वर से मृतक को क्षतिग्रस्त किए जाने के पश्चात् भीड़ मुख्य मार्ग से लालगंज की ओर भागने लगी और कुछ व्यक्ति हाजीपुर की ओर दौड़े और वह अन्य व्यक्तियों के साथ भीड़ के पीछे-पीछे गया और 6.00 बजे अपराह्न में हाजीपुर पहुंचकर सर्किट हाउस गया और वह वहां पर एक घंटा रुका और इसके पश्चात् वह 7.00 बजे अपराह्न में मुजफ्फरपुर के लिए चल दिया । आक्षेपित निर्णय में, उच्च न्यायालय ने अभि. सा. 14 के साक्ष्य को इस संबंध में स्वीकार नहीं किया है कि वह 7.00 बजे अपराह्न में हाजीपुर से मुजफ्फरपुर के लिए रवाना हुआ था क्योंकि उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि बहुत से अन्य साक्षियों ने यह स्वीकार किया है कि वे 9.00 बजे अपराह्न में हाजीपुर के लिए रवाना हुए थे और अभि. सा. 11 ने यह स्वीकार किया है कि वह अर्धरात्रि में 12.00 बजे हाजीपुर के लिए रवाना हुआ था और वह अन्य व्यक्तियों के साथ रात्रि 2.00 बजे मुजफ्फरपुर पहुंचा । यद्यपि अभि. सा. 11 ने अपने साक्ष्य में यह कथन किया है कि हाजीपुर सर्किट हाउस से सभी व्यक्ति 7.00 बजे वापस आए थे, उसने अपने साक्ष्य में यह भी कथन किया है कि वह उपखंड अधिकारी के साथ मध्यरात्रि 12.00 बजे तक थे और वह गरौल, हाजीपुर गया और अभियुक्त को गिरफ्तार करने के पश्चात् वह मुजफ्फरपुर वापस चला गया । अभि. सा. 11 ने यह भी कथन किया है कि वह रात्रि में 2.00 बजे सदर पुलिस थाने, मुजफ्फरपुर वापस आया था और जिला मजिस्ट्रेट, पुलिस अधीक्षक, उपखंड अधिकारी, पुलिस उपाधीक्षक (अभि. सा. 14) और अन्य अधिकारी भी उसके साथ वापस आए । इस प्रकार, उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अभि. सा. 14 अभि. सा. 11 सहित अन्य अधिकारियों के साथ रात्रि में ही 2.00 बजे मुजफ्फरपुर पहुंच गया था । सदर पुलिस थाना, मुजफ्फरपुर पहुंचने के पश्चात् अभि. सा. 14 ने विस्तृत रूप से टाइप की हुई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को दर्ज करने में कुछ और समय लिया । अभि. सा. 14 ने यह कथन किया है कि सदर पुलिस थाना मुजफ्फरपुर में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने के लिए उसने वहां मौजूद सभी अधिकारियों से सहायता ली और वास्तव में उसने 4-5 अधिकारियों के कथन अभिलिखित किए । उसने यह कथन किया है कि उसने टाइप की हुई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट तैयार की और उसे कथनों को पूरा करने के लिए आधा घंटा लगा और प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने में एक घंटा लगा । अभिलेख पर प्रस्तुत संपूर्ण साक्ष्य के आधार पर, उच्च न्यायालय ने

अभियोजन पक्ष के इस वृत्तांत को स्वीकार नहीं किया है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट तारीख 5 दिसम्बर, 1994 को 10.10 बजे अपराह्न में सदर पुलिस थाना, मुजफ्फरपुर में दर्ज कराई गई थी और इसके बजाय न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि साक्ष्य से इस संबंध में युक्तियुक्त संदेह पैदा होता है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट तारीख पूर्व और समय पूर्व की है । हमें उच्च न्यायालय द्वारा निकाले गए इस निष्कर्ष में कोई त्रुटि नहीं दिखाई देती है ।

30. अब हम प्रतिरक्षा पक्ष की ओर से दी गई मुख्य दलील पर विचार करेंगे कि जब एक बार उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित कर दिया था कि साक्ष्य से तारीख पूर्व और समय पूर्व होने के कारण प्रथम इत्तिला रिपोर्ट पर युक्तियुक्त संदेह हो गया है तब उच्च न्यायालय को अभियोजन वृत्तांत पूर्णतया त्यक्त कर देना चाहिए था । प्रतिरक्षा पक्ष द्वारा उद्धृत किए गए किसी भी मामले में हमने यह निष्कर्ष नहीं निकाला है कि इस न्यायालय ने मात्र इस आधार पर संपूर्ण अभियोजन वृत्तांत को त्यक्त कर दिया है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट तारीख पूर्व और समय पूर्व की है । **गणेश भवन पटेल** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** (उपरोक्त) वाले मामले में प्रतिरक्षा पक्ष द्वारा अवलंब लिया गया है जिसमें इस न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 161 के अधीन साक्षियों के कथन अभिलिखित किए जाने में हुए अत्यधिक विलंब और अन्य परिस्थितियों पर इस तथ्य के साथ विचार किया है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट बिना किसी समुचित स्पष्टीकरण के विलंब से दर्ज कराई गई है और उसके पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया है कि अभियोजन पक्षकथन विश्वसनीय नहीं है । प्रतिरक्षा पक्ष द्वारा उद्धृत किए गए **मरुदानल अगस्ती** बनाम **केरल राज्य** (उपरोक्त) वाले मामले में भी इस न्यायालय ने अभियोजन वृत्तांत को मात्र इस कारण से ही अविश्वसनीय नहीं ठहराया है कि मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रथम इत्तिला रिपोर्ट प्रस्तुत करने में हुए विलंब का स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है अपितु प्रथम इत्तिला रिपोर्ट जिसमें घटना का बहुत ही बारीकी से वर्णन किया गया है, उसमें साक्षियों के नामों का उल्लेख नहीं किया गया है और उसमें अन्य विषमताएं भी हैं जिनसे अभियोजन वृत्तांत पर गंभीर संदेह होता है । प्रतिरक्षा पक्ष द्वारा अवलंब लिए गए मामले **अवधेश** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** (उपरोक्त) में इस निष्कर्ष के अतिरिक्त कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज किए जाने में हुआ विलंब संदिग्ध है, इस न्यायालय ने यह भी निष्कर्ष निकाला है कि घटना के एक दिन बाद घटना स्थल से खाली कारतूस बरामद किए गए हैं और चिकित्सीय

साक्ष्य से यह सिद्ध होता है कि साक्षियों ने वास्तव में घटना नहीं देखी है और इन सभी परिस्थितियों पर विचार करते हुए इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अभियोजन पक्ष ने संदेह के परे अपना पक्षकथन साबित नहीं किया है । इसके प्रतिकूल, इस न्यायालय ने **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **मानसिंह और अन्य**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि यदि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट की तारीख और समय संदिग्ध है तब अभियोजन वृत्तांत कमजोर नहीं होता किन्तु न्यायालय के लिए अभियोजन पक्षकथन के समर्थन में साक्ष्य का सावधानीपूर्वक विश्लेषण करना आवश्यक है । इस प्रकार, हमें इस मामले में साक्ष्य का सावधानीपूर्वक विश्लेषण करना होगा ताकि यह पता लगाया जा सके कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में अभिकथित अभियोजन पक्षकथन कहां तक सत्य है ।

31. वर्तमान मामले में, तथ्य यह शेष रह जाता है कि तारीख 5 दिसम्बर, 1994 को लगभग 4.15 बजे अपराह्न में घटना के तत्काल पश्चात् घटनास्थल से जिला मुख्यालय, वाराणसी को सूचना भेज दी गई थी कि छोटन शुक्ला के शवदाह के लिए निकाले गए जुलूस में आए लोगों ने रिवाल्वर से मृतक को क्षतिग्रस्त कर दिया है और विभिन्न यानों से हाजीपुर की ओर भाग गए हैं । अभियोजन पक्षकथन का कम से कम यह भाग, जिसका 6 दिसम्बर, 1994 के प्रातःकाल में अभि. सा. 14 द्वारा दर्ज कराई गई पश्चात्वर्ती टाइप की हुई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में भी उल्लेख है, मिथ्या मानकर त्यक्त नहीं किया जा सकता और न्यायालय को साक्ष्य के आधार पर यह विनिश्चित करना होगा कि छोटन शुक्ला के शवदाह के लिए निकाले गए जुलूस में लोगों के बीच में ऐसे कौन-कौन से व्यक्ति हैं जो मृतक को क्षति कारित करने के लिए जिम्मेदार हैं ।

32. वास्तव में उच्च न्यायालय ने भी अभि. सा. 14 द्वारा दर्ज कराई गई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के संपूर्ण वृत्तांत को स्वीकार नहीं किया है और प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में उल्लिखित इस अभियोजन पक्षकथन को खारिज किया है कि विधिविरुद्ध जमाव गठित किया गया था और अभियुक्त सं. 1 से अभियुक्त सं. 7 उस विधिविरुद्ध जमाव के भागीदार हैं जिनका उद्देश्य मृतक की हत्या करना था । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय में यह अभिनिर्धारित किया है कि मृतक की कार का जिस भीड़ ने घेराव किया था उसने पथराव करके कार को क्षतिग्रस्त किया और उसमें बैठे व्यक्तियों को

---

[1] (2003) 10 एस. सी. सी. 414.

कार से बाहर खींचकर क्षतियां कारित कीं और उस भीड़ ने विधिविरुद्ध जमाव का रूप ले लिया किंतु अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य और परिस्थितियों से यह सिद्ध नहीं होता है कि भीड़ में के ऐसे व्यक्तियों का भी सामान्य उद्देश्य मृतक की हत्या करना था । उच्च न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि जुलूस में आए ऐसे कुछ व्यक्ति जो घटनास्थल के निकट यानों में बैठे हुए थे, यह पता लगाने के लिए यानों से बाहर निकलकर आ सकते थे कि होहल्ला का क्या कारण है किंतु जब किसी भी व्यक्ति ने इस संबंध में ध्यान नहीं दिया कि मृतक इस मार्ग से गुजरेगा तो ये व्यक्ति विधिविरुद्ध जमाव के सदस्य नहीं हो सकते थे जिनका सामान्य आशय मृतक की हत्या करना था । उच्च न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि इस संबंध में कोई भी अभिकथन नहीं किया गया है कि जुलूस में आए व्यक्तियों के पास आयुध थे और घटनास्थल पर जमाव के वास्तविक व्यवहार के संबंध में अपर्याप्त साक्ष्य है । उच्च न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि मृतक के चालक और अंगरक्षक ने अपने साक्ष्य में यह कथन किया है कि सड़क के दोनों ओर अंत्येष्टि जुलूस के दौरान लोगों की भीड़ होने के कारण मृतक की कार सड़क के बाईं ओर से नहीं गुजर सकती थी और इससे यह दर्शित होता है कि मृतक की कार और उसमें बैठे व्यक्तियों पर उस भीड़ द्वारा अचानक हमला किया गया था जो खाबरा ग्राम के निकट अंत्येष्टि जुलूस को देखने के लिए इकट्ठा हुए थे । उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि मृतक के चालक और अंगरक्षक ने अपने साक्ष्य में ऐसा कुछ भी नहीं कहा है जिससे यह पता चल पाता कि भीड़ किस कारण क्रोधित हुई और आहतों ने ऐसी कोई भी गलती नहीं की थी जिस कारण मृतक की हत्या की गई । इस प्रकार उच्च न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि जुलूस में आए व्यक्तियों ने, जो शव के साथ-साथ मोटरयानों में चल रहे थे, विधिविरुद्ध जमाव गठित करने का उनका कोई भी सामान्य उद्देश्य नहीं था और इसलिए अभियुक्त सं. 1 से अभियुक्त सं. 7 को इस आधार पर दंड संहिता की धारा 302/149 के अधीन अपराध के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है कि वे उस विधिविरुद्ध जमाव के सदस्य हैं जिसका उद्देश्य मृतक या किसी अन्य व्यक्ति की हत्या करना था । हमारी सुविचारित राय में, उच्च न्यायालय ने अभियोजन पक्ष की इस दलील को ठीक ही खारिज किया है कि अभियुक्त सं. 1 से अभियुक्त सं. 7 दंड संहिता की धारा 302/149 के अधीन दोषसिद्धि के लिए जिम्मेदार हैं ।

33. उच्च न्यायालय ने साक्षियों के साक्ष्य की सावधानीपूर्वक संवीक्षा करने के पश्चात् अभि. सा. 14 द्वारा दर्ज कराई गई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में उल्लिखित अभियोजन वृत्तांत को भी त्यक्त किया है कि अभियुक्त सं. 2, अभियुक्त सं. 3 और अभियुक्त सं. 4 ने मृतक की हत्या करने के लिए भटकन शुक्ला को उकसाया था । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि सिविल अधिकारी, चालक और अंगरक्षक अर्थात् अभि. सा. 12, अभि. सा. 13, अभि. सा. 17 और अभि. सा. 21 प्रत्यक्षदर्शी साक्षी हैं जिनका उल्लेख श्रेणी-II में किया गया है, इन साक्षियों में से किसी भी साक्षी ने अभियुक्त सं. 1 से अभियुक्त सं. 7 द्वारा उकसाए जाने के अभिकथन का समर्थन नहीं किया है और पुलिस कार्मिक अर्थात् अभि. सा. 5 और अभि. सा. 9 का उल्लेख श्रेणी-I में किया गया है और इन साक्षियों ने ऐसे किसी भी व्यक्ति को नहीं सुना है, जो मृतक की हत्या करने के लिए भटकन शुक्ला को उकसा रहा हो । उच्च न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि अभिकथित 17 प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों में से छह साक्षियों ने उकसाए जाने के बारे में नहीं कहा है और शेष ग्यारह अभियोजन साक्षियों में से छह साक्षियों ने अर्थात् अभि. सा. 1, अभि. सा. 3, अभि. सा. 4, अभि. सा. 9, अभि. सा. 10 और अभि. सा. 14, यह कथन किया है कि केवल अभियुक्त सं. 1 ने मृतक पर गोली चलाने के लिए भटकन शुक्ला को उकसाया था । तदनुसार, उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष अभिलिखित किया है कि केवल अभियुक्त सं. 1 ने मृतक की हत्या करने के लिए एकमात्र गोली चलाने वाले को उकसाया था और वह दंड संहिता की धारा 109 के अधीन दुष्प्रेरण के अपराध का दोषी है और दंड संहिता की धारा 302/109 के अधीन मृतक की हत्या का दंड पाने के लिए जिम्मेदार है और अभियुक्त सं. 2, अभियुक्त सं. 3 और अभियुक्त सं. 4 को दंड संहिता की धारा 302/109 के अधीन आरोपों से दोषमुक्त किया जाना चाहिए ।

34. हमने साक्षियों के साक्ष्य का परिशीलन किया है और हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि उच्च न्यायालय का यह निष्कर्ष कि अभियुक्त सं. 2, अभियुक्त सं. 3 और अभियुक्त सं. 4 को दंड संहिता की धारा 302/109 के अधीन अपराधों का दोषी नहीं ठहराया जा सकता है, अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य के समुचित मूल्यांकन पर आधारित है । जुलूस के साथ चल रहे 14 साक्षियों में से केवल 4 साक्षियों ने, अर्थात् अभि. सा. 6, अभि. सा. 7, अभि. सा. 8 और अभि. सा. 11, यह कथन

किया है कि अभियुक्त सं. 2 ने अभियुक्त सं. 1 के साथ मिलकर मृतक पर गोली चलाने के लिए भटकन शुक्ला को उकसाया था । इसी प्रकार, जुलूस के साथ चल रहे 14 साक्षियों में से केवल अभि. सा. 7 और अभि. सा. 8 ने यह कथन किया है कि अभियुक्त सं. 3 ने मृतक पर गोली चलाने के लिए भटकन शुक्ला को उकसाया था और शेष 11 साक्षियों ने यह कथन नहीं किया है कि अभियुक्त सं. 3 ने भी मृतक पर गोली चलाने के लिए भटकन शुक्ला को उकसाया था । अभियोजन पक्ष द्वारा परीक्षा किए गए 14 साक्षियों में से मात्र अभि. सा. 7 और अभि. सा. 11 ने यह कथन किया है कि अभियुक्त सं. 4 ने भी मृतक पर गोली चलाने के लिए भटकन शुक्ला को उकसाया था किंतु शेष 12 साक्षियों ने यह कथन नहीं किया है कि अभियुक्त सं. 4 ने भी जिला मजिस्ट्रेट पर गोली चलाने के लिए भटकन शुक्ला को उकसाया था । इस न्यायालय ने **जैनुल हक** बनाम **बिहार राज्य** (उपरोक्त) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि उकसाए जाने का साक्ष्य स्वयं में एक कमजोर साक्ष्य है और प्रायः लोगों की प्रवृत्ति वास्तविक हमलावर के साथ-साथ अन्य व्यक्तियों को भी आलिप्त करने की भी होती है कि यह भी व्यक्ति आहत पर हमला करने के लिए हमलावरों को उकसा रहा था और जब तक कि इस संबंध में साक्ष्य स्पष्ट, तर्कसम्मत और विश्वसनीय न हो तब तक उस व्यक्ति के विरुद्ध दुष्प्रेरण के लिए दोषसिद्धि अभिलिखित नहीं की जा सकती है जिसके संबंध में वास्तविक हमलावर को उकसाए जाने का अभिकथन किया गया है । चूंकि जुलूस के साथ चल रहे 14 अभियोजन साक्षियों में से अधिकांश लोगों ने, जिनमें असैनिक और पुलिस कार्मिक दोनों हैं, अभियोजन के इस वृत्तांत का समर्थन नहीं किया है कि अभियुक्त सं. 2, अभियुक्त सं. 3 और अभियुक्त सं. 4 ने भी मृतक पर गोली चलाने के लिए भटकन शुक्ला को उकसाया था, इसलिए अभियुक्त सं. 2 अभियुक्त सं. 3 और अभियुक्त सं. 4 को मृतक की हत्या के दुष्प्रेरण के अपराध के लिए दोषसिद्ध करना उचित नहीं होगा । अतः हमारी राय में उच्च न्यायालय ने अभियुक्त सं. 2, अभियुक्त सं. 3 और अभियुक्त सं. 4 को दंड संहिता की धारा 302/109 के अधीन आरोप से दोषमुक्त करके ठीक ही किया है ।

35. **मसलती** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि जहां दांडिक न्यायालय को अत्यधिक अपराधियों और अत्यधिक आहतों से संबंधित अपराध कारित

करने के मामले में साक्ष्य पर विचार करना होता है, वहां आम तौर पर यह परखना होता है कि दोषसिद्धि कायम रखी जा सकती है यदि केवल दो या तीन या उससे अधिक ऐसे साक्षियों द्वारा समर्थन होता हो जिन्होंने घटना का संगत वर्णन किया है । इस मामले में, 14 में से ऐसे 10 साक्षियों ने, जो जुलूस के साथ चल रहे थे और घटनास्थल के निकट थे, यह संगत वृत्तांत किया है कि अभियुक्त सं. 1 ने मृतक पर गोली चलाने के लिए भटकन शुक्ला को उकसाया था । अभि. सा. 1, अभि. सा. 3, अभि. सा. 4, अभि. सा. 6, अभि. सा. 7, अभि. सा. 8, अभि. सा. 9, अभि. सा. 10, अभि. सा. 11 और अभि. सा. 14 ने संगत रूप से यह अभिसाक्ष्य दिया है कि अभियुक्त सं. एक ने मृतक पर गोली चलाने के लिए भटकन शुक्ला को उकसाया था । शेष चार साक्षी घटनास्थल पर मौजूद हो सकते हैं किंतु उन्होंने किसी न किसी कारण से मृतक पर गोली चलाने के लिए अभियुक्त सं. 1 द्वारा भटकन शुक्ला को उकसाए जाने की बात नहीं सुनी होगी । इसलिए, मात्र इस कारण से कि 14 में से 4 साक्षियों ने अभियुक्त सं. 1 द्वारा उकसाए जाने के तथ्य के संबंध में अभिसाक्ष्य नहीं दिया है, हम यह अभिनिर्धारित नहीं कर सकते हैं कि 10 साक्षियों ने मिथ्या अभिसाक्ष्य दिया है कि अभियुक्त सं. 1 ने मृतक पर गोली चलाने के लिए भटकन शुक्ला को उकसाया था ।

36. हमने प्रतिरक्षा पक्ष की ओर से दी गई दलीलों पर भी विचार किया है कि इन साक्षियों ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि मृतक पर भटकन शुक्ला द्वारा उस समय गोली चलाई गई थी जब वह जमीन पर क्षतिग्रस्त अवस्था में पड़ा हुआ था किन्तु चिकित्सीय साक्ष्य से यह सिद्ध होता है कि गोलियां उस समय चलाई गईं थीं जब मृतक खड़ा हुआ था और इस आधार पर इन 10 साक्षियों का साक्ष्य त्यक्त किया जाना चाहिए जिन्होंने मृतक पर गोली चलाने के लिए अभियुक्त सं. 1 द्वारा भटकन शुक्ला को उकसाए जाने के संबंध में अभिसाक्ष्य दिया है । हमारा यह निष्कर्ष है कि डा. मुमताज अहमद (अभि. सा. 16) ने तारीख 5 दिसम्बर, 1994 को 4.40 बजे अपराह्न में मृतक के शव का शवपरीक्षण किया था जिन्होंने अपने साक्ष्य में मृतक को पहुंची मृत्यु पूर्व की निम्न क्षतियों का वर्णन किया है :–

> "(i)(क) बाईं भौंह के पार्श्व में अण्डाकार घाव है जिसका व्यास 1/3 इंच है और इस घाव के किनारे उलटे हुए और जले हुए हैं ।
>
> (ख) आन्तरिक गुहा में भौंहों के ठीक ऊपर अर्थात् ललाट पर 3 इंच x 1.2 इंच माप का घाव जो ललाट के मध्य भाग में स्थित है

जिसके किनारे उलटे हुए हैं और इस घाव की गहराई गुहा तक है, इस घाव से ललाटीय अस्थि के टूटे हुए भाग और मस्तिष्क का गूदा बाहर निकला हुआ है ।

विच्छेदन करने पर दोनों घाव एक-दूसरे के साथ मिले हुए प्रतीत होते हैं ।

(ii) बाएं गाल पर एक अण्डाकार घाव है जिसका व्यास 1/4 इंच है और उसके किनारे उलटे हुए हैं ।

विच्छेदन करने पर उर्ध्वहनु (ऊपरी जबड़ा) और अधोहनु (निचला जबड़ा) में अस्थिभंग है और जिह्वा तथा निचले ओष्ठ का आन्तरिक भाग विदीर्ण पाया गया है । गोली बाएं गाल से प्रवेश करती हुई और ऊपरी अंगों को नष्ट करती हुई अण्डाकार गुहा तक गई है ।

(iii) सिर के दाएं पार्श्व कपालीय भाग में एक अण्डाकार घाव पाया गया है जिसके किनारे उलटे हुए हैं और उस पर झुलसन पाई गई है तथा इस घाव का व्यास 1/4 इंच है ;

(ख) सिर के बाएं पार्श्व कपालीय भाग में एक अण्डाकार घाव पाया गया है जिसकी माप 1.3 इंच x 1.5 इंच है और इस घाव की गहराई गुहा तक है, घाव के किनारे उलटे हुए हैं ।

विच्छेदन करने पर दोनों घाव एक-दूसरे के साथ मिले हुए पाए गए हैं तथा करोटि में कई स्थानों पर अस्थिभंग पाया गया है और मस्तिष्क ऊतक कई जगह से विदीर्ण है ।"

अभि. सा. 16 ने अपने साक्ष्य में यह भी कथन किया है कि इन तीनों घावों में से दो घाव बाईं ओर और एक घाव शरीर के दाईं ओर है । अपनी प्रतिपरीक्षा में अभि. सा. 16 ने यह कथन किया है कि :–

"34. बंदूक की गोली मृतक के शरीर में खड़े रहने या लेटे रहने की स्थिति में भी लग सकती है ।

38. क्षति सं. II से यह उपदर्शित होता है कि संभवतः रोगी अपना चेहरा हिलाने की स्थिति में था । मेरी शवपरीक्षण रिपोर्ट से यह प्रतीत होता है कि क्षति सं. II कारित होने पर ही क्षति सं. III कारित हो सकती है । क्षति सं. III पहुंचने के पश्चात् कोई भी व्यक्ति हिल-डुल भी नहीं सकता और इस प्रकार क्षति सं. I कारित नहीं हो सकती । इसके विपरीत भी तर्क देना उचित है । इस प्रकार क्षति सं.

I क्षति सं. II के कारित होने के पूर्व कारित की गई है (साक्षी ने स्वेच्छया अभिसाक्ष्य दिया है कि "कारित की गई है" के स्थान पर "की जा सकती है" का प्रयोग किया जा सकता है)"

अभि. सा. 16 के अभिसाक्ष्य से यह स्पष्ट हो गया है कि बंदूक की गोली व्यक्ति के खड़े रहने या लेटे रहने की स्थिति में भी शरीर में लग सकती है । अभि. सा. 16 ने यह कथन किया है कि क्षति सं. I कारित हो सकती है और उसके पश्चात् क्षति सं. II कारित हो सकती है । इसके अतिरिक्त क्षति सं. II से यह उपदर्शित होता है कि मृतक अपना चेहरा हिलाने की स्थिति में था । इस साक्षी ने यह भी कथन किया है कि शवपरीक्षण रिपोर्ट से यह भी प्रतीत होता है कि क्षति सं. II के कारित किए जाने के पश्चात् ही क्षति सं. III कारित हो सकती है । इस प्रकार, श्री रंजीत कुमार द्वारा दी गई यह दलील खारिज नहीं की जा सकती है कि मृतक के बाएं गाल पर क्षति सं. II कारित होने के पश्चात् मृतक ने अपना चेहरा घुमाया होगा और उसके पश्चात् उसके चेहरे के बाएं पार्श्व कपालीय भाग में क्षति कारित हो सकती है । अतः हम यह अभिनिर्धारित नहीं कर सकते हैं कि चिकित्सीय साक्ष्य ऐसा है कि उसके आधार पर अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य की इस सत्यता को नकारा जा सके कि मृतक पर उस समय गोली चलाई गई थी जब वह जमीन पर क्षतिग्रस्त अवस्था में पड़ा हुआ था ।

37. अब हम प्रतिरक्षा पक्ष की इस दलील पर विचार करेंगे कि उच्च न्यायालय ने मृतक के चालक और अंगरक्षक क्रमशः अभि. सा. 17 और अभि. सा. 21 के साक्ष्य पर विचार नहीं किया है जिन्होंने अभियोजन पक्षकथन का समर्थन नहीं किया है । हमने अभि. सा. 17 (चालक) के साक्ष्य का परिशीलन किया है जिसने यह कथन किया है कि जिन लोगों ने जुलूस में भाग लिया था उन्होंने मृतक की कार का घेराव किया और वे "मारो-मारो" के नारे लगा रहे थे और उन्होंने मृतक और उसके अंगरक्षक की कार से बाहर खींचा और उसके पश्चात् उन पर हमला करने लगे किन्तु वह बच गया और यान के पीछे छुप गया और पांच-छः मिनट के पश्चात् जब वह वापस आया तब उसने देखा कि जुलूस वहां नहीं है किन्तु वहां पर पुलिस अपने यानों के साथ मौजूद थी और उसने देखा कि मृतक क्षतिग्रस्त अवस्था में सड़क पर पड़ा हुआ है और मृतक की कार उलटी हुई पड़ी है और इसके पश्चात् मृतक को पुलिस की गाड़ी से अस्पताल लाया गया और यह साक्षी भी इसी गाड़ी से अस्पताल गया और उसे बाद में यह पता चला कि मृतक की मृत्यु हो गई है । हमने अभि. सा. 21 (अंगरक्षक)

के साक्ष्य का भी परिशीलन किया है जिसने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि भीड़ मारो-मारो कहकर चिल्ला रही थी और उन्होंने उसकी, मृतक की और चालक की पिटाई की तथा उनकी गाड़ी को उलट दिया और उन्हें क्षतियां पहुंचीं और थोड़े समय पश्चात् पुलिस वहां पहुंची और भगदड़ मच गई और पुलिस ने मृतक और इस साक्षी को अस्पताल भेजा और तब उसे पता चला कि मृतक की मृत्यु हो गई है । अतः अभि. सा. 17 और अभि. सा. 21 ने मृतक पर गोली चलाने के लिए अभियुक्त सं. 1, अभियुक्त सं. 2, अभियुक्त सं. 3 और अभियुक्त सं. 4 द्वारा भटकन शुक्ला को उकसाने के संबंध में कुछ भी नहीं कहा है । यह प्रतीत होता है कि अभि. सा. 17 और अभि. सा. 21 गोली चलाने की घटना से बिल्कुल भी अवगत नहीं थे और उन्हें यह आभास था कि मृतक को कार से खींचने के पश्चात् भीड़ द्वारा हमला किए जाने पर मृतक क्षतिग्रस्त हुआ है । हमारी सुविचारित राय में ऐसा प्रतीत होता है कि अभि. सा. 17 और अभि. सा. 21 को यह मालूम नहीं था कि कार से बाहर खींचने और भीड़ द्वारा पिटाई किए जाने के पश्चात् वास्तव में क्या हुआ था । उनके साक्ष्य के आधार पर, न्यायालय अन्य 10 साक्षियों के इस साक्ष्य को त्यक्त नहीं कर सकता है कि भटकन शुक्ला को अभियुक्त सं. 1 के उकसाए जाने पर उसने अपने रिवाल्वर से मृतक पर गोली चलाई थी क्योंकि चिकित्सीय साक्ष्य से यह सिद्ध हो गया है कि मृतक की मृत्यु का कारण गोली से कारित की गई क्षति है न कि भीड़ द्वारा किया गया हमला । इसके अतिरिक्त, अभि. सा. 17 और अभि. सा. 21 ने अभियोजन पक्षकथन का समर्थन नहीं किया है किन्तु उनके साक्ष्य से भी अभियोजन पक्षकथन अविश्वसनीय नहीं ठहराया जा सकता कि मृतक पर भटकन शुक्ला द्वारा जो गोली चलाई गई थी वह अभियुक्त सं. 1 द्वारा उकसाए जाने पर चलाई गई थी ।

38. अब हम श्री जेठमलानी द्वारा दी गई इस दलील पर विचार करेंगे कि चूंकि अभियुक्त सं. 1 कंटेसा कार में बैठा हुआ था जो जुलूस के सामने थी और मृतक की हत्या जुलूस के बीचो बीच हुई, इसलिए प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के साक्ष्य को असंभावी मानकर त्यक्त कर दिया जाना चाहिए । अभियोजन पक्ष ने अपने साक्षियों के माध्यम से साक्ष्य प्रस्तुत किया है कि मृतक पर गोली चलाए जाने के समय पर अभियुक्त सं. 1 घटनास्थल पर था और मृतक पर गोली चलाने के लिए भटकन शुक्ला को उकसा रहा था । यदि अभियुक्त सं. 1 न्यायालय को विश्वास दिलाना चाहता था कि घटना के समय पर वह जुलूस के सामने चल रही कंटेसा कार में था न कि घटनास्थल पर, तब उसे दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन अपने

कथन में भी यह प्रतिरक्षा लेनी चाहिए थी और इस प्रतिरक्षा के समर्थन में विश्वसनीय साक्ष्य भी प्रस्तुत करना चाहिए था । भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 103 में यह उपबंध किया गया है कि किसी विशिष्ट तथ्य के सबूत का भार उस व्यक्ति पर होता है जो न्यायालय से यह चाहता है कि उसके अस्तित्व में विश्वास करे, जब तक कि किसी विधि द्वारा यह उपबंधित न हो कि उस तथ्य के सबूत का भार किसी विशिष्ट व्यक्ति पर होगा । अभियोजन पक्ष ने अपने अनेक साक्षियों के माध्यम से प्रस्तुत किए गए साक्ष्य द्वारा यह सिद्ध किया है कि अभियुक्त सं. 1 घटनास्थल पर मौजूद था और उसने मृतक पर गोली चलाने के लिए भटकन शुक्ला को उकसाया था । यदि अभियुक्त सं. 1 यह चाहता था कि न्यायालय अभियोजन के इस वृत्तांत को संभावी न मानकर खारिज कर दे तब साक्ष्य प्रस्तुत करने का भार अभियुक्त पर पड़ता है कि वह घटनास्थल पर मौजूद नहीं था और उसने मृतक पर गोली चलाने के लिए भटकन शुक्ला को नहीं उकसाया था । चूंकि उसने इस भार का निर्वहन नहीं किया है, इसलिए उच्च न्यायालय ने अभियुक्त सं. 1 को दंड संहिता की धारा 302/109 के अधीन अपराध का दोषी अभिनिर्धारित करके ठीक किया है ।

39. दंडादेश के संबंध में, उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि यद्यपि मृतक जिला मजिस्ट्रेट था, उसकी हत्या कार में बैठे हुए एक अन्य जिले में अकस्मात भीड़ द्वारा और अभियुक्त सं. 1 द्वारा उकसाए जाने पर और भटकन शुक्ला द्वारा गोली चलाए जाने पर की गई है और अभियुक्त सं. 1 स्वयं में हमलावर नहीं है इसलिए आजीवन कठोर कारावास और मृत्यु दंडादेश समुचित दंड नहीं होगा । हम उच्च न्यायालय के इस मत से सहमत हैं और हमारी यह राय है कि यह ऐसा विरल से विरलतम मामला नहीं है जिसमें उच्च न्यायालय अभियुक्त सं. 1 पर मृत्यु दंडादेश की पुष्टि करे । हमारी सुविचारित राय में, अभियुक्त सं. 1 आजीवन कठोर कारावास के लिए जिम्मेदार है ।

40. परिणामतः, हमारा यह निष्कर्ष है कि न तो अभियुक्त सं. 1 द्वारा फाइल की गई अपील में और न ही राज्य द्वारा फाइल की गई अपीलों में कोई सार है, और हम तदनुसार सभी दांडिक अपीलों को खारिज करते हैं ।

अपीलें खारिज की गईं ।

अस./अनू.

[2013] 1 उम. नि. प. 153

बबले उर्फ **गुरदीप सिंह**

बनाम

छत्तीसगढ़ राज्य (पी. एस. ओ. पी. कुर्सीपुर के माध्यम से)

10 जुलाई, 2012

न्यायमूर्ति स्वतंत्र कुमार और न्यायमूर्ति रंजन गोगई

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 और 34 – हत्या – अभियुक्त अपीलार्थी के विरुद्ध मृत्युकालिक कथन होना – अभियुक्त के प्रकटन कथन के आधार पर हत्या में प्रयुक्त हथियारों की बरामदगी होना तथा अन्य साक्ष्य से भी उसकी दोषिता साबित होने पर निचले न्यायालयों द्वारा की गई उसकी दोषसिद्धि के निर्णय में हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है ।

प्रस्तुत मामले में, यह अपील छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर के तारीख 15 नवंबर, 2006 के उस निर्णय के विरुद्ध की गई है जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने विद्वान् चतुर्थ अपर सेशन न्यायाधीश, दुर्ग, छत्तीसगढ़ द्वारा पारित किए गए दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश को कायम रखा और अपीलार्थियों को भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में 'दंड संहिता' कहा गया है) की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध करते हुए उन्हें आजीवन कारावास अधिनिर्णीत किया । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – मृतक द्वारा अभि. सा. 14 को दिया गया मृत्युकालिक कथन न्यायालय द्वारा अनदेखा नहीं रह सकता है । अनुश्रुत साक्ष्य की अग्राह्यता के नियम का मौखिक मृत्युकालिक कथन एक अपवाद है । इस मामले में मृत्युकालिक कथन विश्वसनीय, तर्कसम्मत है और उस घटना को स्पष्ट करता है जो सामान्य अनुक्रम में घटित हुई है जो कि मात्र संभावना ही नहीं है अपितु इसमें कोई भी संदेह नहीं रह जाता है कि ऐसी ही घटना वास्तव में घटित हुई है जैसी अभियोजन पक्ष द्वारा सिद्ध की गई है । जब एक बार विश्वसनीय, तर्कसम्मत और विश्वासप्रद साक्ष्य किसी एक अभियुक्त के विरुद्ध विद्यमान होता है तब अन्य अभियुक्तों की दोषमुक्ति किए जाने से अभियोजन पक्षकथन प्रभावित नहीं होगा । यदि उच्च न्यायालय अपनी न्यायिक विवेकाधिकार का प्रयोग अत्यंत सावधानीपूर्वक

करते हुए प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में नामित न किए गए अभियुक्त को दोषमुक्त करे तब साथ ही उच्च न्यायालय वर्तमान अपीलार्थी को विधिमान्य कारणों के आधार पर अपराध का दोषी भी अभिनिर्धारित कर सकता है । इस प्रकार, न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि वर्तमान अपीलार्थी को अन्य दो अभियुक्तों की दोषमुक्ति से कोई भी फायदा नहीं मिल सकता है जिनसे यह न्यायालय असम्बद्ध को कोई भी लेना देना नहीं है क्योंकि राज्य ने उच्च न्यायालय के विनिश्चय के विरुद्ध कोई भी अपील नहीं की है । इसके अतिरिक्त, अभियोजन पक्षकथन अभि. सा. 14 को मृतक द्वारा दिए गए मृत्युकालिक कथन पर ही आधारित नहीं है अपितु अन्य ऐसी परिस्थितियां अर्थात् अपीलार्थी द्वारा किया गया प्रकीटकरण कथन और उसके आधार पर अपराध में प्रयोग किए गए हथियारों की पश्चात्वर्ती बरामदगी, अन्वेषक अधिकारी (अभि. सा. 13) का कथन, चिकित्सक (अभि. सा. 5) का कथन और वास्तव में घटना के संबंध में अभियुक्त का अपना वृत्तांत, भी हैं जिनसे अपीलार्थी के दोषी होने की बात का समर्थन होता है । (पैरा 11 और 12)

वर्तमान मामले में, अभियुक्त ने विचारण न्यायालय के समक्ष प्रतिरक्षा साक्ष्य प्रस्तुत किया है और अपनी प्रतिरक्षा के समर्थन में कुल मिलाकर चार साक्षियों की परीक्षा की है । हैड कांस्टेबल मनहारन यादव (प्रतिरक्षा साक्षी 4) ने यह कथन किया है कि वह तारीख 14 मई, 1999 को पुलिस थाना कुर्सीपुर से संबद्ध पुलिस चौकी पर तैनात था । लगभग रात्रि 10.45 बजे अपीलार्थी बबले **उर्फ** गुरदीप सिंह वहां आया और उसने बताया कि जब वह नशे की हालत में गुरुद्वारे के पीछे से गुजर रहा था तब रास्ते में उसे ईश्वरी मिला जिसने उसके साथ दादागीरी का व्यवहार किया । उसने मनप्रीत के साथ, जिसके पास लाठी थी, उसके दोनों हाथों पर क्षतियां कारित कीं और इसके पश्चात् वह रिपोर्ट दर्ज कराने गया । इस घटना के अनुसरण में डा. प्रवीण चंद्र अग्रवाल (प्रतिरक्षा साक्षी 1) द्वारा अभियुक्त की चिकित्सा परीक्षा की गई जिन्होंने अभियुक्त के शरीर पर छह क्षतियां देखीं और उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला की क्षति सं. 1 से 3 किसी कठोर और तेज धार वाले हथियार से कारित की गई हैं और क्षति सं. 4 से 6 किसी कठोर और कुंद हथियार से कारित की गई हैं तथा सभी क्षतियां 24 घंटों के भीतर कारित की गई हैं । यह भी कथन किया गया है कि अपीलार्थी के मुख से उस समय शराब की दुर्गंध आ रही थी किंतु वह नशे में नहीं था । इसके अतिरिक्त, क्षति सं. 2 से 6 साधारण प्रकृति की पाई गईं और क्षति सं. 1 के संबंध में करोटि का एक्सरे कराने की सलाह दी गई किंतु वह

क्षति भी गंभीर नहीं पाई गई । कारित की गई क्षतियों की प्रकृति को दृष्टिगत करते हुए, अभियुक्त द्वारा प्रस्तुत किए गए पक्षकथन पर मुश्किल से ही विश्वास किया जा सकता है । मृतक को घातक क्षतियां कारित की गई हैं और अभियुक्त पर दो व्यक्तियों द्वारा लाठी और हथियारों से हमला किए जाने के बावजूद उसे साधारण क्षतियां कारित की गई हैं । ऐसी स्थिति में, स्वयं क्षतियां पहुंचाए जाने या अन्य किसी कारण क्षतियां पहुंचने की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है । दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के उपबंधों के अधीन विधानमंडल का आशय अभियुक्त के समक्ष उसके विरुद्ध अपराध में फंसाने वाली सभी सामग्री रखना है और यह भी उतना ही महत्वपूर्ण है कि अभियुक्त को अपना पक्षकथन प्रस्तुत करने के लिए अवसर उपलब्ध कराया जाए । अभियुक्त को यह विकल्प उपलब्ध है कि वह न्यायालय द्वारा प्रश्न पूछे जाने पर मौन रहे या उसका उत्तर दे । यदि अभियुक्त प्रश्न का उत्तर देना चाहता है और वास्तव में अपनी प्रतिरक्षा अग्रेसित करता है या यह कथन देता है कि घटना किस प्रकार घटित हुई तब अभियुक्त ऐसे कथन के प्रति बाध्य होगा और न्यायालय अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर उस पर विचार करने के लिए स्वतंत्र होगा । (पैरा 13 और 14)

वर्तमान मामले में, अभियुक्त ने जैसीकि ऊपर अवेक्षा की गई है, एक स्पष्टीकण दिया है । इस संबंध में न्यायालय का समाधान करना अभियुक्त का कर्तव्य है कि उसके द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण सत्य और ठीक है । निचले दोनों न्यायालयों ने अभियुक्त द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण को एक-साथ खारिज किया है । इसके प्रतिकूल, उन्होंने उक्त स्पष्टीकरण को तथ्यात्मक रूप से अनुचित पाया है । यह अभियोजन पक्ष का कर्तव्य है कि अपीलार्थी को पहुंची क्षतियों को स्पष्ट करे कि कब, कैसे और किस व्यक्ति द्वारा वे क्षतियां पहुंचाई गई हैं और इस तथ्य को भी स्पष्ट करे कि ये क्षतियां पृष्ठगत घटना के दौरान या अन्य किसी घटना में कारित की गई हैं ? निःसंदेह, अभियोजन पक्ष ने इस संबंध में कोई भी स्पष्टीकरण नहीं दिया है कि अपीलार्थी को ये क्षतियां कैसे पहुंची हैं किंतु इससे यह विश्वास नहीं किया जा सकता है कि अपीलार्थी निर्दोष है और उसके द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण स्वयमेव सिद्ध हो गया है । अपीलार्थी का स्पष्टीकरण सही और विधि के अनुसरण में है, यह साबित करने का भार अभी भी अपीलार्थी पर ही है । वर्तमान मामले में, अभियुक्त ने यह कथन किया है कि मृतक तलवार लिए हुए था और जब उसने उससे पूछा कि अन्य व्यक्ति क्यों लड़ रहे हैं और उसकी पिटाई क्यों कर रहे हैं, तब मृतक

ने उस पर तलवार से हमला किया । पहली बात तो यह है कि जब किसी व्यक्ति पर तलवार से हमला किया जाता है तब जैसी क्षति अपीलार्थी को पहुंची है वैसी क्षति पहुंचने की संभावना मुश्किल से ही होती है ; दूसरी बात यह है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (प्रदर्श डी. 2) में, जो उसने रजिस्ट्रीकृत कराई है, यह विशिष्ट रूप से कथन किया गया है कि मृतक द्वारा लाठी से क्षतियां कारित की गई हैं । इस प्रकार, (अपीलार्थी पर उक्त हमला किए जाने में प्रयोग किए गए हथियार को लेकर) गंभीर प्रकृति का स्पष्ट विरोधाभास है । तीसरी बात यह है कि चिकित्सक (प्रतिरक्षा साक्षी 1) ने, जिसने उसकी चिकित्सा परीक्षा की है, अपनी रिपोर्ट में कहीं भी यह उल्लेख नहीं किया है कि अभियुक्त को वे क्षतियां किसी प्रकार कारित हुई हैं । यहां तक कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अपने स्पष्टीकरण में अपीलार्थी ने यह कथन नहीं किया है कि उसने शराब पी रखी थी जबकि चिकित्सक के अनुसार अपीलार्थी के मुख से शराब की दुर्गंध आ रही थी यद्यपि वह नशे में नहीं था । अंतिम बात यह है कि अपीलार्थी द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण अत्यंत अप्राकृतिक प्रतीत होता है और मनुष्य के सामान्य आचरण के प्रतिकूल है । अपीलार्थी ने मृतक का मित्र होने का दावा किया है और उसने अपीलार्थी से पूछा था कि उसके साथ अन्य व्यक्ति क्यों लड़ रहे हैं और उसने मृतक की सहायता करने का आशय किया था । यदि ऐसा था तब कोई भी व्यक्ति अपने विवेक का प्रयोग करते हुए किसी शुभचिंतक को क्षतियां नहीं पहुंचाएगा, वह भी तलवार से । इन सभी परिस्थितियों से यह दर्शित होता है कि अभियुक्त द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण न तो तर्कसम्मत है और न ही सत्य है । (पैरा 15)

किंतु, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (प्रदर्श डी. 2) दर्ज किए जाने और दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन अभिलिखित किए गए उसके कथन से एक तथ्य पूर्णतया सिद्ध हो जाता है और कोई भी विवाद नहीं रह जाता है कि अपीलार्थी घटनास्थल पर मौजूद था और यह भी सिद्ध हो जाता है कि मृतक से उसकी लड़ाई हुई थी । जब एक बार ये दोनों परिस्थितियां स्वीकार कर ली गई हैं, इनसे मृत्युकालिक कथन, अभि. सा. 11 और अभि. सा. 14 के कथनों और अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए अन्य सारभूत साक्ष्य की पूर्णतया संपुष्टि हो जाती है । यदि अपीलार्थी तलवार लिए हुए था और अन्य व्यक्ति लाठियां लिए हुए थे तब यह बात समझ से बाहर है कि मृतक को कुल मिलाकर 15 क्षतियां कारित

हो जाएं जिनमें छिन्न घाव, रगड़, बीच की अंगुली का कट जाना और अन्य गंभीर क्षतियां सम्मिलित हैं और अपीलार्थी को मात्र साधारण छह क्षतियां कारित हों । इस बात से अपीलार्थी का पक्षकथन स्वयं ही मिथ्या हो जाता है । किसी भी स्थिति में, मृतक उस पर किए गए हमले के तत्पश्चात् किसी भी व्यक्ति को क्षतियां कारित कर ही नहीं सकता था, उसमें इतनी शक्ति ही नहीं बची थी कि वह अन्य व्यक्तियों को क्षति पहुंचाता । आश्चर्य की बात है, अभियुक्त ने अन्य सभी प्रश्नों से 'मालूम नहीं' या 'गलत है' कहकर इनकार किया है और ऐसा स्पष्टीकरण दिया है जो विश्वसनीय नहीं है । (पैरा 16)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1980]	(1980) 3 एस. सी. सी. 159 : **कृष्ण लाल** बनाम **हरियाणा राज्य** ।	11

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2010 की दांडिक अपील सं. 106.

2001 की दांडिक अपील सं. 235 में छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर के तारीख 15 नवंबर, 2006 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से	श्री आर. डी. उपाध्याय
प्रत्यर्थी की ओर से	सर्वश्री अतुल झा, संदीप झा और धमेंद्र कुमार सिन्हा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति स्वतंत्र कुमार ने दिया ।

न्या. कुमार – यह अपील छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर के तारीख 15 नवंबर, 2006 के उस निर्णय के विरुद्ध की गई है जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने विद्वान् चतुर्थ अपर सेशन न्यायाधीश, दुर्ग, छत्तीसगढ़ द्वारा पारित किए गए दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश को कायम रखा और अपीलार्थियों को भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में 'दंड संहिता' कहा गया है) की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध करते हुए उन्हें आजीवन कारावास अधिनिर्णीत किया । यद्यपि विचारण न्यायालय के समक्ष तीन अभियुक्तों का मामला प्रस्तुत किया गया था, किंतु वर्तमान अपील केवल अपीलार्थी/अभियुक्त सं. 1 अर्थात् बबले **उर्फ** गुरदीप सिंह द्वारा प्रस्तुत की गई है । अपीलाधीन

निर्णय पर आक्षेप करते हुए, अपीलार्थियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने अन्य बातों के साथ प्राथमिक रूप से निम्न दलीलें दीं :–

1. अभियुक्त के शरीर पर पाई गई क्षतियां अभियोजन पक्ष द्वारा स्पष्ट नहीं की गई हैं । यह कथन किया गया है कि अभियुक्त द्वारा मृतक को जो गंभीर क्षतियां कारित की गई हैं उनसे यह पता चलता है कि मृतक की ऐसी दशा हो ही नहीं सकती थी कि वह अभियुक्त को कोई भी क्षति कारित कर पाता । इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मृतक को ऐसी क्षतियां पहुंचने के पूर्व ही मृतक द्वारा अभियुक्त पर हमला किया गया था । अभियुक्त के शरीर पर स्वीकृत रूप से क्षतियां पाई गईं हैं । अभियोजन पक्ष इन क्षतियों को स्पष्ट करने में असफल रहा है । अभियोजन की इस असफलता से अभियोजन पक्षकथन न केवल असंभावी अपितु अविश्वसनीय हो जाता है ।

2. स्वीकार नहीं अपितु यह उपधारित करते हुए कि घटना साबित हो गई है, अभियुक्त प्राइवेट प्रतिरक्षा का अधिकार पाने का हकदार है क्योंकि उस पर हमला किया गया था और स्वयं को बचाने की प्रक्रिया में उसको क्षतियां पहुंची हैं । इस प्रकार, यह दलील दी गई है कि विधि की संवीक्षा किए जाने पर अभियुक्त/अपीलार्थी को दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता है और दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन उसकी दोषसिद्धि नहीं की जा सकती ।

3. अपीलार्थी ने यह भी कथन किया है कि इत्तिलाकर्ता तारिक शकील (अभि. सा. 1) पक्षद्रोही हो गया है । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सारभूत साक्ष्य न होने के कारण अभियोजन का संपूर्ण पक्षकथन अविश्वसनीय हो जाता है । अपीलाधीन निर्णयों में न्यायालयों ने साक्ष्य का सही परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन नहीं किया है और इस प्रकार ये निर्णय अपास्त किए जाने योग्य हैं ।

4. अंतिमतः, मृत्युकालिक कथन की संपुष्टि अन्य अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य से नहीं की गई है और उसमें कोई भी ब्यौरे नहीं दिए गए हैं । इस प्रकार न्यायालय उक्त मृत्युकालिक कथन का अवलंब ले ही नहीं सकता था ।

2. इससे पहले कि हम दी गई दलीलों के प्रति निर्देश मामले के

विधिक और तथ्यात्मक पहलुओं पर विचार करें, अभियोजन पक्षकथन को संक्षेप में निर्दिष्ट करना आवश्यक होगा ।

3. तारीख 14 मई, 1999 को लगभग 10.15 बजे अपराह्न में जब तारिक शकील (अभि. सा. 1) न्यू कुर्सीपुर, गुरुनानक चौक पर स्थित अपने एस. टी. डी. - पी. सी. ओ. पर बैठा हुआ था, तब गुड्डू **उर्फ** जितेन सोनी (अभि. सा. 12) वहां आया और उसने अभि. सा. 1 को यह सूचना दी कि अभियुक्त सरदार बबले उसकी दुकान के सामने ईश्वर वर्मा के साथ झगड़ा कर रहा है । यह सुनकर, अभि. सा. 1 ने अपनी दुकान बंद कर दी और अभि. सा. 12 के साथ घटनास्थल पर गया । अभियुक्त बबले अपने हाथ में तलवार लिए हुए था और उनकी तरफ दौड़ता हुआ आया । वे दोनों डरकर गली की ओर भागे । कुछ समय पश्चात्, यह शोर सुनाई दिया कि अभियुक्त बबले ने ईश्वर वर्मा को क्षतियां कारित की हैं और उक्त आहत क्षतिग्रस्त अवस्था में पड़ा हुआ है । उसे उसके चाचा बलवंत वर्मा (अभि. सा. 14) द्वारा बी. एस. पी. अस्पताल, सेक्टर-9 पहुंचाया गया जहां उसे भर्ती कर दिया गया । डा. ए. डी. बनर्जी (अभि. सा. 2) ने उसकी चिकित्सा परीक्षा की और उसे 'मृत अवस्था में लाया' घोषित कर दिया । इस संबंध में लिखित रिपोर्ट प्रदर्श पी. 5 तैयार की गई । इस मामले की रिपोर्ट पुलिस थाना भिलाई नगर को दी गई । टेलीफोन द्वारा भी संदेश भेजा गया । पुलिस थाने में तैनात उपनिरीक्षक सुरेश भगत (अभि. सा. 10) ने प्रदर्श पी. 22 के अनुसार दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 174 के अधीन मामला रजिस्ट्रीकृत किया । पुलिस थाना कुर्सीपुर में रजिस्ट्रीकृत घटना के संबंध में उसी दिन रात्रि के समय लगभग 12.15 बजे अभि. सा. 1 को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (प्रदर्श पी. 1) प्राप्त हुई और दंड संहिता की धारा 302 के अधीन मामला रजिस्ट्रीकृत कर दिया गया । अन्वेषक अधिकारी उपनिरीक्षक पी. एन. सिंह (अभि. सा. 13) ने अन्वेषण संभाला और वह घटनास्थल पर गया । उसने स्थल नक्शा प्रदर्श पी. 14 तैयार किया, रक्तरंजित मिट्टी, सादा मिट्टी और घड़ी की चैन अभिगृहीत की और इसके लिए अभिग्रहण ज्ञापन प्रदर्श पी. 20 भी तैयार किया । अन्वेषक अधिकारी ने मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट प्रदर्श पी. 4 पंचों की मौजूदगी में तैयार की । तारीख 15 मई, 1999 को 11.30 बजे पूर्वाह्न में डा. एस. आर. सुरेन्द्र (अभि. सा. 5) द्वारा मृतक के शव की शव-परीक्षा की गई । शवपरीक्षण रिपोर्ट प्रदर्श पी. 8 प्रस्तुत की गई जिसके अनुसार मृतक के शव पर निम्नलिखित क्षतियां पाई गईं :–

1. 5 सें. मी. × 0.5 सें. मी. माप का छिन्न घाव जो अस्थि तक गहरा है और उसका रंग लाल है जिसकी दिशा अग्र भाग पर ऊर्ध्वाधर है और शिरोवल्क के मध्य में है ।

2. 8 सें. मी. × 1.0 सें. मी. माप का छिन्न घाव जो अस्थि तक गहरा है और उसका रंग लाल है । घाव के किनारे अग्र भाग की ओर तिरछे उल्टे हुए हैं और शिरोवल्क के दाईं ओर हैं ।

3. 3.0 सें. मी. × 0.25 सें. मी. माप का छिन्न घाव जो बाएं कान के ऊपर 0.25 सें. मी. की दूरी पर है ।

4. 9.0 सें. मी. × 0.5 सें. मी. माप की रगड़ मौजूद है जो बाएं कान के नीचे है ।

5. 6.0 सें. मी. × 0.5 सें. मी. माप की रगड़ मौजूद है जिसका रंग काला है और यह प्रथम घाव के नीचे है ।

6. 5.0 सें. मी. × 0.5 सें. मी. माप का छिन्न घाव मौजूद है जो 0.5 सें. मी. तक गहरा और बाएं कंधे के पार्श्व में मौजूद है ।

7. 1.0 सें. मी. × 0.5 सें. मी. माप का छिन्न घाव मौजूद है जो 0.5 सें. मी. गहरा बाएं कंधे के अग्र भाग पर मौजूद है ।

8. मध्यमा (बीच की अंगुली) हथेली के आगे से कटी हुई है ।

9. अनामिका भी हथेली के आगे से कटी हुई है ।

10. 8.0 सें. मी. × 0.5 सें. मी. माप का छिन्न घाव जो 0.5 सें. मी. गहरा और उसका रंग लाल है जिसकी स्थिति दाएं अग्र भुजा के पार्श्व पर है ।

11. 2.0 सें. मी. × 2.0 सें. मी. माप की रगड़ जिसका रंग लाल है और वह दाईं भुजा के ऊपरी भाग के पार्श्व में स्थित है ।

12. 7.0 सें. मी. × 0.5 सें. मी. माप का छिन्न घाव जो 0.5 सें. मी. गहरा है और कोहनी के पार्श्व में स्थित है ।

13. 15 सें. मी. × 4.0 सें. मी. माप का छिन्न घाव जो 3.0 सें. मी. तक गहरा है जिसमें से मांस-रज्जु दिखाई दे रहा है और दाईं भुजा के निचले और मध्य भाग पर घाव में से रक्त वाहिनियां भी

दिखाई दे रही हैं ।

14. 4.0 सें. मी. × 4.0 सें. मी. माप का छिन्न घाव जो दाएं हाथ के अंगूठे और तर्जनी के बीच स्थित है । घाव में से तर्जनी की अस्थि दिखाई दे रही है ।

15. बाएं घुटने के जोड़ के ऊपर 4.0 सें. मी. की दूरी पर अग्र पश्चीय भाग के पीछे की ओर छिद्रयुक्त घाव मौजूद है । 4.0 सें. मी. × 3.0 सें. मी. माप का पश्च-मध्य भाग में प्रविष्टि घाव है । विच्छेदन करने पर जानुपृष्ठीय धमनी में कटाव पाया गया है ।

4. मृत्यु का कारण बेहोशी अभिलिखित किया गया जो मृत्यु के पूर्व की स्थिति है और यह बेहोशी किसी नुकीले तेज धार वाले हथियार द्वारा क्षति पहुंचाई जाने से कारित हुई है ।

5. अभियुक्तों को उनके द्वारा दिए गए प्रकटीकरण कथनों प्रदर्श पी. 15, पी. 16 और पी. 26 के आधार पर गिरफ्तार किया गया है । अपराध में प्रयोग किए गए हथियारों को अभिगृहीत किया गया है और अभिग्रहण ज्ञापन प्रदर्श पी. 17, 18 और 27 तैयार किए गए हैं । अभियुक्त बबले से रक्तरंजित कपड़े बरामद किए गए और अभिग्रहण ज्ञापन प्रदर्श पी. 19 तैयार किया गया है । अस्पताल से प्राप्त किए गए मृतक के मुहरबंद कपड़ों को अभिगृहीत किया गया है और अभिग्रहण ज्ञापन प्रदर्श पी. 29 तैयार किया गया है । अभिगृहीत वस्तुओं को रासायनिक परीक्षण के लिए भेजा गया है ।

6. अभियोजन का यह भी पक्षकथन है कि घटनास्थल के निकट के लोगों ने घटना देखी है । इसके तुरंत पश्चात् मृतक की भाभी जानकी (अभि. सा. 11) और चाचा बलवंत (अभि. सा. 14) घटनास्थल पर पहुंचे । बलवंत (अभि. सा. 14) ने मृतक से पूछा की उस पर किन लोगों ने हमला किया है । मृतक द्वारा नाम बताए जाने के पश्चात् अभियुक्तों को गिरफ्तार कर लिया गया और उन्होंने ऊपर कथित रूप में प्रकटीकरण कथन दिए है ।

7. यह उल्लेखनीय है कि अपीलार्थी बबले **उर्फ** गुरदीप सिंह ने यह कथन किया है कि घटना के दिन, वह रात्रि में लगभग 1-1.30 बजे ठेले वाले को दूध बेचकर प्राप्त किए धन को लेकर वापस आ रहा था । उसने देखा कि ईश्वरी, दलीप, डिम्पल और बागे गुरुनानक चौक पर झगड़ा कर

रहे हैं । उसने अपने मित्र ईश्वरी (मृतक) से पूछा कि क्या मामला है । बिना किसी प्रकोपन के ईश्वरी ने उसे गाली दी और अपने साथ लाई तलवार से उसके सिर पर क्षति कारित की । इस पर अभियुक्त भाग गया । दलीप और प्रकाश ने उसे भागते हुए देखा । घटनास्थल से चले जाने के कुछ समय पश्चात् उसने पुलिस में इस घटना की रिपोर्ट दर्ज कराई जिसमें उसने उसको कारित हुई क्षतियों का उल्लेख किया और वास्तव में उसकी चिकित्सा परीक्षा भी की गई और उसके सिर में पांच टांके लगाए गए । उसने यह बताया कि उसे इस मामले में मिथ्या फंसाया गया है ।

8. अभियुक्तों का विचारण किया गया और विद्वान् विचारण न्यायालय ने तारीख 27 फरवरी, 2001 के अपने निर्णय द्वारा सभी अभियुक्तों को दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन सामान्य आशय को अग्रसर करने में मृतक की मृत्यु कारित करने के लिए दोषी ठहराया और आजीवन कारावास भोगने का दंडादेश दिया । अभियुक्तों द्वारा अपील किए जाने पर उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि मौखिक मृत्युकालिक कथन की संपुष्टि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट से नहीं होती है क्योंकि दो अभियुक्तों अर्थात् पप्पी **उर्फ** अर्जुन सिंह और विक्की अर्थात् विक्रम, के नामों का उल्लेख मृत्युकालिक कथन में नहीं किया गया है और यह अभिनिर्धारित किया है कि इन दो अभियुक्तों को आलिप्त करने के लिए कोई भी विधिक और महत्वपूर्ण साक्ष्य नहीं है, इस प्रकार न्यायालय ने उन दोनों को दोषमुक्त कर दिया । बबले **उर्फ** गुरदीप के संबंध में उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्षों, दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश को कायम रखा है । तारीख 15 नवंबर, 2006 के उच्च न्यायालय के निर्णय की विधिकता और शुद्धता को वर्तमान अपील में चुनौती दी गई है ।

9. अपीलार्थी की ओर से दी गई दलीलों का उल्लेख करते हुए हम इस तथ्य को निर्दिष्ट करेंगे कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभि. सा. 1 के कथन के आधार पर दर्ज कराई गई है । अभि. सा. 1 ने पूर्ण रूप से अभियोजन पक्षकथन का समर्थन नहीं किया है और न्यायालय की अनुमति से उसे पक्षद्रोही घोषित किया गया है । यह प्रतिवाद किया गया है कि वर्तमान अपीलार्थी का पक्षकथन दोषमुक्त किए गए अभियुक्तों के पक्षकथन जैसा है और उच्च न्यायालय ने अभियुक्त-अपीलार्थी को दोषमुक्त न करके विधि की दृष्टि से गलती की है । इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (प्रदर्श पी. 1) अभि. सा. 1 के कथन के आधार

पर रजिस्ट्रीकृत की गई है और स्वयं इस साक्षी ने अभियोजन पक्षकथन का समर्थन नहीं किया है जिससे अभियोजन पक्षकथन संदिग्ध हो जाता है ।

10. जब एक बार पुलिस द्वारा प्रथम इत्तिला रिपोर्ट का रजिस्ट्रीकरण साबित कर दिया जाता है और न्यायालय द्वारा उसे अभिलेख पर स्वीकार कर लिया जाता है और अभियोजन पक्ष अन्य स्वीकृत, तर्कसम्मत और सुसंगत साक्ष्य द्वारा किसी भी संदेह के परे अपना पक्षकथन सिद्ध कर देता है तब न्यायालय के लिए प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के साक्ष्यिक महत्व को अनदेखा करना अननुज्ञेय होगा । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (प्रदर्श पी. 1) सम्यक् रूप से उपनिरीक्षक सुरेश भगत (अभि. सा. 10) के कथन द्वारा साबित की गई है । इस साक्षी के अनुसार उसने अभि. सा. 1 के कथन के आधार पर प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की है और उसने उस पर सम्यक् रूप से हस्ताक्षर किए हैं । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की गई है और उसे पुलिस थाने के उस अभिलेख के एक भाग के रूप में सम्यक् रूप से स्वीकार किया गया है जो सामान्य अनुक्रम में अन्वेषण के दौरान तैयार किया जाता है । इस प्रकार यह विधि की सुस्थापित प्रतिपादना है कि किसी भी स्थिति में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट स्वयं में सारभूत साक्ष्य नहीं है अपितु अन्वेषण अभिक्रम द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य की एक सुसंगत परिस्थिति है । मात्र इस कारण से कि अभि. सा. 1 पक्षद्रोही हो गया है, यह नहीं कहा जा सकता है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट की सभी सुसंगतता समाप्त हो गई है और इस पर किसी भी प्रयोजन से विचार नहीं किया जा सकता । वर्तमान मामले में अभि. सा. 11 और अभि. सा. 14 ऐसे दो व्यक्ति हैं जो घटना के तत्काल पश्चात् घटनास्थल पर पहुंचे हैं । इन व्यक्तियों को मृतक ने स्वयं ही बता दिया था कि हमलावर कौन है । इन साक्षियों ने सारभूत रूप से उन तथ्यों का समर्थन किया है जो प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में अभिलिखित किए गए हैं और इस बात से चिकित्सीय साक्ष्य और अन्य साक्षियों के कथनों की संपुष्टि भी हो जाती है । इन परिस्थितियों में, हम मात्र इस कारण से कि अभि. सा. 1 पक्षद्रोही हो गया है, अभि. सा. 11 और अभि. सा. 14 के कथनों को अविश्वसनीय नहीं ठहरा सकते । इसके अतिरिक्त, अभियुक्त व्यक्तियों के कथनों के अनुसरण में अपराध में प्रयोग किए गए हथियारों की बरामदगी की गई है ।

11. मृतक द्वारा अभि. सा. 14 को दिया गया मृत्युकालिक कथन न्यायालय द्वारा अनदेखा नहीं रह सकता है । अनुश्रुत साक्ष्य की अग्राह्यता के नियम का मौखिक मृत्युकालिक कथन एक अपवाद है । इस मामले में

मृत्युकालिक कथन विश्वसनीय, तर्कसम्मत है और उस घटना को स्पष्ट करता है जो सामान्य अनुक्रम में घटित हुई है जो कि मात्र संभावना ही नहीं है अपितु इसमें कोई भी संदेह नहीं रह जाता है कि ऐसी ही घटना वास्तव में घटित हुई है जैसी अभियोजन पक्ष द्वारा सिद्ध की गई है । जब एक बार विश्वसनीय, तर्कसम्मत और विश्वासप्रद साक्ष्य किसी एक अभियुक्त के विरुद्ध विद्यमान होता है तब अन्य अभियुक्तों की दोषमुक्ति किए जाने से अभियोजन पक्षकथन प्रभावित नहीं होगा । यदि उच्च न्यायालय अपनी न्यायिक विवेकाधिकार का प्रयोग अत्यंत सावधानीपूर्वक करते हुए प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में नामित न किए गए अभियुक्त को दोषमुक्त करे तब साथ ही उच्च न्यायालय वर्तमान अपीलार्थी को विधिमान्य कारणों के आधार पर अपराध का दोषी भी अभिनिर्धारित कर सकता है । उच्च न्यायालय ने इन दोनों निष्कर्षों के समर्थन में कारण अभिलिखित किए हैं (**कृष्ण लाल** बनाम **हरियाणा राज्य**[1] वाला मामला देखिए) ।

12. इस प्रकार हमारा यह निष्कर्ष है कि वर्तमान अपीलार्थी को अन्य दो अभियुक्तों की दोषमुक्ति से कोई भी फायदा नहीं मिल सकता है जिनसे यह न्यायालय असम्बद्ध को कोई भी लेना देना नहीं है क्योंकि राज्य ने उच्च न्यायालय के विनिश्चय के विरुद्ध कोई भी अपील नहीं की है । इसके अतिरिक्त, अभियोजन पक्षकथन अभि. सा. 14 को मृतक द्वारा दिए गए मृत्युकालिक कथन पर ही आधारित नहीं है अपितु अन्य ऐसी परिस्थितियां अर्थात् अपीलार्थी द्वारा किया गया प्रकीटकरण कथन और उसके आधार पर अपराध में प्रयोग किए गए हथियारों की पश्चात्वर्ती बरामदगी, अन्वेषक अधिकारी (अभि. सा. 13) का कथन, चिकित्सक (अभि. सा. 5) का कथन और वास्तव में घटना के संबंध में अभियुक्त का अपना वृत्तांत, भी हैं जिनसे अपीलार्थी के दोषी होने की बात का समर्थन होता है ।

13. वर्तमान मामले में, अभियुक्त ने विचारण न्यायालय के समक्ष प्रतिरक्षा साक्ष्य प्रस्तुत किया है और अपनी प्रतिरक्षा के समर्थन में कुल मिलाकर चार साक्षियों की परीक्षा की है । हैड कांस्टेबल मनहारन यादव (प्रतिरक्षा साक्षी 4) ने यह कथन किया है कि वह तारीख 14 मई, 1999 को पुलिस थाना कुर्सीपुर से संबद्ध पुलिस चौकी पर तैनात था । लगभग रात्रि 10.45 बजे अपीलार्थी बबले **उर्फ** गुरदीप सिंह वहां आया और उसने

---

[1] (1980) 3 एस. सी. सी. 159.

बताया कि जब वह नशे की हालत में गुरुद्वारे के पीछे से गुजर रहा था तब रास्ते में उसे ईश्वरी मिला जिसने उसके साथ दादागीरी का व्यवहार किया । उसने मनप्रीत के साथ, जिसके पास लाठी थी, उसके दोनों हाथों पर क्षतियां कारित कीं और इसके पश्चात् वह रिपोर्ट दर्ज कराने गया । इस घटना के अनुसरण में डा. प्रवीण चंद्र अग्रवाल (प्रतिरक्षा साक्षी 1) द्वारा अभियुक्त की चिकित्सा परीक्षा की गई जिन्होंने अभियुक्त के शरीर पर छह क्षतियां देखीं और उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला की क्षति सं. 1 से 3 किसी कठोर और तेज धार वाले हथियार से कारित की गई हैं और क्षति सं. 4 से 6 किसी कठोर और कुंद हथियार से कारित की गई हैं तथा सभी क्षतियां 24 घंटों के भीतर कारित की गई हैं । यह भी कथन किया गया है कि अपीलार्थी के मुख से उस समय शराब की दुर्गंध आ रही थी किंतु वह नशे में नहीं था । इसके अतिरिक्त, क्षति सं. 2 से 6 साधारण प्रकृति की पाई गई और क्षति सं. 1 के संबंध में करोटि का एक्सरे कराने की सलाह दी गई किंतु वह क्षति भी गंभीर नहीं पाई गई । कारित की गई क्षतियों की प्रकृति को दृष्टिगत करते हुए, अभियुक्त द्वारा प्रस्तुत किए गए पक्षकथन पर मुश्किल से ही विश्वास किया जा सकता है । मृतक को घातक क्षतियां कारित की गई हैं और अभियुक्त पर दो व्यक्तियों द्वारा लाठी और हथियारों से हमला किए जाने के बावजूद उसे साधारण क्षतियां कारित की गई हैं । ऐसी स्थिति में, स्वयं क्षतियां पहुंचाए जाने या अन्य किसी कारण क्षतियां पहुंचने की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है ।

14. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के उपबंधों के अधीन विधानमंडल का आशय अभियुक्त के समक्ष उसके विरुद्ध अपराध में फंसाने वाली सभी सामग्री रखना है और यह भी उतना ही महत्वपूर्ण है कि अभियुक्त को अपना पक्षकथन प्रस्तुत करने के लिए अवसर उपलब्ध कराया जाए । अभियुक्त को यह विकल्प उपलब्ध है कि वह न्यायालय द्वारा प्रश्न पूछे जाने पर मौन रहे या उसका उत्तर दे । यदि अभियुक्त प्रश्न का उत्तर देना चाहता है और वास्तव में अपनी प्रतिरक्षा अग्रेसित करता है या यह कथन देता है कि घटना किस प्रकार घटित हुई तब अभियुक्त ऐसे कथन के प्रति बाध्य होगा और न्यायालय अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर उस पर विचार करने के लिए स्वतंत्र होगा ।

15. वर्तमान मामले में, अभियुक्त ने जैसीकि ऊपर अवेक्षा की गई है, एक स्पष्टीकण दिया है । इस संबंध में न्यायालय का समाधान करना अभियुक्त का कर्तव्य है कि उसके द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण सत्य और

ठीक है । निचले दोनों न्यायालयों ने अभियुक्त द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण को एक-साथ खारिज किया है । इसके प्रतिकूल, उन्होंने उक्त स्पष्टीकरण को तथ्यात्मक रूप से अनुचित पाया है । यह अभियोजन पक्ष का कर्तव्य है कि अपीलार्थी को पहुंची क्षतियों को स्पष्ट करे कि कब, कैसे और किस व्यक्ति द्वारा वे क्षतियां पहुंचाई गई हैं और इस तथ्य को भी स्पष्ट करे कि ये क्षतियां पृष्ठगत घटना के दौरान या अन्य किसी घटना में कारित की गई हैं ? निःसंदेह, अभियोजन पक्ष ने इस संबंध में कोई भी स्पष्टीकरण नहीं दिया है कि अपीलार्थी को ये क्षतियां कैसे पहुंची हैं किंतु इससे यह विश्वास नहीं किया जा सकता है कि अपीलार्थी निर्दोष है और उसके द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण स्वयमेव सिद्ध हो गया है । अपीलार्थी का स्पष्टीकरण सही और विधि के अनुसरण में है, यह साबित करने का भार अभी भी अपीलार्थी पर ही है । वर्तमान मामले में, अभियुक्त ने यह कथन किया है कि मृतक तलवार लिए हुए था और जब उसने उससे पूछा कि अन्य व्यक्ति क्यों लड़ रहे हैं और उसकी पिटाई क्यों कर रहे हैं, तब मृतक ने उस पर तलवार से हमला किया । पहली बात तो यह है कि जब किसी व्यक्ति पर तलवार से हमला किया जाता है तब जैसी क्षति अपीलार्थी को पहुंची है वैसी क्षति पहुंचने की संभावना मुश्किल से ही होती है ; दूसरी बात यह है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (प्रदर्श डी. 2) में, जो उसने रजिस्ट्रीकृत कराई है, यह विशिष्ट रूप से कथन किया गया है कि मृतक द्वारा लाठी से क्षतियां कारित की गई हैं । इस प्रकार, (अपीलार्थी पर उक्त हमला किए जाने में प्रयोग किए गए हथियार को लेकर) गंभीर प्रकृति का स्पष्ट विरोधाभास है । तीसरी बात यह है कि चिकित्सक (प्रतिरक्षा साक्षी 1) ने, जिसने उसकी चिकित्सा परीक्षा की है, अपनी रिपोर्ट में कहीं भी यह उल्लेख नहीं किया है कि अभियुक्त को वे क्षतियां किसी प्रकार कारित हुई हैं । यहां तक कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अपने स्पष्टीकरण में अपीलार्थी ने यह कथन नहीं किया है कि उसने शराब पी रखी थी जबकि चिकित्सक के अनुसार अपीलार्थी के मुख से शराब की दुर्गंध आ रही थी यद्यपि वह नशे में नहीं था । अंतिम बात यह है कि अपीलार्थी द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण अत्यंत अप्राकृतिक प्रतीत होता है और मनुष्य के सामान्य आचरण के प्रतिकूल है । अपीलार्थी ने मृतक का मित्र होने का दावा किया है और उसने अपीलार्थी से पूछा था कि उसके साथ अन्य व्यक्ति क्यों लड़ रहे हैं और उसने मृतक की सहायता करने का आशय किया था । यदि ऐसा था तब कोई भी व्यक्ति अपने विवेक का प्रयोग करते हुए किसी शुभचिंतक को क्षतियां नहीं पहुंचाएगा, वह भी

तलवार से । इन सभी परिस्थितियों से यह दर्शित होता है कि अभियुक्त द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण न तो तर्कसम्मत है और न ही सत्य है ।

16. किंतु, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (प्रदर्श डी. 2) दर्ज किए जाने और दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन अभिलिखित किए गए उसके कथन से एक तथ्य पूर्णतया सिद्ध हो जाता है और कोई भी विवाद नहीं रह जाता है कि अपीलार्थी घटनास्थल पर मौजूद था और यह भी सिद्ध हो जाता है कि मृतक से उसकी लड़ाई हुई थी । जब एक बार ये दोनों परिस्थितियां स्वीकार कर ली गई हैं, इनसे मृत्युकालिक कथन, अभि. सा. 11 और अभि. सा. 14 के कथनों और अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए अन्य सारभूत साक्ष्य की पूर्णतया संपुष्टि हो जाती है । यदि अपीलार्थी तलवार लिए हुए था और अन्य व्यक्ति लाठियां लिए हुए थे तब यह बात समझ से बाहर है कि मृतक को कुल मिलाकर 15 क्षतियां कारित हो जाएं जिनमें छिन्न घाव, रगड़, बीच की अंगुली का कट जाना और अन्य गंभीर क्षतियां सम्मिलित हैं और अपीलार्थी को मात्र साधारण छह क्षतियां कारित हों । इस बात से अपीलार्थी का पक्षकथन स्वयं ही मिथ्या हो जाता है । किसी भी स्थिति में, मृतक उस पर किए गए हमले के तत्पश्चात् किसी भी व्यक्ति को क्षतियां कारित कर ही नहीं सकता था, उसमें इतनी शक्ति ही नहीं बची थी कि वह अन्य व्यक्तियों को क्षति पहुंचाता । आश्चर्य की बात है, अभियुक्त ने अन्य सभी प्रश्नों से 'मालूम नहीं' या 'गलत है' कहकर इनकार किया है और ऐसा स्पष्टीकरण दिया है जो विश्वसनीय नहीं है ।

17. ऊपर कथित कारणों के आधार पर हमारा यह निष्कर्ष है कि वर्तमान अपील में कोई सार नहीं है और यह खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

अस./अनू.

[2013] 1 उम. नि. प. 168

फैज़ा चौधरी

बनाम

जम्मू-कश्मीर राज्य और एक अन्य

6 सितम्बर, 2012

न्यायमूर्ति के. एस. राधाकृष्णन् और न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 15 [सपठित भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद् अधिनियम, 1956 की धारा 10क और 11(2) तथा जम्मू-कश्मीर आरक्षण अधिनियम, 2004 की धारा 9] – चिकित्सा शिक्षा – आरक्षण – पूर्व वर्ष के रिक्त आरक्षित स्थान को अग्रनीत करना – चिकित्सा शिक्षा में किसी स्थान का अस्तित्व केवल उस वर्ष के लिए, जिसमें वह उद्भूत होता है और वह भी इस न्यायालय द्वारा नियत कट-ऑफ तारीख तक, अर्थात् संबंधित वर्ष की तारीख 30 सितम्बर तक होता है और चिकित्सा, इंजीनियरिंग, दंत-चिकित्सा आदि वृत्तिक पाठ्यक्रमों में अग्रनीत करने का सिद्धांत अज्ञात है, इसलिए किसी कानूनी उपबंध के अभाव में अग्रनयन सिद्धांत को लागू करने से योग्यता के नियम का अतिक्रमण होगा ।

जम्मू-कश्मीर आरक्षण अधिनियम, 2004 की धारा 9 के निबंधनानुसार जम्मू-कश्मीर राज्य में विभिन्न वृत्तिक पाठ्यक्रमों में कुल स्थानों के 50 प्रतिशत स्थान खुली योग्यता और आरक्षित प्रवर्ग दोनों में से महिला अभ्यर्थियों में से भरे जाने हैं । शैक्षणिक वर्ष 2010 में अनुसूचित जनजाति गूजर बकरवाल (एस.टी.जी.बी.) प्रवर्ग को 15 स्थान आबंटित किए गए थे । एस.टी.जी.बी. को आबंटित इन 15 स्थानों में से 7-7 स्थान क्रमशः पुरुष और महिला अभ्यर्थियों को आबंटित किए गए थे । जम्मू-कश्मीर वृत्तिक प्रवेश परीक्षा बोर्ड ने यह निर्णय लिया था कि शैक्षणिक वर्ष 2010 में 15वां विषय स्थान चक्रानुक्रम द्वारा महिला अभ्यर्थी को आबंटित किया गया था क्योंकि इससे पूर्व वह स्थान पुरुष अभ्यर्थी को आबंटित किया गया था । अपीलार्थी भी, जो कि एक महिला अभ्यर्थी है, एस. टी. जी. बी. प्रवर्ग के अधीन योग्यता-सूची में शामिल थी किन्तु उसने चार अन्य महिला अभ्यर्थियों के मुकाबले कम अंक प्राप्त किए थे । इन चार महिला अभ्यर्थियों में से प्रथम महिला अभ्यर्थी ने 121 अंक प्राप्त किए थे । किन्तु 'अ.ना.' नामक पुरुष अभ्यर्थी ने, जिसने प्रथम महिला अभ्यर्थी से काफी अधिक 146 अंक प्राप्त किए थे, उच्च न्यायालय के समक्ष यह कथन करते हुए

15वें विषम स्थान पर दावा पेश किया कि पुरुष और महिला अभ्यर्थियों के बीच कोई विभेद नहीं किया जा सकता है । उच्च न्यायालय ने प्रारंभ में, अंतरिम आदेश द्वारा बोर्ड को 18 अगस्त, 2010 तक एस. टी. जी. बी. प्रवर्ग के अधीन उक्त स्थान पर चयन करने के संबंध में कोई विनिश्चय करने से अवरुद्ध कर दिया किन्तु उसने अंततः वह रिट याचिका तारीख 8 जुलाई, 2011 को खारिज कर दी चूंकि तब तक उसमें के याची को पश्चात्वर्ती चयन प्रक्रिया में प्रवेश मिल गया था । अतः, शैक्षणिक वर्ष 2010 में उद्भूत 15वां विषय स्थान खाली रह गया था । इसके पश्चात्, अपीलार्थी ने वर्ष 2011 में बोर्ड के समक्ष अभ्यावेदन प्रस्तुत किया और उस स्थान पर जो एस. टी. जी. बी. प्रवर्ग के अधीन वर्ष 2010 में रिक्त रह गया था, प्रवेश की ईप्सा की । चूंकि बोर्ड ने उसके अभ्यावेदन पर कोई विनिश्चय नहीं लिया था इसलिए उसने उच्च न्यायालय में तारीख 25 जुलाई, 2011 को एक रिट याचिका फाइल की जिसमें बोर्ड को यह निदेश देने की ईप्सा की गई कि वह स्थान उसे दिया जाए । उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित करते हुए वह रिट याचिका मंजूर कर ली कि अपीलार्थी वर्ष 2010 के भरे न गए स्थान पर प्रवेश पाने की हकदार है । एकल न्यायाधीश ने बोर्ड को प्रवेश की समय-सीमा में विस्तार की मांग करने का निदेश दिया और यह भी कहा कि यदि समय-सीमा में विस्तार नहीं किया जाता है तो अपीलार्थी को वर्ष 2012 में एम. बी. बी. एस. पाठ्यक्रम में प्रवेश दिया जाना चाहिए । इससे व्यथित होकर बोर्ड ने खंड न्यायपीठ के समक्ष लेटर्स पेटेंट अपील फाइल की जिसने यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि वृत्तिक पाठ्यक्रमों और विशेष रूप से एम. बी. बी. एस. पाठ्यक्रम में चयन करने के लिए एकमात्र मापदंड योग्यता थी इसलिए बोर्ड का यह कर्तव्य था कि वह वर्ष 2010 का खाली स्थान उच्चतर योग्यता के आधार पर एन. आर. को आबंटित करे और विधि की दृष्टि से अपीलार्थी का उस रिक्त स्थान पर जो वर्ष 2010 में उद्भूत हुआ था, दावा करने का कोई अधिकार नहीं था । इसके अलावा, खंड न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि किसी एक शैक्षणिक वर्ष का भरा न गया स्थान कट-ऑफ तारीख के पश्चात् भरा नहीं जा सकता था और न ही उसे अगले शैक्षणिक वर्ष में भरे जाने का निदेश दिया जा सकता था । तदनुसार खंड न्यायपीठ ने एकल न्यायाधीश के आदेश को अपास्त कर दिया । खंड न्यायपीठ के निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की गई है । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – विधि और तथ्यों के आधार पर भी अपीलार्थी को वर्ष 2010 में एम. बी. बी. एस. के खाली स्थान के लिए वर्ष 2011 या पश्चात्वर्ती वर्षों में किसी प्रकार का दावा करने का कोई अधिकार नहीं है । बोर्ड को वह स्थान एक अन्य महिला अभ्यर्थी को आबंटित कर देना चाहिए था, जिसने 121 अंक प्राप्त किए थे । चूंकि मुकदमेबाजी चल रही थी इसलिए वह उस स्थान के लिए अनिश्चित समय तक प्रतीक्षा नहीं कर सकती थी और इसलिए उसने बी. डी. एस. में स्थान स्वीकार कर लिया था । योग्यता क्रम में अगले दो अभ्यर्थियों ने 118-118 अंक प्राप्त किए थे, किन्तु उन्हें एम. बी. बी. एस. पाठ्यक्रम में प्रवेश मिल गया था । एक अन्य अभ्यर्थी को, जो रैंक में अपीलार्थी से ऊपर थी, तत्समय चल रही मुकदमेबाजी के कारण, बी. डी. एस. में स्थान लेकर संतोष करना पड़ा था । अपीलार्थी ने अज़हर नाविद द्वारा फाइल की गई रिट याचिका में कभी भी स्वयं को पक्षकार नहीं बनाया और न ही वर्ष 2010 में उस स्थान पर कोई दावा किया । जब अज़हर नाविद द्वारा फाइल की गई रिट याचिका तारीख 8 जुलाई, 2011 को खारिज कर दी गई थी, केवल तभी उसने प्रथम बार वर्ष 2011 में एक अभ्यावेदन फाइल किया था जिसमें उसने 2010 के भरे न गए स्थान पर दावा किया था किन्तु तब तक इस न्यायालय द्वारा वर्ष 2010 के प्रवेश के लिए नियत कट ऑफ तारीख, अर्थात् 30 सितम्बर समाप्त हो गई थी । इसके अलावा, कुछ ऐसे महिला अभ्यर्थियों को, जिन्होंने अपीलार्थी से अधिक अंक प्राप्त किए थे, बी. डी. एस. में स्थान पाकर संतोष करना पड़ा था । यदि वर्ष 2010 का भरा न गया एम. बी. बी. एस. का स्थान अपीलार्थी को वर्ष 2012 में प्रस्थापित किया जाता है तो इससे उन अभ्यर्थियों के साथ अन्याय होगा जिनका रैंक अपीलार्थी के रैंक से ऊपर था । (पैरा 11)

चिकित्सा शिक्षा में किसी स्थान का अस्तित्व केवल उस वर्ष के लिए, जिसमें वह उद्भूत होता है और वह भी इस न्यायालय द्वारा नियत कट-ऑफ तारीख तक, अर्थात् संबंधित वर्ष की तारीख 30 सितम्बर तक होता है । चिकित्सा, इंजीनियरिंग, दंत-चिकित्सा आदि वृत्तिक पाठ्यक्रमों में अग्रनीत करने का सिद्धांत अज्ञात है । हमारी जानकारी में ऐसा कोई नियम या विनियम नहीं लाया गया है जिसमें बोर्ड को किसी खाली स्थान को उत्तरवर्ती वर्ष में अग्रनीत करने की शक्ति प्रदान की गई हो । यदि बोर्ड या न्यायालय ऐसी कोई कार्यवाही करते हैं तो किसी नियम या विनियम के अभाव में यह उन अन्य योग्य अभ्यर्थियों के लिए हानिकर होगा जो

उत्तरवर्ती वर्षों में प्रवेश की प्रतीक्षा कर रहे होते हैं । (पैरा 12)

भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद् अधिनियम में यह उपबंध है कि चिकित्सा महाविद्यालयों द्वारा केवल उतनी स्वीकृत स्थान-क्षमता के भीतर ही प्रवेश दिया जा सकता है जितने स्थानों के लिए धारा 10क के अधीन अनुज्ञा/धारा 11(2) के अधीन मान्यता प्रदान की गई है । (पैरा 13)

अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल ने यह कथन करते हुए इस न्यायालय के कुछ निर्णयों के प्रति निर्देश किया की इस न्यायालय ने इससे पूर्व भी अभ्यर्थियों को उत्तरवर्षों में समायोजित करने के लिए कतिपय निदेश दिए थे किन्तु ऐसा असाधारण परिस्थितियों में ही किया गया था और ऐसे निदेश संविधान के अनुच्छेद 141 में अंतर्विष्ट आज्ञा को ध्यान में रखते हुए जारी किए गए थे जिन्हें इस न्यायालय या उच्च न्यायालयों द्वारा अनुसरण करने हेतु पूर्व-निर्णय के रूप में नहीं माना जा सकता है । अतः, किसी विशेष वर्ष में खाली हुआ स्थान, इस संबंध में किसी नियम या विनियम के अभाव में किसी उत्तरवर्ती वर्ष में अग्रनीत या सृजित नहीं किया जा सकता है । (पैरा 14)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[2012]	जे. टी. 2012 (7) एस. सी. 500 : **सत्यप्रत साहू और अन्य** बनाम **उड़ीसा राज्य और अन्य**;	13
[2002]	(2002) 7 एस. सी. सी. 255: **भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद्** बनाम **मधु सिंह और अन्य**;	13
[1994]	(1994) 1 एस. सी. सी. 175: **पंजाब राज्य और अन्य** बनाम **रेणुका सिंगला और अन्य**;	13
[1988]	(1988) 6 एस. सी. सी. 131: **भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद्** बनाम **कर्नाटक राज्य** ।	13

निर्दिष्ट निर्णय

[2010]	(2010) 1 एस. सी. सी. 173: **भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद्** बनाम **मानस रंजन बेहरा और अन्य**;	8

[2008] (2008) 17 एस. सी. सी. 435:
मृदुल धर (अवयस्क) और एक अन्य बनाम
भारत संघ और अन्य; 8

[2005] (2005) 13 एस. सी. सी. 461:
विजय जामिनी बनाम **भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद्**
और अन्य; 8

[2005] (2005) 9 एस. सी. सी. 779:
डॉली छंदा बनाम **अध्यक्ष, जे. ई. ई. और अन्य**; 8

[2005] (2005) 2 एस. सी. सी. 65:
मृदुल धर (अवयस्क) और एक अन्य बनाम
भारत संघ और अन्य; 5

[1995] (1995) 5 एस. सी. सी. 173:
अनिल कुमार गुप्ता बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**
और अन्य; 8

[1989] (1989) 2 (सप्ली.) एस. सी. सी. 169:
हरियाणा शहरी विकास प्राधिकरण बनाम **सुनीता रेखी**; 7

[1986] (1986) 4 एस. सी. सी. 268:
नीलिमा शंगला बनाम **हरियाणा राज्य और अन्य** । 7

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2012 की सिविल अपील सं. 6346.

2012 की लेटर्स पेटेंट अपील ओ. डब्ल्यू. सं. 29 में जम्मू-कश्मीर उच्च न्यायालय के तारीख 4 जुलाई, 2012 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री प्रोफेसर भीम सिंह, ज्येष्ठ अधिवक्ता, दिनेश कुमार. बी. एस. बिलोरिग, (सुश्री) मेहा अग्रवाल और अभिषेक गर्ग

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री सुनील फर्नांडिज़, (सुश्री) वरनिका तोमर, (सुश्री) आस्था शर्मा, शशांक के. लाल, अमित कुमार और आशीष कुमार

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति के. एस. राधाकृष्णन् ने दिया ।

न्या. राधाकृष्णन् – इजाजत दी जाती है ।

2. इस मामले में हमारा संबंध इस प्रश्न से है कि क्या एम. बी. बी. एस. का कोई स्थान, जो वर्ष 2010 में रिक्त हुआ था, वर्ष 2012 के लिए अग्रनीत किया जा सकता था जिससे कि ऐसे अभ्यर्थी को समायोजित किया जा सके जो कि वर्ष 2010 में प्रकाशित योग्यता सूची में था ।

3. हम उक्त प्रश्न का उत्तर देने के लिए कुछ सुसंगत तथ्यों के प्रति निर्देश कर सकते हैं । विभिन्न वृत्तिक पाठ्यक्रमों, जैसे चिकित्सा, इंजीनियरिंग, दंत-चिकित्सा इत्यादि में प्रवेश जम्मू-कश्मीर वृत्तिक प्रवेश परीक्षा बोर्ड (जिसे संक्षेप में 'बोर्ड' कहा गया है) द्वारा किया जा रहा है, जिसका गठन जम्मू-कश्मीर वृत्तिक प्रवेश परीक्षा बोर्ड अधिनियम (जम्मू एंड कश्मीर बोर्ड ऑफ प्रोफैशनल इंट्रेंस एग्ज़ामिनेशन ऐक्ट), 2002 के अधीन किया गया था । बोर्ड को जम्मू-कश्मीर राज्य में विभिन्न वृत्तिक पाठ्यक्रमों में प्रवेश के लिए योग्य अभ्यर्थियों का चयन करने के लिए सामान्य प्रवेश परीक्षा आयोजित करने का कानूनी कर्तव्य निहित किया गया है । शैक्षणिक वर्ष 2010 में, जम्मू-कश्मीर राज्य के विभिन्न सरकारी चिकित्सा महाविद्यालयों में एम. बी. बी. एस. पाठ्यक्रम के लिए 249 स्थान भरे जाने थे । बोर्ड ने ऊपर उल्लिखित स्थानों पर योग्य अभ्यर्थियों का चयन करने के लिए कार्यवाहियां आरंभ कीं । जम्मू-कश्मीर आरक्षण अधिनियम (जम्मू एंड कश्मीर रिज़र्वेशन ऐक्ट), 2004 की धारा 9 के निबंधनानुसार कुल स्थानों के 50 प्रतिशत स्थान खुली योग्यता और आरक्षित प्रवर्ग दोनों में से महिला अभ्यर्थियों में से भरे जाने थे । अनुसूचित जनजाति गूजर बकरवाल (जिसे संक्षेप में 'एस. टी. जी. बी.' कहा गया है) प्रवर्ग को 15 स्थान आबंटित किए गए थे । एस. टी. जी. बी. प्रवर्ग को आबंटित 15 स्थानों में से 7-7 स्थान क्रमशः पुरुष और महिला अभ्यर्थियों को आबंटित किए गए थे । बोर्ड ने यह विनिश्चय किया था कि वर्ष 2010 में 15वां विषम स्थान चक्रानुक्रम के आधार पर महिला अभ्यर्थी को आबंटित किया जाना था क्योंकि इससे पूर्व वह स्थान एक पुरुष अभ्यर्थी को आबंटित किया गया था । अपीलार्थी भी बोर्ड द्वारा आरंभ की गई उस चयन प्रक्रिया के अध्यधीन थी । वह एस. टी. जी. बी. प्रवर्ग के अधीन योग्यता सूची में भी शामिल थी किन्तु उसका योग्यताक्रम नीचे था । उन अभ्यर्थियों के ब्यौरे नीचे दिए गए हैं जिन्होंने अपीलार्थी से अधिक अंक प्राप्त किए थे : –

क्रम सं.	अनुक्रमांक	अभ्यर्थी का नाम	लिंग	प्रवर्ग	अंक	रैंक
1	312173	नुसरत रशीद	महिला	एस.टी.जी.बी.	121	1817
2	301491	महरूल निसा	महिला	एस.टी.जी.बी.	118	2081
3	302510	फराह चौवान	महिला	एस.टी.जी.बी.	118	2200
4	302178	आबिदा परवीन	महिला	एस.टी.जी.बी.	117	2208

ऊपर उल्लिखित सभी अभ्यर्थी महिला अभ्यर्थी थे और योग्यता क्रम के अनुसार प्रथम महिला अभ्यर्थी नुसरत रशीद को 15वां विषम स्थान मिलना चाहिए था । अज़हर नाविद नामक एक पुरुष अभ्यर्थी ने, जिसने 146 अंक प्राप्त किए थे और जो कि महिला अभ्यर्थियों द्वारा प्राप्त अंकों से काफी अधिक थे, जम्मू-कश्मीर उच्च न्यायालय के समक्ष 2010 की रिट याचिका ओ. डब्ल्यू. पी. सं. 806 फाइल की जिसमें यह कथन करते हुए उस स्थान पर दावा किया गया कि पुरुष और महिला अभ्यर्थियों के बीच कोई विभेद नहीं किया जा सकता था । उस रिट याचिका में, रेहाना बशीर नामक महिला के अलावा नुसरत रशीद को भी, जिसने 121 अंक प्राप्त किए थे, पक्षकार बनाया गया था । उन सभी ने वर्ष 2010 में एम. बी. बी. एस. पाठ्यक्रम में एस. टी. जी. बी. प्रवर्ग के अधीन उस स्थान का दावा किया था ।

4. न्यायालय ने तारीख 4 अगस्त, 2010 के अपने आदेश द्वारा बोर्ड को एस. टी. जी. बी. प्रवर्ग के अधीन उस स्थान पर चयन करने के संबंध में कोई विनिश्चय लेने से तारीख 18 अगस्त, 2010 तक अवरुद्ध कर दिया । तथापि, वह रिट याचिका न्यायालय द्वारा तारीख 8 जुलाई, 2011 को खारिज कर दी गई थी चूंकि अज़हर नाविद को, जो उस मामले में याची था, पश्चात्वर्ती चयन प्रक्रिया में प्रवेश मिल गया था । अतः, वह 15वां विषम स्थान, जो कि वर्ष 2010 में उद्भूत हुआ था, खाली रह गया था ।

5. अपीलार्थी ने, यद्यपि उसके अंक उपरोक्त चार्ट में उल्लिखित अभ्यर्थियों के अंकों से काफी कम थे, वर्ष 2011 में बोर्ड के समक्ष एक अभ्यावेदन किया जिसमें उस स्थान पर प्रवेश की ईप्सा की गई थी जो एस. टी. जी. बी. प्रवर्ग के अधीन वर्ष 2010 में रिक्त रह गया था । चूंकि उस अभ्यावेदन पर कोई विनिश्चय नहीं किया गया था इसलिए अपीलार्थी ने तारीख 25 जुलाई, 2011 को 2011 का ओ. डब्ल्यू. पी. सं. 1010

फाइल किया जिसमें बोर्ड को वह स्थान उसे प्रस्थापित करने का निदेश देने की ईप्सा की गई । वह रिट याचिका उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश के समक्ष तारीख 19 मार्च, 2012 को सुनवाई के लिए आई और न्यायालय ने उसे यह अभिनिर्धारित करते हुए मंजूर कर लिया कि अपीलार्थी वर्ष 2010 के लिए एम. बी. बी. एस. के भरे न गए स्थान पर प्रवेश पाने की हकदार थी । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने बोर्ड को यह निदेश भी दिया कि वह **मृदुल धर (अवयस्क) और एक अन्य** बनाम **भारत संघ और अन्य**[1] वाले मामले में अधिकथित समय-अनुसूची में विस्तार करने की ईप्सा करे । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने आगे यह निदेश दिया कि समय-अनुसूची में विस्तार न किए जाने की दशा में अपीलार्थी को एम. बी. बी. एस. पाठ्यक्रम के लिए वर्ष 2012 में प्रवेश दिया जाना चाहिए ।

6. बोर्ड ने विद्वान् एकल न्यायाधीश के निर्णय से व्यथित होकर उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के समक्ष 2012 की लेटर्स पेटेंट अपील ओ. डब्ल्यू. सं. 29 फाइल की । वह अपील खंड न्यायपीठ द्वारा यह मत अपनाते हुए मंजूर कर ली गई थी कि चूंकि वृत्तिक पाठ्यक्रमों में, विशेष रूप से एम. बी. बी. एस. पाठ्यक्रम में चयन करने के लिए योग्यता मार्गदर्शक मापदंड थी इसलिए बोर्ड उच्चतर योग्यता के आधार पर नुसरत रशीद को वह स्थान आबंटित करने के लिए कर्तव्यबद्ध था । यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अपीलार्थी को एम. बी. बी. एस. के भरे न गए उस स्थान पर, जो वर्ष 2010 में उद्भूत हुआ था, वर्ष 2011 में दावा करने का विधि की दृष्टि से कोई अधिकार नहीं था । न्यायालय ने यह मत भी अपनाया कि एक शैक्षणिक वर्ष का भरा न गया स्थान कट-ऑफ तारीख के पश्चात् भरा नहीं जा सकता था या उसे अगले शैक्षणिक वर्ष में भरे जाने का निदेश नहीं दिया जा सकता था । तदनुसार, खंड न्यायपीठ ने अपील मंजूर कर ली, जिसके विरुद्ध यह अपील फाइल की गई है ।

7. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल श्री भीम सिंह ने यह दलील दी कि अपीलार्थी और एकमात्र अपीलार्थी ने ही बोर्ड के समक्ष अभ्यावेदन किया था जिसमें अज़हर नाविद द्वारा फाइल की गई 2010 की रिट याचिका सं. ओ. डब्ल्यू. पी. सं. 806 के खारिज हो जाने के पश्चात् वर्ष 2010 के भरे न गए स्थान पर दावा किया गया था । अन्य अभ्यर्थियों ने, जिन्होंने अपीलार्थी से अधिक अंक अर्जित किए थे, उस

---

[1] (2005) 2 एस. सी. सी. 65.

समय तक या तो एम. बी. बी. एस. या बी. डी. एस. पाठ्यक्रमों में प्रवेश प्राप्त कर लिया था और उनका उस स्थान पर कोई हित नहीं था जो वर्ष 2010 में रिक्त रह गया था । विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल ने **नीलिमा शंगला** बनाम **हरियाणा राज्य और अन्य**[1] और **हरियाणा शहरी विकास प्राधिकरण** बनाम **सुनीता रेखी**[2] वाले मामलों में इस न्यायालय के निर्णयों के प्रति निर्देश किया और यह दलील दी कि वे व्यक्ति ही, जिन्होंने समुचित समय पर अधिकारों के संबंध में विवाद किया था, इस न्यायालय से अनुतोष प्राप्त करने के हकदार हैं न कि वे व्यक्ति जिन्होंने अपने अधिकारों के संबंध में कोई कार्यवाही नहीं की ।

8. विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल ने यह दलील भी दी कि अपीलार्थी अज़हर नाविद द्वारा फाइल की गई रिट याचिका के परिणाम की प्रतीक्षा कर रही थी अन्यथा उसे बी. डी. एस. पाठ्यक्रम में प्रवेश मिल गया होता । विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल ने यह दलील दी कि उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने ठीक ही यह निष्कर्ष निकाला था कि अपीलार्थी रिक्त स्थान के लिए अपना दावा कर सकती थी और यह कि यह न्यायालय समुचित मामलों में वृत्तिक पाठ्यक्रमों में प्रवेश के लिए नियत समय सीमा में विस्तार कर सकता है । विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल ने अपनी दलील के समर्थन में इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों के प्रति निर्देश किया, जैसे **अनिल कुमार गुप्ता** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[3], **डॉली छंदा** बनाम **अध्यक्ष, जे. ई. ई. और अन्य**[4], **विजय जामिनी** बनाम **भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद् और अन्य**[5], **मृदुल धर (अवयस्क) और एक अन्य** बनाम **भारत संघ और अन्य**[6] और **भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद्** बनाम **मानस रंजन बेहरा और अन्य**[7] ।

9. बोर्ड की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउन्सेल श्री सुनील फर्नांडिज़ ने यह दलील दी कि अपीलार्थी को वर्ष 2010 के एम. बी. बी. एस. के उस रिक्त स्थान पर प्रवेश का दावा करने का कोई विधिक अधिकार नहीं है विशेषकर तब जब कि उसने केवल 117 अंक प्राप्त किए

---

[1] (1986) 4 एस. सी. सी. 268.
[2] (1989) 2 (सप्ली.) एस. सी. सी. 169.
[3] (1995) 5 एस. सी. सी. 173.
[4] (2005) 9 एस. सी. सी. 779.
[5] (2005) 13 एस. सी. सी. 461.
[6] (2008) 17 एस. सी. सी. 435.
[7] (2010) 1 एस. सी. सी. 173.

थे जबकि चार अन्य महिला अभ्यर्थी ऐसी थी जिन्होंने अपीलार्थी से अधिक अंक प्राप्त किए थे । उन महिला अभ्यर्थियों ने एम. बी. बी. एस. के उस स्थान के लिए कोई दावा नहीं किया था चूंकि उस स्थान को भरने पर रोक लगा दी गई थी और यदि उन्होंने बी. डी. एस. के स्थान स्वीकार न किए होते तो वे उन स्थानों को भी खो देती । विद्वान् काउन्सेल ने यह दलील दी कि उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ का अपीलार्थी के उस स्थान के दावे को, जो कि वर्ष 2010 में रिक्त हुआ था, खारिज करना न्यायोचित्यपूर्ण था ।

10. भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद् की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउन्सेल श्री अमित कुमार ने यह दलील दी कि वर्ष 2012 के लिए अन्य योग्य अभ्यर्थियों के मुकाबले अपीलार्थी के लिए एक एम. बी. बी. एस. का स्थान आरक्षित करना संभव नहीं होगा । अन्यथा भी, विद्वान् काउन्सेल ने यह दलील दी कि इस न्यायालय ने अनेक निर्णयों में यह अभिनिर्धारित किया है कि यह न्यायालय भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद् को एम. बी. बी. एस. पाठ्यक्रम के लिए स्थान बढ़ाने के संबंध में निदेश जारी करने में दानी या उदार नहीं हो सकता है ।

11. हमने दोनों पक्षों के विद्वान् काउन्सेलों की सुनवाई की है । हमारा यह मत है कि विधि और तथ्यों के आधार पर भी अपीलार्थी को वर्ष 2010 में एम. बी. बी. एस. के खाली स्थान के लिए वर्ष 2011 या पश्चात्वर्ती वर्षों में किसी प्रकार का दावा करने का कोई अधिकार नहीं है । बोर्ड को वह स्थान एक अन्य महिला अभ्यर्थी, अर्थात् नुसरत रशीद को आबंटित कर देना चाहिए था, जिसने 121 अंक प्राप्त किए थे । चूंकि मुकदमेबाजी चल रही थी इसलिए वह उस स्थान के लिए अनिश्चित समय तक प्रतीक्षा नहीं कर सकती थी और इसलिए उसने बी. डी. एस. में स्थान स्वीकार कर लिया था । योग्यता क्रम में अगले दो अभ्यर्थी महरुल निसा और फराह चौवान थे, जिन दोनों ने 118-118 अंक प्राप्त किए थे, किन्तु जिन्हें एम. बी. बी. एस. पाठ्यक्रम में प्रवेश मिल गया था । एक अन्य अभ्यर्थी आबिदा परवीन को, जो रैंक में अपीलार्थी से ऊपर थी, तत्समय चल रही मुकदमेबाजी के कारण, बी. डी. एस. में स्थान लेकर संतोष करना पड़ा था । अपीलार्थी ने अज़हर नाविद द्वारा फाइल की गई रिट याचिका में कभी भी स्वयं को पक्षकार नहीं बनाया और न ही वर्ष 2010 में उस स्थान पर कोई दावा किया । जब अज़हर नाविद द्वारा फाइल की गई रिट याचिका तारीख 8 जुलाई, 2011 को खारिज कर दी गई थी, केवल तभी उसने प्रथम बार वर्ष 2011 में एक अभ्यावेदन फाइल किया था जिसमें उसने

2010 के भरे न गए स्थान पर दावा किया था किन्तु तब तक इस न्यायालय द्वारा वर्ष 2010 के प्रवेश के लिए नियत कट-ऑफ तारीख, अर्थात् 30 सितम्बर समाप्त हो गई थी । इसके अलावा, कुछ ऐसे महिला अभ्यर्थियों को, जिन्होंने अपीलार्थी से अधिक अंक प्राप्त किए थे, बी. डी. एस. में स्थान पाकर संतोष करना पड़ा था । यदि वर्ष 2010 का भरा न गया एम. बी. बी. एस. का स्थान अपीलार्थी को वर्ष 2012 में प्रस्थापित किया जाता है तो इससे उन अभ्यर्थियों के साथ अन्याय होगा जिनका रैंक अपीलार्थी के रैंक से ऊपर था । अपीलार्थी ने उस स्थान पर वर्ष 2010 में दावा नहीं किया था किन्तु केवल वर्ष 2011 में उसने वर्ष 2010 के भरे न गए स्थान का दावा करते हुए तारीख 25 जुलाई, 2011 को 2011 का ओ. डब्ल्यू. पी. सं. 1010 फाइल किया था ।

12. चिकित्सा शिक्षा में किसी स्थान का अस्तित्व केवल उस वर्ष के लिए, जिसमें वह उद्भूत होता है और वह भी इस न्यायालय द्वारा नियत कट-ऑफ तारीख तक, अर्थात् संबंधित वर्ष की तारीख 30 सितम्बर तक होता है । चिकित्सा, इंजीनियरिंग, दंत-चिकित्सा आदि वृत्तिक पाठ्यक्रमों में अग्रनीत करने का सिद्धांत अज्ञात है । हमारी जानकारी में ऐसा कोई नियम या विनियम नहीं लाया गया है जिसमें बोर्ड को किसी खाली स्थान को उत्तरवर्ती वर्ष में अग्रनीत करने की शक्ति प्रदान की गई हो । यदि बोर्ड या न्यायालय ऐसी कोई कार्यवाही करते हैं तो किसी नियम या विनियम के अभाव में यह उन अन्य योग्य अभ्यर्थियों के लिए हानिकर होगा जो उत्तरवर्ती वर्षों में प्रवेश की प्रतीक्षा कर रहे होते हैं ।

13. भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद् अधिनियम में यह उपबंध है कि चिकित्सा महाविद्यालयों द्वारा केवल उतनी स्वीकृत स्थान-क्षमता के भीतर ही प्रवेश दिया जा सकता है जितने स्थानों के लिए धारा 10क के अधीन अनुज्ञा/धारा 11(2) के अधीन मान्यता प्रदान की गई है । इस न्यायालय ने **पंजाब राज्य और अन्य** बनाम **रेणुका सिंगला और अन्य**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय ऐसे निदेश जारी करने में दानी या उदार नहीं हो सकता है जो कि सारवान् रूप से संबंधित प्राधिकारियों को विद्यार्थियों के प्रवेश की बाबत स्वयं अपने कानूनी नियमों और विनियमों का अतिक्रमण करने के लिए निदेश देने की कोटि में आता है । **भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद्** बनाम **कर्नाटक राज्य**[2] वाले

---

[1] (1994) 1 एस. सी. सी. 175.

[2] (1988) 6 एस. सी. सी. 131.

मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि प्रवेश दिए जाने वाले विद्यार्थियों की संख्या चिकित्सा परिषद् द्वारा विनियमों के अनुसार नियत संख्या से अधिक नहीं हो सकती है और यह कि चिकित्सा महाविद्यालयों में स्थान चिकित्सा परिषद् के विनियमों के अनुसार समुचित आधारभूत सुविधाओं को ध्यान में रखते बिना अंधाधुंध बढ़ाए नहीं जा सकते हैं । **भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद्** बनाम **मधु सिंह और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि एक वर्ष के भरे न गए स्थानों को पश्चात्वर्ती वर्ष के अनुज्ञात स्थानों में जोड़ा नहीं जा सकता है । हाल ही में इस न्यायालय ने **सत्यप्रत साहू और अन्य** बनाम **उड़ीसा राज्य और अन्य**[2] वाले मामले में इस बात पर जोर दिया है कि स्थानों में वृद्धि करना संभव नहीं होगा क्योंकि यह उन अभ्यर्थियों के लिए हानिकर होगा जो उत्तरवर्ती वर्षों में प्रवेश पाने की प्रतीक्षा कर रहे हैं ।

14. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल ने यह कथन करते हुए इस न्यायालय के कुछ निर्णयों के प्रति निर्देश किया की इस न्यायालय ने इससे पूर्व भी अभ्यर्थियों को उत्तरवर्षों में समायोजित करने के लिए कतिपय निदेश दिए थे किन्तु हमारी राय में, ऐसा असाधारण परिस्थितियों में ही किया गया था और ऐसे निदेश संविधान के अनुच्छेद 141 में अंतर्विष्ट आज्ञा को ध्यान में रखते हुए जारी किए गए थे जिन्हें इस न्यायालय या उच्च न्यायालयों द्वारा अनुसरण करने हेतु पूर्व-निर्णय के रूप में नहीं माना जा सकता है । अतः, हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि किसी विशेष वर्ष में खाली हुआ स्थान, इस संबंध में किसी नियम या विनियम के अभाव में किसी उत्तरवर्ती वर्ष में अग्रनीत या सृजित नहीं किया जा सकता है ।

15. अतः, हमारा यह मत है कि उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने अपीलार्थी द्वारा किए गए दावे को खारिज करके सही किया था । अतः, अपील खारिज की जाती है । खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

ग्रो./अनू.

---

[1] (2002) 7 एस. सी. सी. 255.

[2] जे. टी. 2012 (7) एस. सी. 500.

संसद् के अधिनियम

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989

(1989 का अधिनियम संख्यांक 33)

[11 सितंबर, 1989]

अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों पर अत्याचार का अपराध करने का निवारण करने के लिए, ऐसे अपराधों के विचारण के लिए विशेष न्यायालयों का तथा ऐसे अपराधों से पीड़ित व्यक्तियों को राहत देने का और उनके पुनर्वास का तथा उससे संबंधित या उसके आनुषंगिक विषयों का उपबंध करने के लिए अधिनियम

भारत गणराज्य के चालीसवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :–

अध्याय 1
प्रारम्भिक

1. **संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारंभ** – (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 है ।

(2) इसका विस्तार जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय संपूर्ण भारत पर है ।

(3) यह उस तारीख[1] को प्रवृत्त होगा जो केंद्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, नियत करे ।

2. **परिभाषाएं** – (1) इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) "अत्याचार" से धारा 3 के अधीन दंडनीय अपराध अभिप्रेत है ;

(ख) "संहिता" से दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) अभिप्रेत है ;

---

[1] 30-1-1990 – देखिए का. आ. 106(अ), तारीख 29-1-1990.

(ग) "अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों" के वही अर्थ हैं जो संविधान के अनुच्छेद 366 के खंड (24) और खंड (25) में हैं ;

(घ) "विशेष न्यायालय" से धारा 14 में विशेष न्यायालय के रूप में विनिर्दिष्ट कोई सेशन न्यायालय अभिप्रेत है ;

(ङ) "विशेष लोक अभियोजक" से विशेष लोक अभियोजक के रूप में विनिर्दिष्ट लोक अभियोजक या धारा 15 में निर्दिष्ट अधिवक्ता अभिप्रेत है ;

(च) उन शब्दों और पदों के, जो इस अधिनियम में प्रयुक्त है किन्तु परिभाषित नहीं हैं और संहिता या भारतीय दंड संहिता में परिभाषित हैं जो, यथास्थिति संहिता में या भारतीय दंड संहिता (1890 का 45) में हैं ।

(2) इस अधिनियम में किसी अधिनियमिति या उसके किसी उपबंध के प्रति किसी निर्देश का अर्थ किसी ऐसे क्षेत्र के संबंध में जिसमें ऐसी अधिनियमिति या ऐसा उपबंध प्रवृत्त नहीं है यह लगाया जाएगा कि वह उस क्षेत्र में प्रवृत्त तत्स्थानी विधि, यदि कोई हो, के प्रति निर्देश है ।

अध्याय 2
अत्याचार के अपराध

3. अत्याचार के अपराधों के लिए दंड – (1) कोई भी व्यक्ति, जो अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं है,

(i) अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को अखाद्य या घृणाजनक पदार्थ पीने या खाने के लिए मजबूर करेगा ;

(ii) अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य के परिसर या पड़ोस में मल-मूत्र, कूड़ा, पशु-शव या कोई अन्य घृणाजनक पदार्थ इकट्ठा करके उसे क्षति पहुंचाने, अपमानित करने या क्षुब्ध करने के आशय से कार्य करेगा ;

(iii) अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य के शरीर से बलपूर्वक कपड़े उतारेगा या उसे नंगा या उसके चेहरे या शरीर को पोतकर घुमाएगा या इसी प्रकार का कोई अन्य ऐसा कार्य करेगा जो मानव के सम्मान के विरुद्ध है ;

(iv) अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य के स्वामित्वाधीन या उसे आबंटित या किसी सक्षम प्राधिकारी द्वारा उसे आबंटित किए जाने के लिए अधिसूचित किसी भूमि को सदोष अधिभोग में लेगा या उस पर खेती करेगा या उसे आबंटित भूमि को अंतरित करा लेगा ;

(v) अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को उसकी भूमि या परिसर से सदीप बेकब्जा करेगा या किसी भूमि, परिसर या जल पर उसके अधिकारों के उपभोग में हस्तक्षेप करेगा ;

(vi) अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को 'बेगार' करने के लिए या सरकार द्वारा लोक प्रयोजनों के लिए अधिरोपित किसी अनिवार्य सेवा से भिन्न अन्य समरूप प्रकार के बलात्श्रम या बंधुआ मजदूरी के लिए विवश करेगा या फुसलाएगा ;

(vii) अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को मतदान न करने के लिए या किसी विशिष्ट अभ्यर्थी के लिए मतदान करने के लिए या विधि द्वारा उपबंधित से भिन्न रीति से मतदान करने के लिए मजबूर या अभित्रस्त करेगा ;

(viii) अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य के विरुद्ध मिथ्या, द्वेषपूर्ण या तंग करने वाला वाला वाद या दांडिक या अन्य विधिक कार्यवाही संस्थित करेगा ;

(ix) किसी लोकसेवक को कोई मिथ्या तुच्छ जानकारी देगा और उसके द्वारा अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को क्षति पहुंचाने या क्षुब्ध करने के लिए ऐसे लोकसेवक से उसकी विधिपूर्वक शक्ति का प्रयोग कराएगा ;

(x) जनता को दृष्टिगोचर किसी स्थान में अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य का अपमान करने के आशय से साशय उसको अपमानित या अभित्रस्त करेगा ;

(xi) अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति की किसी महिला का अनादर करने या उसकी लज्जा भंग करने के आशय से हमला या बल प्रयोग करेगा ;

(xii) अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति की किसी महिला की इच्छा को अधिशासित करने की स्थिति में होने पर उस

स्थिति का प्रयोग उसका लैंगिक शोषण करने के लिए, जिसके लिए वह अन्यथा सहमत नहीं होती, करेगा ;

(xiii) किसी स्रोत, जलाशय या किसी अन्य उद्‌गम के जल को जो आम तौर पर अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के सदस्यों द्वारा उपयोग में लायी जाती है, दूषित या गंदा करेगा जिससे कि वह उस प्रयोजन के लिए कम उपयुक्त हो जाए जिसके लिए उसका आमतौर पर प्रयोग किया जाता है ;

(xiv) अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को सार्वजनिक अभिगम के स्थान के मार्ग के किसी रूढ़िजन्य अधिकार से वंचित करेगा या ऐसे सदस्य को बाधा पहुंचाएगा जिससे कि वह ऐसे सार्वजनिक अभिगम के स्थान का उपयोग करने या वहां पहुंचने से निवारित हो जाए जहां जनता के अन्य सदस्यों या उसके किसी भाग को उपयोग करने का या पहुंचाने का अधिकार है ;

(xv) अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को अपना मकान, गांव या अन्य निवास स्थान छोड़ने के लिए मजबूर करेगा या कराएगा ;

वह कारावास से, जिसकी अवधि छह मास से कम की नहीं होगी किन्तु जो पांच वर्ष तक की हो सकेगी और जुर्माने से, दंडनीय होगा ।

(2) कोई भी व्यक्ति, जो अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं है, –

(i) मिथ्या साक्ष्य देगा या गढ़ेगा जिससे उसका आशय अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को किसी ऐसे अपराध के लिए जो तत्समय प्रवृत्त विधि द्वारा मृत्यु दंड से दंडनीय है, दोषसिद्ध कराना है या यह जानता है कि इससे उसका दोषसिद्ध होना संभाव्य है, वह आजीवन कारावास से और जुर्माने से दंडनीय होगा ; और यदि अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी निर्दोष सदस्य को ऐसे मिथ्या या गढ़े हुए साक्ष्य के फलस्वरूप दोषसिद्ध किया जाता है और फांसी दी जाती है तो वह व्यक्ति, जो ऐसा मिथ्या साक्ष्य देता है या गढ़ता है, मृत्यु दंड से दंडनीय होगा ;

(ii) मिथ्या साक्ष्य देगा या गढ़ेगा जिससे उसका आशय अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को ऐसे

अपराध के लिए जो मृत्यु दंड से दंडनीय नहीं है किन्तु सात वर्ष या उससे अधिक की अवधि के कारावास से दंडनीय है, दोषसिद्ध कराना है या वह यह जानता है कि उससे उसका दोषसिद्ध होना संभाव्य है, वह कारावास से, जिसकी अवधि छह मास से कम की नहीं होगी किन्तु जो सात वर्ष या उससे अधिक की हो सकेगी और जुर्माने से, दंडनीय होगा ;

(iii) अग्नि या किसी विस्फोटक पदार्थ द्वारा रिष्टि करेगा जिससे उसका आशय अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य की किसी सम्पत्ति को नुकसान पहुंचाना है या वह यह जानता है कि उससे ऐसा होना संभाव्य है वह कारावास से, जिसकी अवधि छह मास से कम की नहीं होगी किन्तु जो सात वर्ष तक की हो सकेगी और जुर्माने से, दंडनीय होगा ;

(iv) अग्नि या किसी विस्फोटक पदार्थ द्वारा रिष्टि करेगा जिससे उसका आशय किसी ऐसे भवन को जो अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य द्वारा साधारणत: पूजा के स्थान के रूप में या मानव आवास के स्थान के रूप में या संपत्ति की अभिरक्षा के लिए किसी स्थान के रूप में उपयोग किया जाता है, नष्ट करता है या वह यह जानता है कि उससे ऐसा होना संभाव्य है, वह आजीवन कारावास से, और जुर्माने से, दंडनीय होगा ;

(v) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) के अधीन दस वर्ष या उससे अधिक की अवधि के कारावास से दंडनीय कोई अपराध किसी व्यक्ति या सम्पत्ति के विरुद्ध इस आधार पर करेगा कि ऐसा व्यक्ति अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य है या ऐसी सम्पत्ति ऐसे सदस्य की है, वह आजीवन कारावास से, और जुर्माने से दंडनीय होगा ;

(vi) यह जानते हुए या यह विश्वास करने का कारण रखते हुए कि इस अध्याय के अधीन कोई अपराध किया गया है, वह अपराध किए जाने के किसी साक्ष्य को, अपराधी को विधिक दंड से बचाने के आशय से गायब करेगा या उस आशय से अपराध के बारे में कोई ऐसी जानकारी देगा जो वह जानता है या विश्वास करता है कि वह मिथ्या है, वह उस अपराध के लिए उपबंधित दंड से दंडनीय होगा ; या

(vii) लोक सेवक होते हुए इस धारा के अधीन कोई अपराध

करेगा, वह कारावास से, जिसकी अवधि एक वर्ष से कम की नहीं होगी किन्तु जो उस अपराध के लिए उपबंधित दंड तक हो सकेगी, दंडनीय होगा ।

4. कर्तव्यों की उपेक्षा के लिए दंड – कोई भी लोक सेवक, जो अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं है, इस अधिनियम के अधीन उसके द्वारा पालन किए जाने के लिए अपेक्षित अपने कर्तव्यों की जानबूझकर उपेक्षा करेगा, वह कारावास से, जिसकी अवधि छह मास से कम की नहीं होगी किन्तु जो एक वर्ष तक की हो सकेगी, दंडनीय होगा ।

5. पश्चात्वर्ती दोषसिद्धि के लिए वर्धित दंड – कोई व्यक्ति, जो इस अध्याय के अधीन किसी अपराध के लिए पहले ही दोषसिद्ध हो चुका है ; दूसरे अपराध या उसके पश्चात्वर्ती किसी अपराध के लिए दोषसिद्ध किया जाता है, वह कारावास से, जिसकी अवधि एक वर्ष से कम की नहीं होगी किन्तु जो उस अपराध के लिए उपबंधित दंड तक हो सकेगी, दंडनीय होगा ।

6. भारतीय दंड संहिता के कतिपय उपबंधों का लागू होना – इस अधिनियम के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए ; भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 34, अध्याय 3, अध्याय 4, अध्याय 5, अध्याय 5क, धारा 149 और अध्याय 23 के उपबंध, जहां तक हो सके, इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए उसी प्रकार लागू होंगे जिस प्रकार वे भारतीय दंड संहिता के प्रयोजनों के लिए लागू होते हैं ।

7. कतिपय व्यक्तियों की संपत्ति का समपहरण – (1) जहां कोई व्यक्ति इस अध्याय के अधीन दंडनीय किसी अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया है वहां विशेष न्यायालय, कोई दंड देने के अतिरिक्त, लिखित रूप में आदेश द्वारा, यह घोषित कर सकेगा कि उस व्यक्ति की कोई संपत्ति, स्थावर या जंगम, या दोनों, जिनका उस अपराध को करने में प्रयोग किया गया है, सरकार को समपहृत हो जाएगी ।

(2) जहां कोई व्यक्ति इस अध्याय के अधीन किसी अपराध का अभियुक्त है, वहां उसका विचारण करने वाला विशेष न्यायालय ऐसा आदेश करने के लिए स्वतंत्र होगा कि उसकी सभी या कोई संपत्ति, स्थावर या जंगम या दोनों, ऐसे विचारण की अवधि के दौरान, कुर्क की जाएगी और जहां ऐसे विचारण का परिणाम दोषसिद्धि है वहां इस प्रकार कुर्क की गई संपत्ति उस सीमा तक समपहरण के दायित्वाधीन होगी जहां तक वह

इस अध्याय के अधीन अधिरोपित किसी जुर्माने की वसूली के प्रयोजन के लिए अपेक्षित है ।

8. अपराधों के बारे में उपधारणा – इस अध्याय के अधीन किसी अपराध के लिए अभियोजन में, यदि वह साबित हो जाता है कि –

(क) अभियुक्त ने इस अध्याय के अधीन अपराध करने के लिए अभियुक्त व्यक्ति की, या युक्तियुक्त रूप से संदेहास्पद व्यक्ति की कोई वित्तीय सहायता की है तो विशेष न्यायालय, जब तक कि तत्प्रतिकूल साबित न किया जाए, यह उपधारणा करेगा कि ऐसे व्यक्ति ने उस अपराध का दुष्प्रेरण किया है ;

(ख) व्यक्तियों के किसी समूह ने इस अध्याय के अधीन अपराध किया है, और यदि यह साबित हो जाता है कि किया गया अपराध भूमि या किसी अन्य विषय के बारे में किसी विद्यमान विवाद का फल है तो यह उपधारणा की जाएगी कि यह अपराध सामान्य आशय या सामान्य उद्देश्य को अग्रसर करने के लिए किया गया था ।

9. शक्तियों का प्रदान किया जाना – (1) संहिता में या इस अधिनियम के किसी अन्य उपबंध में किसी बात के होते हुए भी, यदि राज्य सरकार ऐसा करना आवश्यक या समीचीन समझती है, तो वह –

(क) इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध के निवारण के लिए और उससे निपटने के लिए, या

(ख) इस अधिनियम के अधीन किसी मामले या मामलों के वर्ग या समूह के लिए,

किसी जिले या उसके किसी भाग में, राज्य सरकार के किसी अधिकारी को राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, ऐसे जिले या उसके भाग में संहिता के अधीन पुलिस अधिकारी द्वारा प्रयोक्तव्य शक्तियां या, यथास्थिति, ऐसे मामले या मामलों के वर्ग या समूह के लिए, और विशिष्टतया किसी विशेष न्यायालय के समक्ष व्यक्तियों की गिरफ्तारी, अन्वेषण और अभियोजन की शक्तियां प्रदान कर सकेगी ।

(2) पुलिस के सभी अधिकारी और सरकार के अन्य सभी अधिकारी इस अधिनियम के या उनके अधीन बनाए गए किसी नियम, स्कीम या आदेश के उपबंधों के निष्पादन में उपधारा (1) में निर्दिष्ट अधिकारी की

सहायता करेंगे ।

(3) संहिता के उपबंध, जहां तक हो सके, उपधारा (1) के अधीन किसी अधिकारी द्वारा शक्तियों के प्रयोग के संबंध में लागू होंगे ।

अध्याय 3
निष्कासन

10. ऐसे व्यक्ति का हटाया जाना जिसके द्वारा अपराध किए जाने की संभावना है – (1) जहां विशेष न्यायालय का, परिवाद या पुलिस रिपोर्ट पर, यह समाधान हो जाता है कि संभाव्यता है कि कोई व्यक्ति संविधान के अनुच्छेद 244 में यथानिर्दिष्ट 'अनुसूचित क्षेत्रों' या 'जनजाति क्षेत्रों' में सम्मिलित किसी क्षेत्र में इस अधिनियम के अध्याय 2 के अधीन कोई अपराध करेगा वहां वह, लिखित आदेश द्वारा, ऐसे व्यक्ति को यह निदेश दे सकेगा कि वह ऐसे क्षेत्र की सीमाओं से परे, ऐसे मार्ग से होकर और इतने समय के भीतर हट जाए, जो आदेश में विनिर्दिष्ट किए जाएं, और दो वर्ष से अनधिक ऐसी अवधि के लिए जो आदेश में विनिर्दिष्ट की जाए, उस क्षेत्र में जिससे हट जाने का उसे निदेश दिया गया था, वापस न लौटे ।

(2) विशेष न्यायालय, उपधारा (1) के अधीन आदेश के साथ उस उपधारा के अधीन निर्दिष्ट व्यक्ति को वे आधार संसूचित करेगा जिन पर वह आदेश किया गया है ।

(3) विशेष न्यायालय, उस व्यक्ति द्वारा जिसके विरुद्ध ऐसा आदेश किया गया है, या उसकी ओर से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा आदेश की तारीख से तीस दिन के भीतर किए गए अभ्यावेदन पर ऐसे कारणों से जो लेखबद्ध किए जाएंगे उपधारा (1) के अधीन किए गए आदेश को प्रतिसंहृत या उपान्तरित कर सकेगा ।

11. किसी व्यक्ति द्वारा संबंधित क्षेत्र से हटने में असफल रहने और वहां से हटने के पश्चात् उसमें प्रवेश करने की दशा में प्रक्रिया – (1) यदि कोई व्यक्ति जिसको धारा 10 के अधीन किसी क्षेत्र से हट जाने के लिए कोई निदेश जारी किया गया है –

(क) निदेश किए गए रूप में हटने में असफल रहता है; या

(ख) इस प्रकार हटने के पश्चात् उपधारा (2) के अधीन विशेष न्यायालय की लिखित अनुज्ञा के बिना उस क्षेत्र में ऐसे आदेश में

विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर प्रवेश करता है,

तो विशेष न्यायालय उसे गिरफ्तार करा सकेगा और उसे उस क्षेत्र के बाहर ऐसे स्थान पर, जो विशेष न्यायालय विनिर्दिष्ट करे, पुलिस अभिरक्षा में हटवा सकेगा ।

(2) विशेष न्यायालय, लिखित आदेश द्वारा, किसी ऐसे व्यक्ति को जिसके विरुद्ध धारा 10 के अधीन आदेश किया गया है, अनुज्ञा दे सकेगा कि वह उस क्षेत्र में जहां से हट जाने का उसे निदेश दिया गया था ऐसी अस्थायी अवधि के लिए और ऐसी शर्तों के अधीन रहते हुए, जो ऐसे आदेश में विनिर्दिष्ट की जाएं, लौट सकता है और अधिरोपित शर्तों के सम्यक् अनुपालन के लिए उससे अपेक्षा कर सकेगा कि वह प्रतिभू संहिता या उसके बिना, बंधपत्र निष्पादित करे ।

(3) विशेष न्यायालय किसी भी समय ऐसी अनुज्ञा को प्रतिसंहृत कर सकेगा ।

(4) ऐसा व्यक्ति, जो ऐसी अनुज्ञा से उस क्षेत्र में वापस आता है, जिससे उसे हटने के लिए निदेश दिया गया था, अधिरोपित शर्तों का अनुपालन करेगा और जिस अस्थायी अवधि के लिए लौटने की उसे अनुज्ञा दी गई थी उसके अवसान पर या ऐसी अस्थायी अवधि के अवसान के पूर्व ऐसी अनुज्ञा के प्रतिसंहृत किए जाने पर ऐसे क्षेत्र से बाहर हट जाएगा और धारा 10 के अधीन विनिर्दिष्ट अवधि के अनवसित भाग के भीतर नई अनुज्ञा के बिना वहां नहीं लौटेगा ।

(5) यदि कोई व्यक्ति अधिरोपित शर्तों में से किसी का पालन करने में या तदनुसार स्वयं को हटाने में असफल रहेगा या इस प्रकार हट जाने के पश्चात् ऐसे क्षेत्र में नई अनुज्ञा के बिना प्रवेश करेगा या लौटेगा तो विशेष न्यायालय उसे गिरफ्तार करा सकेगा और उसे उस क्षेत्र के बाहर ऐसे स्थान को, जो विशेष न्यायालय विनिर्दिष्ट करे, पुलिस अभिरक्षा में हटवा सकेगा ।

12. ऐसे व्यक्तियों के, जिनके विरुद्ध धारा 10 के अधीन आदेश किया गया है, माप और फोटो आदि लेना – (1) प्रत्येक ऐसा व्यक्ति, जिसके विरुद्ध धारा 10 के अधीन आदेश किया गया है, विशेष न्यायालय द्वारा ऐसी अपेक्षा की जाने पर, किसी पुलिस अधिकारी को अपने माप और फोटो लेने देगा ।

(2) यदि उपधारा (1) में निर्दिष्ट कोई व्यक्ति, जिससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने माप या फोटो लेने दे, इस प्रकार माप या फोटो लिए जाने का प्रतिरोध करता है या उससे इनकार करता है, तो यह विधिपूर्ण होगा कि माप या फोटो लिए जाने को सुनिश्चित करने के लिए सभी आवश्यक उपाय किए जाएं ।

(3) उपधारा (2) के अधीन लिए जाने वाले माप या फोटो का प्रतिरोध या उससे इनकार करने को भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 186 के अधीन अपराध समझा जाएगा ।

(4) जहां धारा 10 के अधीन किया गया आदेश प्रतिसंहृत कर दिया जाता है वहां उपधारा (2) के अधीन लिए गए सभी माप औरफोटो (जिसके अंतर्गत नेगेटिव भी है) नष्ट कर दिए जाएंगे या उस व्यक्ति को सौंप दिए जाएंगे जिसके विरुद्ध आदेश किया गया था ।

13. धारा 10 के अधीन आदेश के अननुपालन के लिए शास्ति – वह व्यक्ति, जो धारा 10 के अधीन किए गए विशेष न्यायालय के आदेश का उल्लंघन करेगा, कारावास से, जिसकी अवधि एक वर्ष तक की हो सकेगी और जुर्माने से, दंडनीय होगा ।

अध्याय 4
विशेष न्यायालय

14. विशेष न्यायालय – राज्य सरकार, शीघ्र विचारण का उपबंध करने के प्रयोजन के लिए, उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की सहमति से, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के अधीन अपराधों का विचारण करने के लिए प्रत्येक जिले के लिए एक सेशन न्यायालय को विशेष न्यायालय के रूप में विनिर्दिष्ट करेगी ।

15. विशेष लोक अभियोजक – राज्य सरकार, प्रत्येक विशेष न्यायालय के लिए, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, एक लोक अभियोजक विनिर्दिष्ट करेगी या किसी ऐसे अधिवक्ता को, जिसने कम से कम सात वर्ष तक अधिवक्ता के रूप में विधि-व्यवसाय किया हो, उस न्यायालय में मामलों के संचालन के प्रयोजन के लिए विशेष लोक अभियोजक के रूप में नियुक्त करेगी ।

अध्याय 5
प्रकीर्ण

16. राज्य सरकार की सामूहिक जुर्माना अधिरोपित करने की शक्ति – सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 (1955 का 22) की धारा 10क

के उपबन्ध, जहां तक हो सके, इस अधिनियम के अधीन सामूहिक जुर्माना अधिरोपित करने और उसे वसूल करने के प्रयोजनों के लिए और उससे संबद्ध सभी अन्य विषयों के लिए लागू होंगे ।

17. विधि और व्यवस्था तंत्र द्वारा निवारक कार्रवाई – (1) यदि जिला मजिस्ट्रेट या उपखंड मजिस्ट्रेट या किसी अन्य कार्यपालक मजिस्ट्रेट या किसी पुलिस अधिकारी को, जो पुलिस उप-अधीक्षक की पंक्ति से नीचे का न हो, इत्तिला प्राप्त होने पर और ऐसी जांच करने के पश्चात् जो वह आवश्यक समझे, यह विश्वास करने का कारण है कि किसी ऐसे व्यक्ति या ऐसे व्यक्तियों के समूह द्वारा,जो अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के नहीं हैं, और जो उसकी अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के भीतर किसी स्थान पर निवास करते हैं या बार-बार आते-जाते हैं, इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध करने की संभावना है या उन्होंने अपराध करने की धमकी दी है और उसकी यह राय है कि कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार है तो वह उस क्षेत्र को अत्याचारग्रस्त क्षेत्र घोषित कर सकेगा तथा शांति और सदाचार बनाए रखने तथा लोक व्यवस्था और प्रशांति बनाए रखने के लिए आवश्यक कार्रवाई कर सकेगा और निवारक कार्रवाई कर सकेगा ।

(2) संहिता के अध्याय 8, अध्याय 10 और अध्याय 11 के उपबंध, जहां तक हो सके, उपधारा (1) के प्रयोजनों के लिए लागू होंगे ।

(3) राज्य सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, एक या अधिक स्कीमें वह रीति विनिर्दिष्ट करते हुए बना सकेगी जिससे उपधारा (1) में निर्दिष्ट अधिकारी अत्याचारों के निवारण के लिए तथा अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के सदस्यों में सुरक्षा की भावना पुनः लाने के लिए ऐसी स्कीम या स्कीमों में विनिर्दिष्ट समुचित कार्रवाई करेंगे ।

18. अधिनियम के अधीन अपराध करने वाले व्यक्तियों को संहिता की धारा 438 का लागू न होना – संहिता की धारा 438 की कोई बात इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध करने के अभियोग पर किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी के किसी मामले के संबंध में लागू नहीं होगी ।

19. इस अधिनियम के अधीन अपराध के लिए दोषी व्यक्तियों को संहिता की धारा 360 या अपराधी परिवीक्षा अधिनियम के उपबंध का लागू न होना – संहिता की धारा 360 के उपबंध और अपराधी परिवीक्षा

अधिनियम, 1958 (1958 का 20) के उपबंध अठारह वर्ष से अधिक आयु के ऐसे व्यक्ति के संबंध में लागू नहीं होंगे जो इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध करने का दोषी पाया जाता है ।

20. अधिनियम का अन्य विधियों पर अध्यारोही होना – इस अधिनियम में जैसा अन्यथा उपबंधित है उसके सिवाय, इस अधिनियम के उपबंध, तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि या रूढि या प्रथा या किसी अन्य विधि के आधार पर प्रभाव रखने वाली लिखत में उससे असंगत किसी बात के होते हुए भी, प्रभावी होंगे ।

21. अधिनियम का प्रभावी क्रियान्वयन सुनिश्चित करने का सरकार का कर्तव्य – (1) राज्य सरकार, ऐसे नियमों के अधीन रहते हुए, जो केन्द्रीय सरकार इस निमित्त बनाए, इस अधिनियम के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए ऐसे उपाय करेगी जो आवश्यक हों ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी उपबंधों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, उसे उपायों के अंतर्गत निम्नलिखित हो सकेगा,--

(i) ऐसे व्यक्तियों को, जिन पर अत्याचार हुआ है, न्याय प्राप्त करने में समर्थ बनाने के लिए पर्याप्त सुविधाओं की, जिनके अंतर्गत विधिक सहायता भी है, व्यवस्था ;

(ii) इस अधिनियम के अधीन अपराध के अन्वेषण और विचारण के दौरान साक्षियों जिनके अंतर्गत अत्याचार से पीड़ित व्यक्ति भी हैं यात्रा और भरणपोषण के व्यय की व्यवस्था ;

(iii) अत्याचार से पीड़ित व्यक्तियों के आर्थिक और सामाजिक पुनरुद्धार की व्यवस्था ;

(iv) इस अधिनियम के उपबन्धों के उल्लंघन के लिए अभियोजन प्रारंभ करने या उनका पर्यवेक्षण करने के लिए अधिकारियों की नियुक्ति ;

(v) ऐसे समुचित स्तरों पर, जो राज्य सरकार ऐसे उपायों की रचना या उनके क्रियान्वयन के लिए उस सरकार की सहायता करने के लिए ठीक समझे, समितियों की स्थापना करना ;

(vi) इस अधिनियम के उपबंधों के बेहतर क्रियान्वयन के लिए उपायों का सुझाव देने की दृष्टि से इस अधिनियम के उपबन्धों के

कार्यकरण का समय-समय पर सर्वेक्षण करने की व्यवस्था ;

(vii) उन क्षेत्रों की पहचान करना जहां अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के सदस्यों पर अत्याचार होने की संभावना है और ऐसे उपाय करना जिससे कि ऐसे सदस्यों की सुरक्षा सुनिश्चित हो सके ।

(3) केन्द्रीय सरकार ऐसे उपाय करेगी जो उपधारा (1) के अधीन राज्य सरकार द्वारा किए गए उपायों मे समन्वय करने के लिए आवश्यक हों ।

(4) केन्द्रीय सरकार, प्रत्येक वर्ष, संसद् के प्रत्येक सदन के पटल पर इस धारा के उपबंधों के अनुसरण में स्वयं उसके द्वारा और राज्य सरकारों द्वारा किए गए उपायों के संबंध में एक रिपोर्ट रखेगी ।

22. सद्भावपूर्वक की गई कार्रवाई के लिए संरक्षण – इस अधिनियम के अधीन सद्भावपूर्वक की गई या की जाने के लिए आशयित किसी बात के लिए कोई भी वाद, अभियोजन या अन्य विधिक कार्यवाही केन्द्रीय सरकार के विरुद्ध या राज्य सरकार या सरकार के किसी अधिकारी या प्राधिकारी या किसी अन्य व्यक्ति के विरुद्ध नहीं होगी ।

23. नियम बनाने की शक्ति – (1) केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए नियम बना सकेगी ।

(2) इस अधिनियम के अधीन बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब यह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा । यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी । यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस नियम मे कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं तो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगा । यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह नियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात् वह निष्प्रभाव हो जाएगा । किन्तु नियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव होने से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

———